भर्तृहरि कृत

अनुवादक :

स्वास्थ्यरक्षा, चिकित्सा-चन्द्रोदय, हिन्दी-अँगरेज़ी
शिक्षावली, बँगला-हिन्दी शिक्षावली,
प्रभृति ग्रन्थों के लेखक
और
गुलिस्ताँ, अक्लमन्दी का खज़ाना, वैराग्य-शतक,
शृङ्गार-शतक, नीति-शतक प्रभृति
ग्रन्थों के अनुवादक

बाबू हरिदास वैद्य

प्रकाशक :

हरिदास एण्ड कम्पनी लिमि., मथुरा।

ब्रॉच ऑफिस : पटना ।

प्रकाशक
हरिदास एण्ड कम्पनी लिमि०,
मथुरा : पटना

*

छठा संस्करण
दिसम्बर, १९४९ ई०
मूल्य ५)

मुद्रक :
प्रभुदयाल मीतल,
अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

चिकित्सा-चन्द्रोदय प्रभृति अनेकों ग्रन्थों के लेखक—

आयुर्वेद पञ्चानन बाबू हरिदास वैद्य.

जन्म : सं० १६२८ वि०

★

देहावसान : सं० २००६ वि०

भूमिका

[प्रथम संस्करण से]

एक आलङ्कारिक का कथन है.—' सत्काव्य यशस्कर, अर्थ-कर, व्यवहार-ज्ञानदाता और अमङ्गलहर होते हैं। सत्कविता माध्वी वनिता की भाँति परम शान्तिदायिनी और हितोपदेशिनी होती है।"

कवि का यह वाक्य संस्कृत के चाहे जिस काव्य की प्रशंसा में निकला हो; पर यह महाराज भर्तृहरि कृत "नीति-शतक" पर पूर्ण रूप से घटित होता है; क्योंकि उसके पढ़ने से मनुष्य एक अच्छा नीतिमान् हो जाता है और नीतिमान व्यक्ति ही कीर्त्ति, धन और प्रशंसा के अधिकारी होते है।

नीति-शतक सचमुच ही एक अपूर्व ग्रन्थ है। हम जब कभी ध्यान के साथ उसका पारायण करने बैठते हैं, तभी ऐसा मालूम होता है; मानो संसार में जो कुछ भी महान् है, जो कुछ भी सुन्दर है और जो कुछ भी नवीन, निष्पाप, निर्मल और मनोहर है, वह सब एकत्र संकलन करके जिस स्थान पर जिसका समावेश करने से उसकी सुन्दरता और निर्मलता और भी बढ़ जा सकती है, वह उसी स्थान पर उसी ढङ्ग से बैठाया गया है। "नीति-शतक" में यद्यपि सौ श्लोक है, किन्तु इन सौ श्लोकों में जो कुछ भी कहा गया है, उसकी तुलना अन्य देशो के सौ नीति-ग्रन्थ भी नहीं कर सकते।

संसार मे रह कर, जीवन मे जय पाने के लिये, नीतिमान बनाने की नितान्त आवश्यकता है। नीति से हम, अकेले होने पर

भी, अनन्त सेना को परास्त कर सकते है और एक स्थान पर बैठे-बैठे समस्त भूमण्डल पर शासन कर सकते हैं। जो व्यक्ति जितना अच्छा नीतिज्ञ है, वह उतना ही दुर्जय है। सारांश यह कि, संसार की जटिल-से-जटिल समस्याओं का निराकरण एक मात्र नीति द्वारा ही हो सकता है। महात्मा शुक्र ने बहुत ही ठीक कहा है, व्याकरण से शब्द और अर्थ का ज्ञान होता है, न्याय और तर्कशास्त्र से जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है; और वेदान्त से संसार की असारता और देह की अनित्यता का ज्ञान होता है, किन्तु लौकिक व्यवहार मे इन शास्त्रो से कुछ भी प्रयोजन नही निकलता। सांसारिक कार्य्य-व्यवहार-निर्वाह करने और सुख पूर्वक जीवनयापन करने के लिए जिस चीज की आवश्यकता है, वह "नीतिशास्त्र" है। इस शास्त्र का ज्ञान महलों मे रहने वाले राजा से लेकर कुटीर-निवासी क्षुद्र मनुष्य तक के लिए समान भाव से होना जरूरी है। अतः कहना चाहिये, कि नीति का अपूर्व माहात्म्य है।

संस्कृत-साहित्य मे प्रधानतः शुक्र, भर्तृहरि, विदुर और चाणक्य की नीतियो का विशेष आदर है। उनमें भी पण्डित लोग जितना आदर भर्तृहरि की नीति का करते हैं, उतना अन्य किसी की नीति का नहीं। इसी से हमने इसे अपूर्व नीतिग्रन्थ कहा है। अस्तु।

सन् १६१५ ई० मे हमारे यहाँ से इसी 'नीति शतक' का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था। वह अनुवाद पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्मा और पण्डित सखाराम दुबे बी० ए०, बी० एल० ने किया था। अनुवाद सर्वाङ्ग सुन्दर होने पर भी, कोरा अनुवाद ही था। उसमें बहुत-सी कारीगरियो की कमी थी। हमने अनुवाद महाशयो मे से एक से टीका-टिप्पणी सहित

सुविस्तृत अनुवाद करने के लिए प्रार्थना भी की थी, पर उन्होंने किसी वजह से हमारी बात पर ध्यान नहीं दिया। मजबूरन हमको वह अनुवाद प्रकाशित करना पड़ा। तभी हमारे दिल मे यह इच्छा पैदा हुई थी, कि यद्यपि हम उतने योग्य नहीं, तथापि हम भी चेष्टा क्यों न करें? किन्तु अवकाश न होने की वजह से, हम उस समय अपनी इच्छा को कार्य्य मे परिणत न कर सके।

गत वर्ष, हम पर ऐसी भीषण विपत्ति आई, कि हमें इस जीवन मे कुछ भी लिखने की आशा न रही। उस निराशता के समय मे, हमने कोई दो हफ्तो मे "वैराग्य-शतक" का अनुवाद करके प्रकाशित कर दिया। उन दिनो ईर्ष्या-द्वेष का बाजार खूब गर्म था। प्रायः सभी परिचित, मित्र और नातेदार हम से नाराज-से हो रहे थे। इसलिये हमे मनुष्यो से पशुओ का सङ्ग और नगर से वन अच्छा लगता था। एक तरह हमें संसार से विरक्ति-सी हो गयी थी। उन दिनो हम अक्सर 'वैराग्य-शतक" को पढ़ा करते थे। इसी से हमे उसी के अनुवाद की सूझ गई। यद्यपि मन में खयाल होता था कि, तुम्हारे जैसे मामूली आदमी का अनुवाद किसी को पसन्द न आयेगा, तुम्हारा ऐसा प्रयास करना बौने के चाँद छूने की चेष्टा के समान होगा, पर हमने "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः" के न्यायानुसार, उसमें हाथ लगा ही तो दिया और बुरा-भला जैसा बना उसे पूरा कर दिया।

यद्यपि आशा नहीं थी कि, हमारे जैसे अयोग्य व्यक्ति का किया अनुवाद कोई पसन्द करेगा; पर हिन्दी के कितने ही समाचारपत्रो ने उसकी दिल खोल कर प्रशंसा की और बिना किसी प्रकार की विज्ञापनबाजी के वह कोई ८-१० मास मे ही हाथों-हाथ बिक गया। यह सब क्यो हुआ? यह अनाथ भगवान् कृष्णचन्द्र की कृपा के कारण से हुआ। क्योंकि अपने

किये हुए किसी भी काम को हम अपना किया हुआ नहीं समझते। हम तो यही समझते हैं,—जो कुछ वह कराते हैं, हम वही करते हैं।

"वैराग्य-शतक" की भूरि-भूरि प्रशंसा होने और पबलिक के बड़ी चाह के साथ खरीद लेने से हमारा उत्साह बढ़ा। उधर कदरदान पाठकों ने लिखा, कि आप "नीति-शतक" और "शृङ्गार शतक" का भी ऐसा अनुवाद क्यों नहीं करते ? इससे हमने "नीति शतक" और "शृङ्गार-शतक" का भी अनुवाद कर डाला।

"वैराग्य-शतक" का अनुवाद हमने जिस ढङ्ग से किया था, प्रायः उसी ढङ्ग से इन दोनों शतकों का भी अनुवाद किया है। सच तो यह है, हमने "वैराग्य-शतक" की अपेक्षा "नीति-शतक" में बहुत ज्यादा परिश्रम किया है। "वैराग्य" में पहले मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, व्याख्या के अन्त में अङ्गरेजी अनुवाद दिया है। "नीति-शतक" में यही सब काम किये गये हैं। इतनी विशेषता है, कि इसमें मौके-मौके पर पूरब-पश्चिम के अनेक नीतिकारों की नीति भी लिख दी है। अङ्गरेज विद्वानों के सैकड़ों बहुमूल्य वचन, कहावतें और मॉटो प्रभृति दी हैं। साथ ही अनेक स्थलों में हमने अपना अनुभव भी लिखा है। इससे पाठकों के चित्त पर और भी जल्द असर होगा।

मनुष्य जीवन में नित्यप्रति काम में आने वाले बहुत ही कम ऐसे नीति-वाक्य होंगे, जो पुस्तक में पाठकों को न मिलें। हमने इसका नाम "नीति-शतक" रक्खा है, पर असल में यह संसार की नीति का सार है। इसी से ४०।५० पृष्ठों में खतम होने वाला ग्रन्थ कोई ५०० पृष्ठों में खतम हुआ है।

इस ग्रंथ के लिखने में हमें उस्ताद ज़ौक़, महाकवि ग़ालिब, महाकवि दाग़, गुलिस्ताँ, महाभारत, कुमारसंभव, किरातार्ज्जुनीय, रघुवंश, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति अनेक ग्रन्थों से सहायता लेनी पड़ी है। उस्ताद ज़ौक़ और महाकवि दाग़ प्रभृति से हमें जो कुछ मदद मिली है, उसके लिये हम अपने माननीय मित्र पण्डितवर ज्वालादत्त जी शर्मा, किसरौल, मुरादाबाद के अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पण्डित जी की पुस्तकों की सामग्री से एक नवीन प्रकार की खूबसूरती आ जाती है, जिसे पब्लिक खूब पसन्द करती है। पण्डितजी की चीज को हम अपनी ही समझते हैं, अतः धन्यवाद देने की जरूरत नहीं। अपने घनिष्ठ मित्रों को बारम्बार धन्यवाद देना मैत्री का मूल्य घटाना है।

सबसे अधिक धन्यवाद हम लॉर्ड चेम्सफर्ड महोदय, भूतपूर्व वायसराय और मिष्टर गॉरले एम० ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस. प्राईवेट सक्रेटरी टू हिज एक्सेलेन्सी दी गवर्नर आव् बङ्गाल को देते है, जिनकी असीम दयालुता और सहानुभूति बिना हम इस ग्रन्थ को लिख ही न सकते थे, क्योंकि उक्त दोनों परमदयालु सज्जन यदि हम पर दयादृष्टि न करते, तो "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के दो भाग और "वैराग्य शतक" का अनुवाद ही इस जगत में हमारे आखिरी ग्रन्थ होते। भगवान् श्रीमान् लॉर्ड चेम्सफर्ड और मिष्टर गॉरले महोदय को शतायु करे और उन्हें अपनी बेशक़ीमत-से-बेशक़ीमत न्यामतें बख़्शे।

आशा है, पाठक "वैराग्य-शतक" की तरह हमारे "नीति-शतक" के अनुवाद को भी पसन्द करेंगे। उनकी कृपा रही, तो चन्दरोज़ में "शृङ्गार-शतक" भी इसी सजधज के साथ छपकर उनके करकमलों में पहुँचेगा।

विनीत :

कलकत्ता, अगस्त, सन् १९२० ई०

हरिदास

विषय-सूची

★

विषय		पृष्ठ
१ महाराजा भर्तृहरि का परिचय	...	१—३७

नीति-शतक ।

२ अज्ञ-प्रशंसा ...	...	...	१
३ विद्वानों की प्रशंसा	...	...	५४
४ मान-शौर्य्य प्रशंसा	...	...	१६१
५ धन-महिमा ...	...	...	१८१
६ दुर्जनों की निन्दा	...	..	२३१
७ सज्जन-प्रशंसा ..	...	...	२६६
८ परोपकारियों की प्रशंसा	.	...	३०३
९ धैर्य्य-प्रशंसा ...	...	...	३४७
१० दैव-प्रशंसा ...	...	...	३९९
११ कर्म-प्रशंसा ...	...	...	४१६—४८६

चित्र-सूची

★

महाराजा भर्तृहरि की जीवनी

चित्र		पृष्ठ
१ तपस्वी ब्राह्मण और अमरफल	...	२६
२ महाराजा भर्तृहरि और तपस्वी	...	२८
३ महाराजा भर्तृहरि और पिंगला	...	२६
४ दारोगा और रानी पिंगला	...	३१
५ दारोगा और वेश्या	...	३२
६ वेश्या और महाराजा भर्तृहरि	...	३३
७ महाराजा का वैराग्य	...	३५

नीति-शतक

८ शिवजी और गङ्गा	...	२७
९ सिंह भूखा होने पर भी घास नहीं खाता	...	१६१

चित्र			पृष्ठ
१० कुत्ता और सिंह	...	...	१६३
११ कुत्ता और गजराज	...	...	१६५
१२ मैनाक और इन्द्रवज्र	...	...	१७६
१३ सूर्य्यकान्तमणि	...	...	१७८
१४ घड़े में कूप और समन्दर से समान जल आता है			२२४
१५ सत्पुरुषों की नम्रता	...	..	३०४
१६ समुद्र की अपूर्व सहनशीलता		...	३३४
१७ समुद्र-मन्थन	...	...	३४८
१८ कार्य्यार्थी पुरुष की ६ अवस्थायें		...	३४९
१९ सर्प का बन्धन और मुक्ति	...	...	३५७
२० गंजे का मस्तक फटना	..	...	४०७
२१ देवता कर्म-बन्धन में	...	...	४१८
२२ अनुवाद के ऊपर रेलवे ट्रेन		...	४२५
२३ शिकारी और हिरनी	...	...	४२७
२४ शिकारी और कबूतर का जोड़ा		...	४२८
२५ कर्म प्राणी का पीछा नहीं छोड़ते (कर्म और जीवात्मा)			४४९

* श्रीः *

महाराजा भर्तृहरि

कहते है कोई दो हजार वर्ष पहले, राजपूताने के मालवा प्रांत की उज्जयिनी नगरी में,—जिसे आजकल उज्जैन कहते है,—एक उच्च श्रेणी के विद्वान, नीतिकुशल, न्यायपरायण, प्रजावत्सल सर्व गुण सम्पन्न नृपति राज करते थे। आपका शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजा को निज सन्तान से भी अधिक चाहते थे और उसी की हित चिन्तना मे रात दिन मशगूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजा-हितैषिता की चर्चा सारे भारत मे फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्यो की भी बहुसंख्यक प्रजा अपना देश छोड़ कर आपके राज्य मे आकर बस गई थी; इससे उज्जयिनी की शोभा-समृद्धि आजकल के कलकत्ते बम्बई के समान होगई थी। राजा के धर्मपरायण होने के कारण प्रजा भी

धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समय पर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्त मे लोग अकाल का नाम तक भूल गये थे। राजा-प्रजा के भण्डार सदा धन-धान्य मे पूर्ण रहते थे। गरीब दोनो समय पेट भर अन्न खाते थे। प्रजा को किसी बात का दुःख क्लेश और अभाव नहीं था। चोरी,जोरी,लूट-मार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृति का नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राजदरबार मे आता था। इन जुर्मों के मुजरिमो को महाराज सख्त सजा देते थे। न्याय, नीति और धर्म पर चलने वालों के लिये महाराज जैसे दयालु थे, दुष्ट और अन्यायियो के लिए वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि, महाराज को सभी उत्तमोत्तम राजोचित गुण विधाता ने दिये थे। आपके राज्य मे शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देख सकता था। निर्बल और सबल सभी अपनी-अपनी ख्याल मे मस्त थे। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है, कि मालवा प्रान्त की प्रजा फिर से राम-राज्य का सुख लूटती हुई,हृदय से महाराज की मङ्गल-कामनाऔर उन के दीर्घ जीवन के लिए जगदीश से कर जोड प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजा को कोई राज-भक्ति का पाठ जबर्दस्ती नहीं पढ़ाता था। सुखी होने के कारण, प्रजा आप ही राजा को पिता की तरह मानती थी और उसमें अचल-अटल भक्ति रखती थी।

महाराज के एक छोटे भाई भी थे। उनका नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बड़े भाई की तरह ही विद्वान, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीतिकुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयंकर युद्धों में विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त कर. भारत की रक्षा की और उन्हें इस देश से निकाल बाहर कर, अपने नाम से संवत चलाया, जो आजतक विक्रम-संवत के नाम से पुकारा जाता है। आपही का चलाया संवत् अब तक पंचाङ्गों, जन्त्रियों और साहूकारों के बही खातों में लिखाजाता है। यद्यपि काल की कुटिल गति, जमाने के फेर या देश के दुर्भाग्य से आजकल ईस्वी सन की तूती बोल रही है। लोग चिट्ठी पत्रियों एवं अन्यान्य कागज और दस्तावेजों में, आपके संवत को छोड़कर ईस्वी सन को लिखने की मूर्खता करते हैं; पर बहुत से सज्जन अपनी भूल को सुधार कर, फिर महाराज के संवत् से ही काम लेने लगे हैं। आशा है, सभी भूले हुए राह पर आजावेंगे और संवत के कारण से महाराज का शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोक में अमर रहेगा।

महाराज विक्रम के समय में बौद्ध-धर्म बड़े जोरों पर था। ब्राह्मण-धर्म की नींव खोखली होगई थी। आपने ही बौद्धों को मार भगाया और ब्राह्मण-धर्म की फिर से स्थापना की। आप अपने जमाने में भारत के सर्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे। प्राय: सभी राजे-महाराजे आपको अपना सम्राट् या नेता मानते थे। सभी

आपके इशारों पर नाचते थे। आप कहने को तो उज्जैन के राजा कहलाते थे, पर आपके राज्य की सीमा बड़ी-लम्बी चौड़ी थी। अतुल धन वैभव और सुविस्तृत राज्य के अधीश्वर होने पर भी, आप मे अभिमान नाम को भी न था। आप छोटे-बड़े सभी से मिलते और बाते करते थे। आप एक चटाई पर सोया करते और अपने पीने के लिये च्षिप्रा नदी से एक तूम्बा जल स्वयं अपने हाथो से भर लाते थे। आप आजकल के राजाओ की तरह प्रजा के पैसे से ऐश आराम नहीं करते थे। आपका सारा समय प्रजा की भलाई में ही व्यतीत होता था। आप अधिक से अधिक तीन चार घंटे सोते थे। रात के समय भेष बदल कर, आप अक्सर शहर मे गश्त लगाया करते थे और इस बात की खोज किया करते थे कि मेरी किस प्रजा को कौन सा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उसका दुःख या अभाव किसी न किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थे। अनेक मौको पर तो आपने अपनी बेश कीमत जान को खतरे मे डाल कर भी, प्रजा का दुःख दूर किया था। इसी से प्रजा आपको "परदुःखभंजन" कहती थी। भारत में अब तक हजारो-लाखो राजा-महाराजा होगए होंगे। पर आपके सिवा और किसी को भी यह महामूल्य उपाधि नसीब नहीं हुई। हाँ, ईरान के खलीफा हारूँ-उर-रशीद के सम्बन्ध मे ऐसी ही बातें सुनी जाती है। खलीफा हारूँ रशीद भी महाराज विक्रम की तरह रात को भेष बदलकर घूमा करते और दीन-दुखियो का पता लगाकर, उनके कष्ट-मोचन किया करते थे। इस पृथ्वी पर आज

तक न जाने कितने एक-से-एक बढ़कर राजा-महाराजा होगये, जिनकी हुङ्कार से पृथ्वी काँपती थी, जिनके पास असंख्य सेना, सामन्त और अतुल धन-भण्डार था पर आज उनका नाम भी कोई नहीं लेता, पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजा-कष्ट-मोचन करने वाले महीपालो का नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगो की जबान पर रहेगा। इस जगत् मे जिनकी कीर्त्ति है, वह मर जाने पर भी अमर है। कीर्त्तिमान् मृतक नही समझा जाता। मृतक वही है, जिसकी कीर्ति या सुनाम नही है। महाराजा विक्रम, खलीफा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट् अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनियाँ मे नही हैं, पर उनका सुनाम लोगों की जबान पर है। अतः वे सशरीर न रहने पर भी अमर है। धन्य हैं ऐसे नरपाल! ऐसे भूपालों मे ही मही की शोभा है!

हमें यहाँ महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्ध मे नही लिखना है। लिखना है—महाराजा भर्तृहरि के सम्बंध मे। प्रसगवश, हम महाराजा विक्रमादित्य के विषय में इतना लिख गये। अब फिर असली मुकाम पर आते हैं। सुनिये, प्रातःस्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि बड़े होने के कारण राज करते थे। महाराजा विक्रम बड़े भाई के प्रधान मन्त्री का काम करते थे। दोनो भाइयोमे बड़ा प्रेम और सद्भाव था। राम-लक्ष्मणकी सी जोड़ी थी। राम, लक्ष्मण को जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाई विक्रमको प्यार करते थे। लक्ष्मण, राम मे जैसी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, वैसी ही श्रद्धा और भक्ति

विक्रमादित्य महाराज भर्तृहरि में रखते थे। दोनो ही दोनो के लिये जी-जान से चाहते थे। बड़े भाई छोटे को निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़े को पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राजकार्यदक्ष थे; तथापि उन्होंने राजकाज का विशेष भार विक्रम पर ही छोड़ रक्खा था। पिता जिस तरह सुपुत्र पर गृहस्थी का सारा भार छोड़ कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि विक्रम पर राज काज का भार छोड़ कर निश्चिन्त हो गये थे। महाराज विक्रम भी अपनी कुशाग्र बुद्धि और राजनीतिज्ञता से सारे काम सुचारु रूप से चलाते थे और राज काज की जटिल समस्याओं के सुलझाने में महाराज के दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज्य मे आनन्द की बाँसुरी बज रही थी, पर परमात्मा की इच्छा या होनहार के कारण आगे चल कर एक विष वृक्ष पैदा हो गया। उसने इन दोनो भाईयो मे मनोमालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनों को एक दूसरे से जुदा करा दिया। जिसका लोगों को स्वप्न मे भी खयाल नहीं था, जिसका होना लोग असंभव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है, होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरि की दो या तीन शादियाँ हो चुकी थीं। फिर भी; आपने किसी देश की अपूर्व रूप-लावण्यसम्पन्ना, परम-सुन्दरी, रतिमानमर्दिनी, मुनि मन मोहिनी अप्सराओं को

भी शर्माने वाली एक राजकुमारी से शादी करली। नयी महारानीका नाम पिंगला था। महारानी पिंगला के असाधारण रूपवती होने के कारण, महाराज उनके रूप पर ऐसे मोहित हुए, कि अपनी विद्या-बुद्धि विवेक और विचार प्रभृति को ताक पर रखकर, उनके हाथों बिक गये—उनके क्रीतदास हो गये। ठीक शाहन्शाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ का सा हाल हुआ। जिस तरह नूरजहाँ के बिना दिल्लीश्वर जहाँगीर को एक क्षण भी कल न पड़ती थी, उसी तरह महाराज भर्तृहरि को भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिस तरह जहाँगीर की नकेल नूरजहाँ के हाथों में थी, उसी तरह महाराज भर्तृहरि की नकेल पिंगला के हाथों में थी। जिस तरह जहाँगीर बादशाह नूरजहाँ के हाथों की कठपुतली थे, उसी तरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगला के हाथों की कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर नाम के बादशाह थे, नूरजहाँ ही बादशाहत की असल सञ्चालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी। बादशाह सिर्फ दस्तखत और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरि की भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थी, वही महाराज से करा लेती थी। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे, बिना आगा-पीछा देखे, आँखे बन्द करके, रानी पिंगला की इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगला ने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवास खोकर पूरे तौर से उनके जरखरीद गुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्री का गुलाम होना उचित नहीं,

स्त्री के वश मे होना सर्वनाश का बीज बोना है;पर इन मोहिनियो के आगे प्रायः सभी की सिट्टी गुम हो जाती है। हम महाराज को ही दोषी क्यों ठहरावें,जब कि बड़े-बड़े योगीश्वर मोहिनियो के रूप-जाल में फँसकर अपनी बुद्धि खो बैठे? इन योगिजन मनोहरा कामिनियो ने किसका मन हरण नही किया? इन मोहिनियो की मोहिनी-शक्ति के आगे किसने हार नही मानी? इनके मोहन मंत्र से कौन पागल नहीहुआ? इनकी मोहिनी माया मे कौन नहीं फँसा? शिव जैसे परम योगीश्वर मोहिनी की रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज़-नखरो पर पागल हो गये। विश्वामित्र जैसे महामुनि मेनका के रूपजाल मे फँस कर अपना तप भङ्ग कर बैठे। मरीचि और शृंगी जैसे महर्षि इनकी मनो-मुग्धकर रूप-माधुरी पर सुधबुध खोकर तपस्या छोड़ बैठे; तब साधारण मनुष्यो की कौन बात है? बड़े-बड़े शूरवीर जो जगत को परास्त कर सकते हैं, वे भी इनके सामने कायर हो जाते है। किसी कवि ने कहा है—

> व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा,
> नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः।
> मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
> स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति॥

गर्दन पर बिखरे हुए बालो वाला कराल मुखी सिंह, अत्यन्त मदवाला हाथी और बुद्धिमान, समरशूर पुरुष भी स्त्रियो के आगे परम कायर हो जाते हैं।

परमात्मा ने भी स्त्रियों के साथ पक्षपात किया है। उसने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमता से ये पुरुषों को उसी तरह अपने अधीन कर लेती हैं; जिस तरह मनुष्य गाय, बैल, घोड़े घोड़ी प्रभृति पशुओं को अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम बड़े-बड़े धनुर्धारी अपनी बाणविद्या से सिद्ध नहीं कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्ष से सिद्ध नहीं कर लेती हैं। इनके कटाक्षबाणों के लगने से बड़े-बड़े युद्धों को जीतने वाले, कभी भी हार न खाने वाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड़-बकरी की तरह इनके वश में हो जाते हैं। ये मोहिनी नजरों में मार लेती हैं; मधुर-मधुर बोलने से चित्त को चुरा लेती हैं; हाव-भाव या नाज-नखरों से हृदय को मोह लेती हैं। मामूली आदमियों का तो जिक्र ही क्या, ये हवा और राख खाकर जिन्दगी बसर करने वाले महात्माओं को भी मोहित कर लेती हैं, इसी से लोग इन्हें मुनि मनमोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक रूपी हिरनों के बाँधने के लिये मजबूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराज को बन्धन में फँसा रखने के लिये जबरदस्त जञ्जीर हैं। ये अबला होने पर भी सबला हैं, गौ होने पर भी बाघ हैं; कोमलाङ्गी होने पर भी वज्राङ्गी हैं और निर्मला होने पर भी कुमला है। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक को अपने वश में कर लेती हैं। जब वह इनके वश में हो जाता है, तब उसका ज्ञान काफूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन अज्ञानी पति अपनी स्त्री के सामने मूक पशुवत् हो जाता है। वह अपनी स्त्री की हाँ-में-हाँ मिलाता है, उसके कुकर्म देखकर,

भी नहीं बोलता; क्योंकि स्त्रियाँ अपने चाहने वालों को ऐसा ही बना लेने की सामर्थ्य रखती हैं। किसी ने कहा है:—

अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाख के रंग को जोर से दबा कर अपने चरणों मे लगाती हैं, उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने-वालो को अपने चरणों मे डाल लेती हैं।

पर इन मोहिनियों पर जी जान से लट्टू होने वालों, इन पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास कर लेने वालों और इनकी अन्धभक्ति करने वालों को अन्त मे दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पड़ता है, इसमे जरा भी शक नहीं। अतः इनको मध्य अवस्था से सेवन करना चाहिए; क्योंकि यदि पुरुष इनसे दूर रहे, तो फल नहीं मिलता और एकदम इनका हो ले तो ये सर्वनाश का कारण हो जाती हैं। जो पुरुष स्त्रैण या स्त्री के गुलाम हो जाते हैं, जो इनको सिर पर चढ़ा लेते हैं, जो इनके ही मत पर चलते हैं, उनको दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हे खूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र होकर मनमाने दुष्कर्म करती हैं। कहा है:—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः॥
नाति प्रसङ्गः प्रमदासु कार्य्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम्।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः॥

जो कृती पुरुष स्त्रियों की छोटी-बड़ी या थोड़ी-बहुत बातों को मानता है, वह सब तरह से नीचा देखता है।

स्त्रियाँ से अति प्रसंग न करना चाहिये; क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषों से वह पंख-नुचे हुए कौवे के समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वान् और त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारो के अमूल्य उपदेशों पर ध्यान नही देते, उन्हें दुःख के गहरे गड्ढे मे गिर कर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान् और बुद्धिमान थे, पर भावी के वश होने के कारण, उन्होने शास्त्रोपदेश पर ध्यान न देकर महारानी पिंगला को सिर पर चढ़ा लिया। उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ कि उसने महाराज को अपने ऊपर पूर्णरूप से अनुरक्त पा, उनको खेल का पक्षी सा जान लिया और उन्हे अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गई। वह क्या कुकर्म करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बाते पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमें यही विचारना है कि महाराज भर्तृहरि जैसे चतुर चूड़ामणि और विद्वान् राजा ने ऐसा मौका क्यो दिया ?

पाठक ! जैसी भावी होती है, मनुष्य की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। अगर भावी के अनुसार बुद्धि हो जाय, तो भावी कैसे हो ? दशरथ नन्दन महाराज रामचन्द्र तो विष्णु के अवतार माने जाते है; वे कुटिया में सीता को छोड़ कर, सोने के हिरन के पीछे तीर कमान लेकर क्यों भागे ? साधारण आदमी

भी समझ सकता है, कि सोने का हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृग का होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्र जी को इतना सी ख्याल न हुआ! हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्र जी की हो गई। उनके और लक्ष्मण जी के सीता को सूनी छोड़ जाने से, रावण को मौका मिला और वह यति का भेष धरकर सीता को लंका में ले गया। परिणाम में घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरि की बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिंगला के हाथ की कठपुतली न हो जाते, तो पिंगला को व्यभिचारिणी होने का मौका कैसे मिलता? प्राण-प्यारे भाई विक्रम से वियोग कैसे होता? शेष में अपनी प्राण-प्रिया के कुकर्म का हाल जान कर, महाराज को विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्याग कर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं संसार में एक पत्ता भी बिना परमेश्वर की मरजी के नहीं हिलता। इस जगत् मे जो कुछ होता है, वह जगदीश की इच्छा से होता है, जगदीश जो चाहते है सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं वह प्राणी की भलाई के लिये करते है, इसमें संदेह नही। जगदीश की इच्छा से ही कई रानियों के होते हुये भी, महाराज ने पिंगला का पाणिग्रहण किया। जगदीश की इच्छा से ही, वह सब विद्या बुद्धि बिसरा कर रानी के क्रीत-दास हुए। इससे महाराज का बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसार से विरक्ति न होती,

तो क्या आज उनका नाम इस जगत् में अमर रहता? उनकी कीर्ति अचल होती? उन्होंने जिस सर्वोच्च पद—परमपद—की प्राप्ति करली, उसकी प्राप्ति कर सकते? हरगिज नहीं। इसी से कहना पड़ता है कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदास जी दोनों के आरम्भ में, पल्ले सिरे के विषयी और स्त्रैण होने से ही उन्हें वैराग्य हुआ। बुराई से भलाई हुई और जो परमात्मा करता है, वह मनुष्य की भलाई के लिये ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विष वृक्ष से अमृत-फल की उत्पत्ति हुई। ठीक गोस्वामी तुलसीदास जी की-सी घटना घटी। गुसाईं जी को भी स्त्री के ही कारण से वैराग्य हुआ और हमारे महाराज को भी स्त्री के ही कारण से। हाँ, घटनाक्रम में थोड़ा अंतर अवश्य है।

स्त्रियों के स्वभाव की कोई बात समझ में नहीं आती। ये अपने व्याहता, सुन्दर खूबसूरत, नौजवान, बलवान, वीर्यवान, चतुर कामकलाकुशल पति को त्याग कर, एक नीच-कुलोत्पन्न गवार, बदसूरत काले-कलूटे, अधेड़ और बूढ़े पर मरने लगती है। ये पुरुषमात्र को भोगने की इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूप-कुरूप से कोई मतलब नहीं। इन्हे न कोई प्यारा न कुप्यारा। जिस तरह गाय नई-नई घास पसंद करती है; उसी तरह ये नित नये पुरुषों को चाहती हैं। जब तक इन्हें कोई चाहने वाला नहीं मिलता या मौका हाथ नहीं आता, तभी तक ये सती बनी रहती हैं। ये अपने सच्चे प्रेमी को नहीं चाहतीं, उससे घृणा करती

हैं अथवा उदासीन रहती हैं, किन्तु जो इन्हें नहीं चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरे का धूर्त और दगाबाज होता है, जो दुर्गुणों की मूर्ति और दुष्टता की खान होता है, उसके लिये ये अत्यातुर रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियों को सद्‌गुणशालिनी और उत्तम स्वभाव वाली समझते हैं, वे बड़ी गलती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती हैं, कि अच्छे-से-अच्छे चालाक को भी अपने कुकर्मों का पता नहीं लगने देतीं। ये किसी की भी बात को जान-सुन कर पेट में नहीं पचा सकतीं, पर अपनी बात को ये छिपाना खूब जानती हैं। जब ये कुकर्मों पर उतर पड़ती हैं तब इन्हें लोक-लाज, लोकनिन्दा प्रभृति की परवा नहीं रहती। दुनियाँ बुराई करे करो, माता-पिता, भाई और जेठ ससुर प्रभृति की नाक-कटाई हो तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवन में संदेह हो जाय, तो हो जाय, पर ये जिस बात को धार लेती हैं, उससे पीछे कदम नहीं रखतीं। ये देखने में पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर हृदय इनका वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसी पर दया-मया नहीं। इन्हे तो अपनी कुवासनापूरी करनेसे मतलब। अपनी कुवासना पूरी करने के लिये, ये सब सुखों के देने वाले पति के प्राणनाश कर देतीं हैं, अपने जेठ ससुर को मरवा डालती हैं। यहाँ तक कि अपनी पेट की औलाद तक की हत्या पर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम् ।
विधृत स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्र स्वक रुषा ॥

स्त्रियो के दौरात्म्य की बात कहाँ तक कहे ? ये क्रोध मे आकर अपने पेट के पुत्र को भी मार डालती हैं।

महारानी पिंगला पर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौसठ घड़ी उसी का ध्यान रखते थे। महारानी रात को दिन और दिन को रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उसी की आज्ञा पालन करने और हाँ मे हाँ मिलाने को तैयार रहते थे। महाराज मे कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान्, बलवान् वीर्य्यवान् और सर्वकला-कुशल पुरुष थे, पर महारानी ऊपर से आपके चाहने का ढोंग करती थी, और भीतर से आप से उदासीन रह कर एक नीच को चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कारा और दुश्चरित्रा थी। ऊपर से गोरी और भीतर से काली, प्रत्यक्ष मे सुन्दर और अप्रत्यक्ष मे असुन्दर, प्रकट में सती और अप्रकट मे असती थी। उसने लोक-निन्दा और कुल की कान की परवा न करके, एक नीच नमकहराम अस्तबल के दारोगा से आशनाई कर ली। यह बात उसने बहुत दिनों तक महाराज से छिपाई। महाराज जब महलो मे आते, तब वह अपने हाव-भाव और नाज़-नखरो से महाराज का मन हाथो मे कर लेती। उनसे ऐसी-ऐसी बाते करती जिनसे महाराज यही समझते, कि मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस जमाने की दूसरी सावित्री है। पर उनके पीठ

फेरते ही वह दारोगा को बुलवा कर उसके साथ ऐश-आराम करती। महाराज वेचारे इस त्रिया-चरित्र को समझ न सकते थे।

किसी ने ठीक ही कहा है:—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जन मानवानां।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥

राजा के चित्त को, कृपण के धन को, दुष्टो के मनोरथ को, स्त्रियों के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते. मनुष्य कौन चीज है?

बहुत दिनों तक यह कलंक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापो को कितना ही छिपावे, पर एक न एक दिन वे प्रकट हो ही जाते है, एक न एक दिन संसार उनको जान ही जाता है। मनुष्य, मनुष्य के गुप्त कामों को नहीं देख सकता; मनुष्य मनुष्य के दिल का हाल नही जान सकता; पर परमात्मा से कुछ नहीं छिपता। उसकी नजर हर जगह पहुँचती है। वह सात कोठो के अन्दर भी मनुष्य के कुकर्मों को देख लेता है। वह घट-घट निवासी अन्तर्यामी मनुष्य मात्र के हृदय के भीतर की बात को जानता है। जब तक उसकी इच्छा नही होती, मनुष्य के कुकर्म छिपे रहते हैं; उसकी इच्छा होते ही उन्हे जगत् जान जाता है। मनुष्य मनुष्य की आँखो मे धूल झोंक सकता; पर परमात्मा की आँखों मे धूल नहीं झोंक सकता। जब तक समय नहीं आया, महारानी की पाप-लीला छिपी रही। समय आते ही, पहले-

पहले वह गुप्त रहस्य राजकुमार विक्रम को मालूम हुआ। महारानी के कुकर्म की बात उनके कानों तक पहुँच गई। हाँ, महाराज अँधेरे ही में रहे।

भौजाई के पर-पुरुपरता होने की बात से राजकुमार विक्रम को असह्य मनोवेदना हुई। उनका खाना-पीना, सोना-बैठना सब छूट गया। सोते-जागते हरदम वही खयाल उनके नेत्रों के सामने चक्कर लगाने लगा। अपने सुप्रसिद्ध उच्च कुल में दाग लगने और पूज्य भाई के अनिष्ट की आशंका से उन्हें नींद हराम हो गई। करवटें बदलते और छत की कड़ियाँ गिनते रातों पर-रातें गुजरने लगीं। उन्होंने अनेक बार महाराज से यह बात कहने का विचार किया; पर महाराज का महारानी पर निश्चल विश्वास और अटल प्रेम देख कर साहस न हुआ। शेष में, एक दिन मौका पाकर, एकान्त में उनसे बात छेड़ ही तो दी। वे बोले, "पूज्य अग्रज! आप मेरे पिता के समान ज्येष्ठ भ्राता हैं; आप सब तरह से चतुर, होशियार और परले सिरे के बुद्धिमान् हैं; पर एक जगह आप धोखा खा रहे हैं। मेरा ऐसा कहना, छोटे मुँह बड़ी बात करना है। इच्छा तो नहीं होती कि आपसे अर्ज करूँ। मेरी छछूँदर की सी गति हो ही रही है; कहूँ तो खराबी, न कहने से कुल में दाग लगता है, बदनामी होती है और आपके जीवन में संदेह होता है। कहने से आप का भय लगता है। आशा नहीं कि आप मेरी सच्ची बात पर विश्वास करें। दिल को बहुत रोका, बहुत समझाया पर आज वह न माना, तब

मजबूर होकर आप से अर्ज करने का मन्सूबा किया। कहिये, क्या आप अपने प्यारे छोटे भाई और अपने तुच्छातितुच्छ सेवक की बात पर कान दीजियेगा?

"सुनिये, भाई साहब! क्या कहूँ, कहा नहीं जाता, गला रुका आता है, जबान लड़खड़ाती है; पर लाचारी से कहना पड़ता है। मैंने भावी के सम्बन्ध में एक कलङ्कपूर्ण बात सुनी है। सुनकर ही मैंने उसे ठीक नहीं मान लिया; उसकी पूरी तरह से पोशीदा तौर पर तहकीकात भी की। जाँच में बात के सच्ची उतरने पर, मैंने आपसे कहने का दृढ़ संकल्प किया है। आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप सावधान होकर चलें, अत्यधिक विश्वास अच्छा नहीं। शास्त्रकारों ने कहा है—

'नदीनांच नखीनाच श्रङ्गीणां शस्त्रपाणिनां।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥'

"यह राई-रत्ती सच है। इसमें जरा भी झूठ नहीं। यह महावाक्य बड़े भारी अनुभव के बाद कहा गया है। महाराज! आप भाभी की माया में भूल रहे हैं। स्त्रियों का जो विश्वास करते हैं, उनको सती-साध्वी समझे रहते हैं, उन पर सन्देह भी नहीं करते, वे बड़ी भूल करते हैं। किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

'यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलांछनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हितः॥'

"अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन

हितकारी हो जाय तो स्त्रियों के सतीत्व का विश्वास हो। महाराज स्त्रियों की मीठी बातों में न भूलना चाहिये। इनकी बातें जैसी है, वैसा दिल नहीं है। कहा है—

'सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हलाहलं महद्विषम्॥'

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँह से मनोहर-मनोहर बाते करती हैं और तीक्ष्ण चित्त से प्रहार करती है। इनकी बातों मे मधु और हृदय मे हलाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रम की सारी बाते चुपचाप सुनकर महाराज ने कहा,—"भाई तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। महारानी पिंगला आदर्श सती है। इस समय उनके जैसी सती विरली है। वह रात दिन मेरे लिये प्राण देती है, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती है, मेरे सुख से सुखी और दुःख में दुःखी रहती है। ऐसी सती को असती कहकर उन पर कलंक-कालिमा पोतकर तुम अच्छा नहीं करते। खैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इससे क्षमा करता हूँ; अगर और कोई होता तो अभी शूली पर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्य में फिर कभी ऐसी बेहूदा बात जबान से न निकालना।"

राजकुमार नें, महाराज के इतना कहने पर भी, उन्हें बहुत कुछ समझाया; कुछ प्रमाण भी दिये; पर पिंगला के रङ्ग में रँगे हुए महाराज पर कुछ भी असर न हुआ। अन्त मे जब राज-

कुमार ने इससे सुफल की सम्भावना न देखी, तब मन में यह समझ कर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता, समय आने पर भाई की आँखें आप ही खुल जायँगी, उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके है, कि महारानी पिंगला बड़ी चालाक थी। उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्म की बात—मेरे पाप कर्म का रहस्य राजकुमार जान गये हैं। इसलिये उन्होने पहले से ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराज के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगीं। जब उन्हें अच्छी तरह से मालूम हो गया, कि महाराज के दिल मे उनकी ओर से जरा भी वहम नहीं हैं: उनका उन पर सोलह आने विश्वास है, उन्होंने एक दिन उन्हे खूब ही राजी करके, राजकुमार के विरुद्ध उनके कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा; आपके छोटे भाई की नीयत बड़ी खराब है। मैं उनकी माता के समान हूँ, पर वे इस बात को न समझ कर मुझे बुरी दृष्टि से देखते है। और कोई होती तो उनके फंदे मे फॅस जाती; पर मुझ पर उनका फंदा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मी का मुँह न दिखावे। मैंने सुना है कि, वह अपने नगर सेठ की पुत्र-वधू पर भी आशिक हैं। उसके पीछे उन्होंने बहुत दिनों से दूतियाँ लगा रक्खी हैं। उस बेचारी को अनेक प्रकार से फुसलाया, तरह-तरह के लालच दिये; पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है इसलिये आजतक उनके जाल मे न

फसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर सेठ को धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात, कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाम में बट्टा लगाते है। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उन पर नजर रक्खे, उनसे सावधान रहें।"

महारानी की इन बातों को सुनकर महाराज सन्न हो गये; मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँखें लाल होगई। उनका मन कभी कहता था, "नही, नहीं, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नही है। वह पण्डित है, वह पर स्त्रियो को अपनी निज जननी के समान समझता है।" कभी उनका मन कहता था, "हो सकता है, विक्रम का चरित्र खराब हो। पिंगला सी सती नारी मिथ्या दोष नहीं लगा सकती। इसे उससे क्या वैर है? हाय! भर्तृहरि का भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़-बुन करते करते, ताना-बाना बिनते बिनते, कभी इधर कभी उधर भटकते-भटकते, शेष में महाराजा का मन महारानी पिंगला की बातों पर ही ठहर गया। उन्हे विश्वास हो गया, कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है; पर इतने पर भी, उन्होने प्रकाश मे भाई से कुछ न कहा।

इधर तो रानी ने महाराज को यह पट्टी पढ़ाई; उधर नगर-सेठ को बुलवा कर उससे कहलवाया कि, तुमसे कहूँ सो करो; नही तो तुम्हारी जान की खैर नहीं। राजा मेरी मुट्ठी मे है।

मैं तुम्हारे बच्चे-बच्चे को कोल्हू में पिलवा कर तुम्हारा सर्वस्व अपहरण करा लूँगी।

नगर-सेठ ही क्यों—सारा नगर जानता था, कि महाराज पिंगला के हाथ की कठपुतली हैं। वह जो नाच नचाती है, महाराज वही नाच नाचते हैं। इसलिये सेठजी ने हाथ जोड़ कर कहलवाया—"महारानी जी! आप इतनी बातें क्यों कहती हैं, दास तो आपकी आज्ञा से बाहर नहीं। आपका हुक्म सर-आँखों पर। जो हुक्म कीजिये, गुलाम वही करने को तैयार है"

सेठ की यह बात सुन कर रानी ने कहलवाया—"आप जानते ही हैं, कि राजकुमार विक्रम कैसे अत्याचारी हैं। प्रजा को कितना कष्ट देते हैं। महाराज स्वयं तो राजकाज देखते नहीं, सारा काम राजकुमार ही चलाते हैं। मैं नहीं चाहती, कि वह प्रजा को कष्ट दें। इस वास्ते किसी तरह महाराज का मन खराब करके, उन्हें यहाँ से नौ-दो ग्यारह करवाना चाहती हूँ। यह काम आपकी सहायता से बड़ी आसानी से हो जायगा। आप कल राज-सभा में जाकर पुकार कीजिये, कि महाराज! आपके छोटे भाई साहब बहुत ही अत्याचारी, अनाचारी और व्यभिचारी हो गये हैं। वे बहुत दिनों से मेरी पुत्र-वधू को अपनी प्रणयिनी बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने उसके फँसाने के लिए बड़े-बड़े जाल फैलाये, पर मेरी सती-सावित्री सी पुत्र-वधू उनके जाल में न फँसी; इसी से मेरी इज्जत-आबरू अब तक बची हुई है। आप यदि न सुनेंगे तो मैं आपका राज्य छोड़ कर

किसी और राजा के राज्य मे चला जाऊँगा।"

नगर-सेठ रानी की बातों पर राजी हो गया। दूसरे ही दिन जब कि महाराज की सभा लगी हुई थी, हाली-मुहाली कामदार, मुसाहिब, मंत्री, सेनापति प्रभृति सब बैठे हुये थे; नगर-सेठ, दरवाजे से ही, कानो के पर्दे फाड़ने वाला "फ़रियाद है" "फरियाद है" का शोर मचाता हुआ, राज-सभा मे पहुँचा। महाराज ने उसे सामने बुला कर उसकी फरियाद सुनी। उसने रानी की सिखाई हुई सारी बातें ज्यों की त्यो महाराज को कह सुनाई। महाराज के दिल मे रानी ने पहले ही ये बाते बैठा दी थीं। अब सेठ की शिकायत से उन्हे कोई संदेह न रह गया। रानी की कही हुई सारी बाते उनके नेत्रों के सामने नाचने लगीं। उनका चेहरा क्रोध के मारे लाल हो गया।

राजकुमार उस वक्त सभा में ही बैठे थे। वे इस बात को सुन कर मन मे समझ गये, कि यह षड्यन्त्र पिंगला का रचा हुआ है। उन्होने सेठ से कहा,—"सेठजी! भगवान् का भय करो, मनुष्य से मत डरो। इस बुढ़ापे में स्वार्थ के लिये झूठ बोल कर क्यों पाप की गठरी बाँधते हो? परमात्मा सब देखता है। उसकी नजरो से कुछ भी नहीं छिपा है। मै तुम्हारी पुत्र-वधू को जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता वह काली है या गोरी, भली है या बुरी। मेरी तो वह माता के समान है। मै पर-स्त्रियो को अपनी जननी के समान समझता हूँ। जिसमे आपका पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्र की स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है:-

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरःस्मृताः ॥

"राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, स्त्री की माता, और अपनी माँ—ये पाँच माता कहलाती हैं। इसके सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ कर, जगत् की सभी नारियों को माता समझता हूँ, क्योंकि जो पराई स्त्रियों को माता के समान नहीं मानता, वह महा मूर्ख है। उसके पाप का प्रायश्चित्त नहीं। पर-स्त्री-गामी को नरकों की असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रों में कहा है—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥

"पर-स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।"

आप धर्म से डरिये; धर्म के सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीते जी के साथी हैं, मरने पर कोई साथ न देगा। आप मुझ पर वृथा दोषारोप करके यदि अपना मतलब बना लोगे तो क्या होगा? पार्थिक धन-वैभव आप के साथ न जायँगे। धन-वैभव का क्या ठिकाना? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है:—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

"शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य्य अनित्य है, और मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।"

और भी कहा है—

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवितमन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहिं निश्चलः ॥

"इस चराचर जगत् मे धन-प्राण सभी चलायमान है; केवल धर्म ही निश्चल है। अतः सेठजी ! धर्म को न छोड़ो। धर्म से डर कर, आप अपनी बात को वापिस लीजिये। आप किसी के वहकाने से मुझ पर मिथ्या दोष लगा रहे है। जब इस बात की जाँच की जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो ?"

राजकुमार की ये बाते सुनते ही, महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखे करके बोले—"अरे कुलाङ्गार ! नीच ! अधम ! पापी ! तू मेरे सामने जियादा बाते न बना। मै तेरे सब हालो को जानता हूँ। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवन रक्षा चाहता है; तो इसी क्षण मेरे नगर से निकल जा ! शीघ्र काला मुँह कर ! मैं तेरा काला मुँह देखना पसंद नही करता ! शीघ्र ही मेरी नजर के सामने से हट जा, नहीं तो तुझे अभी शूली पर चढ़वा दूंगा ! राजा पिता है, प्रजा पुत्र समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किसके पास जाय ? मै प्रजा के सुख से सुखी और प्रजा के

दुःख से दुःखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामने से ! दूर हो ! !"

भाई की ये बातें सुन कर राजकुमार विक्रम ने कहा—"भाई! मैं तो अभी—इसी क्षण चला जाऊँगा। आपके राज्यमें जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर क्या कर रहे हैं ! आपको कम-से-कम इस मुकद्मे की जाँच तो करनी थी। इस तरह इकतरफा फैसला देना, किसी भी राजा या विचारक को शोभा नही देता। अगर आप इसी तरह न्याय करेंगे, तो आपकी प्राणप्यारी प्रजा का नाश हो जायगा, वह आपसे दुःखी होकर और राज्यों मे जा बसेगी। आप जिसके हाथ की कठपुतली बन रहे हैं, वह आपके साथ छल कर रही है। उसके सुख में मैं ही एक काँटा हूँ; इसलिये वह मुझे निकलवाने की गरज से ही ये जाल रच रही है। खैर, मैं तो जाता हूँ; पर आपके अनिष्ट की आशंका अब भी मेरे हृदय में खलबली मचाती है। आपको एक दिन पछताना होगा। आपका हृदय मुझे याद करके रोवेगा। परमात्मा आपका मंगल करे, आपकी आँख भी मैली न हो।" यह कह कर राजकुमार फौरन सभा-भवन से निकल वन को चले गये। महाराज सिर पर हाथ धर कर कुछ सोच में पड़ गये। इसके बाद कई वर्ष निकल गये। कोई घटना न घटी।

नगरी का एक दरिद्र ब्राह्मण, अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये वन मे जाकर किसी देवता की घोर तपस्या करता था। उसे तप करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। तपःकष्ट से जब उसका शरीर एक दम कृश हो गया; तब देवता का आसन हिला। उसने

देवता ब्राह्मण की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसे अमरफल प्रदान कर रहे हैं।

ब्राह्मण के सामने सशरीर आकर उससे कहा—"ब्राह्मण ! मैं तेरी तपस्या से अतीव संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुझे यह "फल" देता हूँ। यह फल मामूली फल नहीं है। इसका नाम "अमर-फल" है। इसके खाने वाले पर मौत का जोर नहीं चलता। मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। तू इसे खाकर पृथ्वी पर अमर रह और सुख पूर्वक अपनी जिन्दगी बसर कर!" यह कह कर और फल देकर देवता अन्तर्द्धान हो गया।

ब्राह्मण उस "अमरफल" को लेकर अपने घर आया और अपनी स्त्री को उस फल का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणी उस फल की बात सुन कर सन्तुष्ट नहीं, वरन् असन्तुष्ट हुई। उसने कहा—"नाथ! देवता ने आपको 'अमरफल' दिया है, पर इससे अपना कष्ट घटने के बजाय उल्टा बढ़ेगा। अगर वह धन देते तो हमारा भला होता। हम लोग जन्म से दरिद्र हैं। हमारे घर में प्रत्येक वस्तु का अभाव है। आजकल धन बिना सुख कहाँ? धन बिना समाज में प्रतिष्ठा कहाँ? जिसके पास धन है, वही सुखी है। निर्धन को इस जगत् में सुख नहीं। दरिद्र से भाई बन्धु लजाते हैं; उसे अपना कहने में भी उन्हें शर्म आती है; इसलिये वे लोग अपना रिश्ता या सम्बन्ध तक छिपाते हैं। दरिद्र विपत्तियों का घर है। यह मरण का दूसरा पर्य्याय है। नाथ! दरिद्र देहधारियों को परम दुःख और अप-मान है। दरिद्र को नाते-रिश्तेदार नाश हुआ ही समझते हैं। शौच से शेष रही मिट्टी की कीमत है, पर दरिद्र की कीमत नहीं;

निर्धन उस मिट्टी से भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्र के मारे यों ही इस जिन्दगी से भारी आ रहे हैं, अब तो अपना कष्ट और भी बढ़ जायगा। अब तक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टों का अन्त कर देगी, पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्रय-कष्ट भोगना पड़ेगा। सारी जिन्दगी, जिसका ओर-छोर नहीं, दरिद्रावस्था में ही व्यतीत करनी पड़ेगी। यह फल तो उनके लिये अच्छा है, जिन्हे परमात्मा ने धन-रत्न-राजपाट प्रभृति सभी संसारी सुख दिये हैं। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरि को दीजिये और उनसे बदले में धन लेकर सुख से शेष जीवन व्यतीत कीजिये।'

बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचार के बाद ब्राह्मण देवता भी इसी बात पर जम गये। उन्हें ब्राह्मणी की बात ही सोलह आने ठीक जँची। इसलिये वह कपड़े पहन, फल हाथ मे ले, महाराज की सभा में पहुँचे। चोबदार ने खबर दी। महाराज ने उस ब्राह्मण को अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये, इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मण ने उस अमरफल की सारी कहानी सुना कर, वह फल राजा के हाथ में दे दिया। राजा ने उसे खुशी से ले लिया और ब्राह्मण को कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देने का हुक्म दिया। ब्राह्मण अशरफियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

तपस्वी ब्राह्मण महाराजाधिराज भर्तृहरि को "अमरफल" दे रहा है।

महाराजाधिराज भर्तृहरि "अमरफल" जैसे दुर्लभ फल को आप न खाकर, अपनी प्यारी रानी पिंगला को देते हैं।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करने लगे—"वास्तव में यह फल परमात्मा ने ही दया करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझ में नहीं आता, कि इस फल को मैं खाऊँ या अपनी प्राणप्रेमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिंगला को खिलाऊँ। अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा; मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा, दुःखदायी बुढ़ापा पास न आवेगा; पर मेरी प्यारी पिंगला, मेरे सुखों की मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी--उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में,मैं किस के साथ सुख उपभोग करूँगा ? इसलिए मैं इसे पिंगला को ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य-प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहेगी; तो मैं उसी के साथ संसारी सुखों का आनन्द उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो महाराजा फल को हाथ मे लेकर रनवास को चल दिये।

महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही दासियों ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिङ्गला शीघ्र ही तैयार हो उन्हें लेने के लिये द्वार तक आई और उनके गले में हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा, आप भी उनकी बग़ल मे बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाजो-नखरों से उनका मन अपने हाथों में करने लगी। शेष मे पूछा—"महाराज! आज असमय मे इस दासी पर कैसे कृपा की ?" महाराज ने कहा—"प्रिये ! आज एक अपूर्व

फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, कि उसमें ऐसा कौन सा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी-चौड़ी तारीफ करते हैं?"

राजा ने कहा—"रानी यह फल, जिसे आप मेरे हाथ में देख रही हैं "अमरफल" है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मण को उसके तप से सन्तुष्ट होकर दिया था। ब्राह्मण ने इसे मुझे दिया। इसमें यह गुण है, कि इसका खाने वाला न कभी बूढ़ा होता है और न कभी मरता है;सदा नौजवान बना रहता है। मै चाहता हूँ कि, इस फल को तुम खाओ, जिससे तुम सदा नवयुवती बनी रहो—तुम्हारा रूप-लावण्य सदा आज जैसा ही बना रहे।" यह कह कर राजा ने वह अमरफल रानी के हाथ मे दे दिया।

रानी उस फल को हाथ मे लेकर कहने लगी,—"नही प्राण-नाथ! आप ही इस फल को खायँ; क्योंकि आप ही मेरी माँग के सिन्दूर हैं, आप ही से मेरा सौभाग्य है, आप ही मेरे सूर्य और चाँद हैं, आप ही से मुझे जगत में उजियाला है। परमात्मा सदा आपको अजर-अमर रखे, इसी में मेरा सुख-सौभाग्य है।" रानी की ये बाते बनावटी थी। मुँह में राम और बग़ल मे छुरी वाली बात थी। उसके पेट मे कपट की कतरनी चल रही थी। राजा उसके जाल मे पूर्ण रूप फँसे से हुए थे, इसलिये वह उसके फरेबो को कैसे समझ सकते थे? उन्होने फिर कहा,—"नहीं, यह फल तुमको ही खाना होगा। तुम्हारे फल खाने से ही मुझे

सन्तोष होगा।" रानी तो यह चाहती ही थी, फल को राजा न खावे और वह मेरे हाथ मे रहे; इसलिए शेष मे वह राजी हो गई और कहने लगी—"आपकी आज्ञा को मै उल्लङ्घन नहीं कर सकती। जिसमे आप राजी, उसी में मैं राजी हूँ। आपके ही सन्तोष में मुझे सन्तोष है। आपका जब यही हुक्म है, तो मै ही इस फल को खाऊँगी; पर यह देवता का दिया हुआ है, इसलिये इसे अशुद्ध अवस्था मे न खाऊँगी। स्नान-ध्यान पूजा-पाठ करके खाऊँगी।" राजा उस मक्कारा की बात पर राजी हो गये और फल देकर सभा मे लौट आये।

राजा के पीठ फेरते ही, रानी ने दासी भेज कर अपने उप-पति अस्तबल के दारोग़ा को बुला भेजा। यह शैतान सन्देशा पाते ही दौड़ा चला आया। रानी उसे लेने को दरवाजे पर पहुँची और उसके गले मे हाथ डाल कर महल मे ले आई। उसे मखमली पलङ्ग पर बैठा कर, आप उसकी गोद मे पड़ गई और उसे प्यार करने लगी।

दारोग़ा ने पूछा—'रानी साहिबा, आज यह गुलाम असमय में ही क्यो याद किया गया? क्या बात है?'

रानी—प्यारे! आज महाराज ने मुझे एक फल दिया है। उसके खाने से मनुष्य अमर बना रहता है, जवानी सदा स्थिर रहती है, बुढ़ापा कभी नहीं आता। राजा साहब मुझ से उस फल के खाने को कह गये हैं मैंने उनसे वादा भी कर लिया है।

पर प्राणाधार ! संसार मे मुझे आप से अधिक कोई प्रिय नहीं, आप ही मेरे सुख के कारण हो, आप ही से मेरा आनन्द है; इसलिये मैं चाहती हूँ, कि आप ही उस फल को खावें।

दारोगा—अच्छा प्यारी ! आपकी आज्ञा सर आँखों पर। मै ही इसे खाऊँगा। पर यह देव-दत्त वस्तु है, इस लिये पवित्र होकर खानी चाहिये। मैं अभी जाकर क्षिप्रा में स्नान करूँगा और इसे खा लूँगा।

यह सुनते ही रानी ने दारोगा को वह फल दे दिया। वह भी फल लेकर चलता हुआ। रानी उसे द्वार तक पहुँचा आई। दारोगा जाते-जाते राह में सोचने लगा—"इस रण्डी को मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फल को खाऊँगा, तो क्या फायदा होगा ? यदि मै अपनी आशना को खिलाऊँगा, तो सचमुच ही वड़ा लाभ होगा। मेरी प्राण प्यारी इसके खाने से सदा आज जैसी ही रूपलावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और मै सदा उसके साथ आनन्द उपभोग करूँगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्या के मकान पर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उसके चन्द यार उसकी सेवा में बैठे थे। दारोगा साहब को वेश्या ने आदर स सामने बिठाया और आने का कारण पूछा।

दारोगा ने कहा—"प्रिये ! आज मुझे एक अद्‌भुत फल मिला है। इसको खाने वाला कभी बूढ़ा नहीं होता और मृत्यु उसका वाल भी बाँका नही कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस

नमकहराम दारोगा साहब दुराचारिणी असती रानी के दिये हुए अमरफल को अपनी प्रणयिनी वेश्या को दे रहे हैं।

दारोगा की प्यारी वेश्या उसी 'अमरफल' को लेकर महाराजा भर्तृहरि के सामने खडी है। वह उस फल को महाराज को देना चाहती है।

फल को तुम खाओ। तुम्हारे सदा-सर्वदा आज जैसी नवयुवती बनी रहने से मेरी जिन्दगी सुख से कटेगी।"

वेश्या ने कहा—"अच्छा प्यारे! आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। मैं स्नान करके इस फल को खा लूँगी।"

वेश्या की यह बात सुनते ही दारोगा ने वह अमरफल उसे दे दिया और आप अपने डेरे को चला आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उम्र पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापों का ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा? यदि मैं इस फल को खाऊँगी, तो अनन्तकाल तक इस तरह पापो की गठरियाँ बटोरती रहूँगी, अतः मुझे यह फल खाना हरगिज मुनासिब नहीं। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायें तो अच्छा। उनके अजर अमर रहने से मेरी आत्मा को सन्तोष होगा। ऐसे राजा के राज्य मे प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा है। ऐसे राजा बहुत कम है।" यह सोच कर वह कपड़े-लत्तो से टिचन हो, फल लेकर राजसभा की ओर चली। सभा मे पहुँचते ही चोपदार ने महाराज को खबर दी, कि बाईजी साहिबा तशरीफ लाई है। महाराज ने वेश्या को सामने बुलाया और उसके बेवक्त आने का सबब पूछा।

वेश्या ने कहा, 'महाराज! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल अजीब तासीर रखता है। इसके खाने वाला सदा अमर रहता है। मैं इस फल को खाऊँगी, तो सदा पाप

कमाऊँगी, इसलिये यह फल आप ही के खाने योग्य है। आप अजर अमर रहेगे तो पृथ्वी सुखी रहेगी।"

वेश्या के हाथ मे उस फल को देख तथा उसकी बातें सुन कर महाराज के चेहरे का रंग उड़ गया। वह आश्चर्य-चकित हो गये। ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का साँस नीचे रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सोच मे पड़ गये! शेष में, होश-हवाश ठिकाने आने पर, उन्होंने वह फल वेश्या के हाथ से ले लिया और धोकर खा गये।

परमात्मा की इच्छा से ही वह फल घूम-घाम कर फिर राजा के पास पहुँचा। राजा ने अनुसंधान द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हे पिंगला के छल-युक्त कपट व्यवहार पर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई. उन्हे अपनी सबसे अधिक प्यारी रानी के दुर्व्यवहार और विश्वासघात से बड़ा दुःख हुआ। उनके दिल पर सख्त चोट लगी। उन्हें मालूम हो गया, स्त्रियों की प्रीति में सार नहीं; स्त्री-जाति की मुहब्बत का कोई ठिकाना नहीं। उन्हे संसार से विरक्ति हो गई। उन्हे संसार और विषय भोगो से एक दम नफरत हो गई। उन्होंने समझ लिया, संसार मे कोई किसी का नहीं है। यह मिथ्या जाल है। इसमें फँस कर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन वृथा खोते हैं। उन्होंने अपने तईं धिक्कारते हुए कहा—

महाराजाधिराज भर्तृहरि को संसार से विरक्ति हो गई है। आप राजपाट, धन-दौलत प्रभृति को तृणवत् परित्याग कर वन को जारहे हैं।

"या चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता ।
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या ।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥"

मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती; वह दूसरे पुरुष को चाहती है ! वह पुरुष (दारोगा) रानी को नहीं चाहता, वह दूसरी ही स्त्री पर मरता है ! वह स्त्री जिसे रानी का यार दारोगा चाहता है, वह मुझे चाहती है। इस लिये रानीको धिक्कार है ! उस दारोगा को धिकार है ! उस वेश्या को धिक्कार है ! मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।

इस घटना से संसार महाराज के लिये बिल्कुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मंत्री को सामने बुला, राज्य का सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पोशाक उतार कर उसे दे दी और—

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥"
"अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥

तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः ।
क्वाचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥"

स्त्रियो के भोगने मे रोगों का भय है, कुल मे दोष होने का भय है, धन मे राजा का भय है, चुप रहने मे दीनता का भय है, बल मे शत्रुओ का भय है, गुणो में दुष्टो का भय है, शरीर मे मौत का भय है, संसार की सभी चीजों मे मनुष्यो को भय है, केवल 'वैराग्य" मे किसी प्रकार का भय नही है।"

"हे परमात्मन्! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वन मे शिव शिव रटते बीते, सर्प और पुष्पहार, बलवान् शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनियो के समूह मे मेरी दृष्टि एक सी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

यह कहते हुए आपने सारा राज-पाट, धन-दौलत प्रभृति एक क्षण मे त्याग कर वन का रास्ता लिया। चलते समय उन्होंने मन्त्री से और भी कहा, "मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रम के साथ बड़ा अन्याय किया! उस समय मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित अनुचित का जरा भी ज्ञान नही रहा था। उस कुटिला ने मुझ पर जादू सा कर दिया था। मै अब संसार के लोगो को सलाह देता हूँ कि वे अगर सुख से जीवन बिताना चाहें तो स्त्रियो का विश्वास न करें और जो परम पद के अभिलाषी हो, वे तो उनका नाम भी न ले। मन्त्रीवर! आप विक्रम का पता

लगाना। यदि वह मिल जाय, तो उसे राज-गद्दी पर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिंगला को जीती ही जमीन मे गड़वा देते, उस दारोगा को तोप के मुँह मे बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते; पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसार की असलियत को समझ गये थे, इसी से आपको,संसार से घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज पाट सबको तृण के समान समझ कर एक क्षण मे त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नहीं हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिन पर जगदीश की दया होती है या पूर्व संचित पुण्यो का उदय होता है। मनुष्य से फूटे-टूटे हाँडी-बर्तन और गुदड़े ही नही छोड़े जाते,कोरी इच्छाओ का भी त्याग नहीं होता, तब राज-पाट और धन-दौलत का छोड़ना तो बड़ी बात है!

महाराजा भर्तृहरि भूपालो में आदर्श भूपाल हो गये है। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेगे, जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक महाराज का प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगो की जबान पर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकल कम्पनी के तमाशे और एक पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जो हमने कोई ४५ साल पहले, एक पल्टन की लाइब्रेरी में अङ्गरेजी और हिन्दी में देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही और हमें उसका नाम ही याद है।
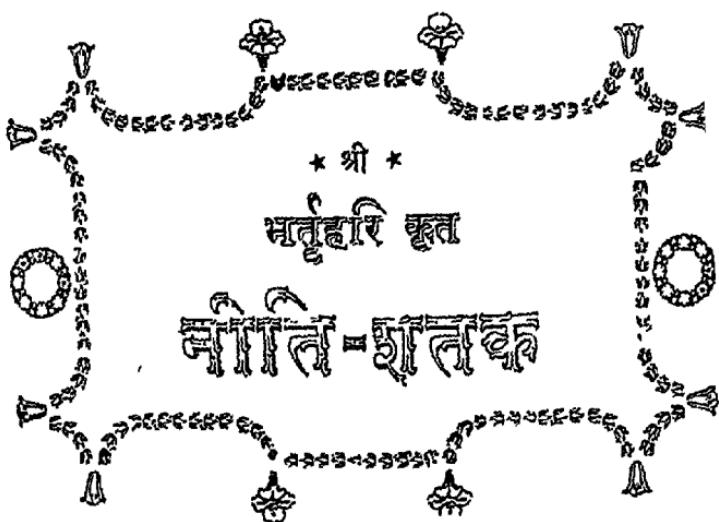
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

दशों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण, अनन्त और चैतन्यस्वरूप, अपने ही अनुभव से प्रत्यक्ष होने योग्य, शान्त और तेजोरूप परब्रह्म को नमस्कार है ॥१॥

भारतीय कवि या ग्रन्थकार, अक्सर, अपने ग्रन्थ के बिना विघ्न-बाधा सुख से समाप्त होने के लिये, ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण किया करते हैं। इस "नीति-शतक" के कर्त्ता, योगिराज राजर्षि भर्तृहरि महोदय भी अनन्त, अविनाशी और आत्मज्ञान से प्रत्यक्ष होने योग्य परब्रह्म परमात्मा की वन्दना करके ग्रन्थारम्भ करते हैं।

सोरठा ।

सर्व दिशा सब काल, पूरि रह्यो चैतन्य घन ।
सदा एक रस चाल, बन्दन वा परब्रह्म को ॥१॥

1. To one unlimited by time or space, to the Boundless, to Him Who is all consciousness, to One Who is the essenee of self-contemplation and to the Supreme Peace and Light, I bow in prayer.

यांचिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥२॥

मैं जिसके प्रेम में रात-दिन डूबा रहता हूँ—किसी क्षण भी जिसे नहीं भूलता, वह, मुझे नहीं चाहती, किन्तु किसी और ही पुरुष को चाहती है ; वह पुरुष किसी और स्त्री को चाहता है । इसी तरह वह स्त्री मुझे प्यार करती है । इसलिये उस स्त्री को, मेरी प्यारी के यार को, प्यारी को, मुझको और उस कामदेव को, जिसकी प्रेरणा से ऐसे-ऐसे काम होते है, अनेक धिक्कार है ! ॥२॥

इस श्लोक मे महाराज अपनी प्यारी रानी पिङ्गला पर इशारा करते है। यद्यपि महाराजा पूर्ण विद्वान् और चतुर नरेश थे, तथापि इस रानी के एकदम वशीभूत हो गये थे। स्त्रियाँ जितेन्द्रिय मुनियो को भी वशीभूत करके विषयाभिलाषी बना देती है, तब अजितात्माओं का तो कहना ही क्या ? कहते

है—धनी होकर किसने गर्व नहीं किया ? किस विषयी की आपत्ति नाश हुई ? राजा का प्यारा कौन हुआ ? काल से किसका नाश न हुआ ? किस माँगने वाले का मान रहा ? दुष्टो की सङ्गति से किसकी कुशल हुई और स्त्रियो से किसका मन खण्डित न हुआ ? स्त्रियो के सम्बन्ध मे शास्त्रो में लिखा है:—

स्त्री किसी के साथ बात करती है, किसी को विलास-पूर्वक देखती है और दिल मे किसी का विचार करती है। स्त्रियो का प्यारा कोई नहीं। जब तक स्त्री पुरुष को अपने ऊपर मोहित नहीं कर लेती, तब तक उसे हर तरह से प्रसन्न करती और मधुर भाषण करती है; ज्योंही उसे काम के वशीभूत देखती है, त्योंही उसे माँस ग्रहण करने वाली मछली की तरह उठा लेती है। जब पुरुष उसके वश में हो जाता है,—जब उसका बल बढ़ जाता है, तब वह पंख नुचे हुए कव्वे की तरह उससे खेल करती है।

स्त्रियाँ मुँह से मनोहर बाते कहती हैं और तीक्ष्ण नेत्रो से चोट करती हैं। इनके सामने कराल मुख सिंह, मदमत्त गजराज और बुद्धिमान समरशूर भी कायर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ शम्बर की माया, नमुचि की माया तथा बलि और कुम्भीनस की माया को जानती हैं। जिन शास्त्रो को बृहस्पति और शुक्र जानते हैं, उन्हें ये स्वभाव से ही जानती है।

स्त्रियाँ मोहित करतीं, मद पैदा करती, प्रसन्न करती घुड़कियाँ देतीं, रमण करतीं, विषाद करती, हँसते के साथ हँसती, रोते के साथ रोती, समय-योग से अनुरक्त को प्यारी-प्यारी बातो से ग्रहण कर लेतीं एवं असत्य को सत्य और सत्य को असत्य करती हैं—इनकी माया अपरम्पार है। झूठ, साहस, माया, मूर्खता. अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये तो इनके स्वाभाविक दोष हैं।

अपना पति कैसा ही बलवान और रूपवान हो, वह हर तरह से प्यार करता हो; दास की तरह आज्ञा पालन करता हो, घर मे सब तरह के सुखैश्वर्य्य के सामान हों; पर असती स्त्री इन सबको तिनके के समान समझती है। अगर उसे एकान्त में नीच. लँगड़ा, लूला और कोढ़ी भी मिल जाय, तो वह अपने सुन्दर पति को न भज कर उस नीच को ही चाहती है। कुलटा को अपने कुल की हीनता, लोक-निन्दा और अपने बन्धन प्रभृति की कोई परवा नहीं रहती। और तो और; वह अपने प्राण नाश की भी परवा नहीं करती।

स्त्रियों को कोई अगम्य नहीं; बूढ़े और जवान, कुरूप और सुरूप, धनी और निर्धन, नीच और ऊँच का कोई खयाल नहीं—ये तो पुरुषमात्र को भजती हैं। कुलटायें गाय की तरह होती हैं। जिस तरह गाय नई-नई घास खाना चाहती है, उसी तरह ये नये-नये पुरुषों को चाहती हैं। ये दण्ड, शस्त्र, दान और स्तुति किसी से भी वश में नहीं रहतीं।

अगर इन्हें मौका नहीं मिलता या चाहने वाला नहीं मिलता—तब तो ये सती बनी रहती है। कहा है—एकान्त नहीं, अवकाश नहीं और प्रार्थी नहीं; हे नारद! इसी से सती का सतीत्व रहता है। जो कोई स्त्री से प्रार्थना करता है, उसके पास जाता है और थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्री उसी की हो जाती है। आग की काठ से, सागर की नदियों से, काल की प्राणियों से और स्त्री की पुरुषों से तृप्ति नहीं होती। जो पुरुष अज्ञान से यह जानता है कि यह स्त्री मुझे प्यार करती है, वह स्त्री के वशीभूत होकर, खेल के पक्षी की तरह हो जाता है। जो स्त्री के कहने मे चलता है और उसका विश्वास करता है, उसका अवश्य अनिष्ट होता है। स्त्रियों के मोह-जाल मे फँस कर पुरुष उसी तरह नष्ट होता है, जिस तरह दीपक की ज्योति पर भूल कर पतङ्ग नष्ट होता है। किसी ने खूब कहा है:—

> काके शौच द्यूतकारे च सत्यं
> सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
> क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता
> राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?॥

(कव्वे में पवित्रता, जूए में सत्य, सर्प मे सहन शीलता, स्त्रियों मे कामशान्ति, नपुंसक मे धीरज, शराबी मे तत्त्वचिन्ता, और राजा में मैत्री किसने देखी या सुनी ?)

इन सब बातो को जान कर भी, हमारे प्रातःस्मरणीय योगिराज रानी पिंगला के मोह जाल में फँस गये। भाई विक्रम के समझाने से भी न समझे। जब वेश्या के हाथ से उन्हें अमर-फल मिला—तब उनके होश ठिकाने आ गये, आँखें खुल गई। उन्हें मालूम हो गया, कि शास्त्रो में स्त्रियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह राई-रत्ती सच है—वह लाखों-करोड़ों वर्षों के अनुभव का निचोड़ है।

राजा अपनी प्यारी रानी का कुलटापन देख कर मन-ही-मन कहने लगे—"संसार मे कोई किसी को नहीं चाहता—यहाँ किसी को किसी से प्रेम और मुहब्बत नहीं। मैं झूठे मोह से अन्धा हो रहा था; परमात्मा की दया और पूर्व जन्म के सुकर्मों के प्रभाव से, मेरी आँखो के आगे से पर्दा हट गया। समय तो हाथ आने वाला नहीं; अब मुझे आगे को सम्हलना चाहिये और शेष जीवन को परमात्मा की भक्ति में लगाना चाहिये। ये राजपाट, धन-दौलत प्रभृति चिरस्थायी नहीं—ये सब असार और मिथ्या हैं। धिक्कार है उस वेश्या को, जो अपने यार को न चाह कर मुझे प्यार करती है! धिक्कार है उस रानी के यार को, जो रानी को न चाह कर वेश्या से प्रेम करता है! धिक्कार है मेरी प्यारी रानी को, जो मुझ से विरक्त होकर, दूसरे को प्यार करती है! धिक्कार है मुझे, जो मैं इस कुलटा को सती और अपनी अनुरागिन समझे हुए था और धिक्कार है

उस कामदेव को जो इतने प्रपञ्च कराता है!" यह कहते हुये महाराज ने, अपने राज-वस्त्र और मुकुट प्रभृति मन्त्री को सौंप कर, वन की राह ली। महाराज ने जो आदर्श संसार के सामने रक्खा है, उससे भारत का मस्तक उन्नत होता है! संसार के इतिहास मे ऐसे आदर्श अति विरले है।

नोट—स्त्रियो की माया के सम्बन्ध में और भी अधिक जानने की इच्छा हो तो हमारा अनुवाद किया हुआ "श्रृङ्गार-शतक" देखिये।

छप्पय।

जाकी मेरे चाह, वह मोसों विरक्त मन।
और पुरुष सों प्रीति, पुरुष वह चहत और धन॥
मेरे कृत पर रीझ रही, कोऊ इक औरहि।
यह विचित्र गति देख, चित्र ज्यों तजत न ठौरहि॥
सब भाँति राज्यपत्नी सुधिक्, जार पुरुष को परमधिक्।
धिक काम, याहि धिक, मोहि धिक, अब ब्रजनिधि की शरण इक॥२॥

2. The woman I constantly adore does not care for me. She has given her heart to another man and that other man has some other sweet-heart. I again am the object of effection for a third woman. Fie on her and him and Cupid and this woman and me!

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रंजयति॥३॥

हिताहितज्ञान-शून्य नासमझ को समझना बहुत आसान है उचित और अनुचित को जानने वाले ज्ञानवान को राजी करना और भी आसान है; किन्तु थोड़े से ज्ञान से अपने तईं पण्डित समझने वाले को स्वयं विधाता भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) अज्ञ, (२) सुज्ञ, और (३) अल्पज्ञ। जिसे अपने बुरे-भले का ज्ञान नहीं होता, जो निरा मूर्ख होता है, उसे "अज्ञ" कहते हैं। जिसे युक्ता-युक्त, उचित और अनुचित का ज्ञान होता है उसे 'सुज्ञ" कहते है। जो अज्ञ और सुज्ञ के बीच का होता है, जिसे थोड़ा सा ज्ञान होता है, न वह पूरा पण्डित ही होता है, न निरा मूर्ख ही, उसे "अल्पज्ञ" कहते है। अल्पज्ञ को बहुत थोड़ा ज्ञान होता है, पर वह अपने तईं बड़ा भारी पण्डित समझता और इस नशे में चूर रहता हैं—थोड़े से ज्ञान से उसका सिर घूम जाता है। इसी से कहते हैं—'कम इल्म बुरा।" शुक्र ने भी कहा है—"ज्ञानलव-दौर्विदग्ध्यादज्ञता प्रवरमता" अर्थात् अल्पज्ञता से मूर्खता भली।

कोरा अज्ञानी अपनी अज्ञानता—मूर्खता को समझता है। उसे अपनी पण्डिताई का घमण्ड नहीं होता, इसी से वह विद्वानों की बात कान देकर सुनता और उनके उपदेशों को ग्रहण करके राह पर आ जाता है! युक्तायुक्त का जानने वाला विद्वान उचित अनुचित को समझता है—युक्ति और तर्क को

मानता है इसलिये वह और भी आसानी से अपने से अधिक बुद्धिमान की बात को मान लेता है, परन्तु जिसे जरा से ज्ञान से घमण्ड हो जाता है, उसे मनुष्य तो क्या चीज है, उसके और संसार के रचने वाला ब्रह्मा भी नहीं समझ सकता।

सब अनर्थों की जड़ खुदी या अहङ्कार है। अहङ्कार मनुष्य को ऊँचा होने नहीं देता। अहङ्कार के कारण से ही मूर्ख मूर्ख रह जाता है। मनुष्य के बड़प्पन और सच्चे सुख से अहङ्कार ही बाधक है। जो अहङ्कार को जीत लेता है, वह निश्चय ही एक न एक दिन सच्चे सुख और महत् पद का अधिकारी होता है। अल्पज्ञों में अक्सर घमण्ड होता ही है; इसी से वे पराया उत्तम-से-उत्तम उपदेश भी नहीं मानते। अपनी शान में बट्टा लगने के ख्याल से, वे जिस बात को नहीं जानते, उसे किसी से पूछते भी नहीं; इसी से उनकी उन्नति नहीं होती। दुनियाँ में जो अपने तईं सबसे छोटा और तुच्छ समझते हैं एवं जो वास्तव में बुद्धि रखते हैं -वे अवश्य चतुरचूड़ामणि हो जाते हैं। मूर्ख और घमण्डी किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते। कहा है:—

उपदेशन को धारिवे, बुद्धिमन्त जड़ नाहिं।
जो पुहुपन की गन्धको, तिल धारैं जव नाहिं॥

दोहा।

सुख कर मूढ़ रिझाइये अति सुख पण्डित लोग।
स्वल्पज्ञानगर्विष्टको, विधिहु न रिझवन योग॥३॥

3. An ignorant person is easy to please. It is still easier to please a man of learning, but even the God Brahma can not please a man stained with the posseesion of partial talents.

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात्,
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपित शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

यदि मनुष्य चाहे तो मगर की दाढ़ों की नोक में से मणि निकाल लेने का, उद्योग भले ही करे; यदि चाहे तो चंचल लहरों से उथल-पुथल समुद्र को अपनी भुजाओं से तैर कर पार हो जाने की चेष्टा भले ही करे, क्रोध से भरे हुये सर्प को पुष्पहार की तरह सिर पर धारण करने का साहस करे तो भले ही करे, परन्तु हठ पर चढे हुये मूर्ख मनुष्य के चित्त को असत मार्ग से सतमार्ग पर लाने का हिम्मत हरगिज न करे।॥४॥

मगर की दाढ़ो मे से बलपूर्वक रत्न को निकाल लेना मनुष्य के लिये असम्भव है। इसमें भारी संकट और जान-जोखिम है। आज तक ऐसा कोई मनुष्य कर भी नही सका। फिर भी; कोई बलवान् ऐसा करने की चेष्टा करे तो कर सकता है; कदाचित् सफलता हो जाय। चञ्चल लहरो से व्याकुल समुद्र को अपनी भुजाओ के बल से तैर कर पार कर लेना असम्भव है। फिर भी; तैराक ऐसा करने का

प्रयत्न करे तो कर सकता है, शायद कामयाबी हो जाय। कुपित भयानक सर्प को माला की तरह मस्तक पर धारण करना महा कठिन काम है। कोई तेजस्वी पुरुष, शिवजी की तरह, सर्प को सिर पर धारण करने का उद्योग करे, तो भले ही करे; कदाचित् वह सर्प को मस्तक पर रख सके। कोई भी मनुष्य इन तीनों कामों को कर नहीं सकता, पर कदाचित् कोई पुरुष इन अघटित—असम्भवों को सम्भव करने में समर्थ हो जाय। लेकिन दुराग्रही—अपनी हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को अपने काबू में कराने की कोई भी चेष्टा न करे—भूल कर भी इस बात का वृथा प्रयास न करे।

सारांश यह, ज़िद पर चढ़ा हुआ मूर्ख किसी के भी समझाये नहीं समझता। वह जिस बात पर जम जाता है, उससे नहीं हटता। मिस्टर लोवैल नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं—"केवल मूर्ख और मृतक अपनी राय नहीं बदलते।"* लेवेटर नामक एक विद्वान् ने कहा है§—"जो शख्स किसी बात पर जमे हुए मनुष्य के चित्त को युक्ति और तर्क से अपने काबू में करने की आशा रखता है, वह मानव-जाति के

---

* The foolish and the dead alone never change their opinion —*Lowell.*

§ He knows very little of mankind who expects, by fact of reasoning, to convince a determined partyman —*Lavator*

सम्बन्ध मे बहुत कम ज्ञान रखता है।" निस्सन्देह (हठ पर चढ़ा हुआ मूर्ख विधाता के समझाये भी नही समझता)।

दुर्योधन ने अन्याय और अनीति से पाण्डवो का सारा राज्य छीन लिया, उनके ऊपर अनगिनती अत्याचार किये। विदुर, भीष्म और सञ्जय प्रभृति राज्य के सच्चे शुभचिन्तको ने उसे बहुत समझाया, पर वह किसी की भी बात से टस-से-मस न हुआ। शेष मे सर्वशक्तिमान् त्रिलोकीनाथ कृष्ण, लोकरीति पूरी करने के लिये, उसे समझाने गये; पर वह उनकी भी नीतिपूर्ण और दोनो पक्षो के लिए भली बातो से न पसीजा। अज्ञानी उल्टा उनका ही अपमान करने पर उतारू हो गया, तब कृष्ण भगवान् वापिस लौट आये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

जो मूरख उपदेश के, होते योग जहान।
दुर्योधन कहँ बोध किन, आये श्याम सुजान ॥

4 It is possible to tear off a gem sticking in the roots of a crocodile's teeth It is possible to swim across the ocean made impassable by a series of tossing currents It is even possible to adorn one's head with an angry snake as if it were a flower, but it is very difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।

कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेन्न
तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

कदाचित् कोई किसी तरकीब से बालू में से भी तेल निकाल ले, कदाचित् कोई प्यासा मृग तृष्णा के जल से भी अपनी प्यास शान्त कर ले; कदाचित् कोई पृथ्वी पर घूमते-घूमते खरगोश का सींग भी खोज ले; परन्तु हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को कोई भी अपने काबू में नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

बालू के दानों में तेल नहीं होता, पर कदाचित् कोई बार-बार प्रयत्न करने से बालू के कणों से भी तेल निकालने में सफल हो जाय। मृगमरीचिका में जल नहीं होता, पर कदाचित् कोई प्यासा खोज लगाकर वहाँ भी जल पी जाय; खरगोश के सींग नहीं होते, पर कदाचित् कोई चतुर पर्यटक पृथ्वी पर भ्रमण करते-करते कहीं खरगोश के सींगो का भी पता लगा ले—इन असम्भवों के सम्भव करने में जो परिश्रम किया जाय, शायद वह सफल हो जाय; पर जिद पर चढ़े—अपनी ही बात पर अड़े हुए मूर्ख का चित्त किसी भी उपाय से वश में नहीं हो सकता।

मूर्खों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे जिस बात पर जम जाते हैं, जिस बात की जिद कर लेते हैं, उसे किसी के भी कहने से नहीं त्यागते। यद्यपि ऐसे दुराग्रही घोर दुःख

भोगते हैं, पर किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते। रावण को मारीच ने बहुत कुछ समझाया, पर उसने उसकी एक न मानी; यती का वेश धर कर सीता को ले ही गया। परिणाम यह हुआ कि, उसका कुटुम्ब-सहित नाश हुआ, बालि बन्दर को तारा ने अनीति का नतीजा समझाया, पर उसने उसकी एक न सुनी; अन्त मे अपनी जिन्दगी से हाथ धोये। इन्द्रपुत्र जयन्त ने किसी की न मान, सीताजी के साथ छेड़खानी की। शेष मे, त्रिलोकी मे मारा-मारा फिरा, पर कोई शरणदाता न मिला। जो लोग हठ करते है—किसी की सीख नही मानते, उनका अन्त मे बुरा होता है। तुलसीदास ने कहा है:—

साहस ही सिख कोपवश, किये कठिन परिपाक ।
शठ संकट भाजन भये, हठि कुयति कपि काक ॥

छप्पय ।

निकसत बारू तेल, जतन कर काढत कोऊ ।
मृगतृष्णा को नीर, पिये प्यासो है सोऊ ॥
लहत शशाको श्रृङ्ग, ग्राहमुख ते मणि काढत ।
होन जलधि के पार, लहर सकी जब बढ़त ॥
रिसभरे सर्प को पहुप-ज्यों, अपने सिर पै धर सकत ।
हठभरे महासठ नरनको, कोऊ बस नहिं कर सकत ॥४॥५॥

4 A men may get oil out of sand by strenuously squeezing the latter. A thirsty person will perhaps drink water out of mirage. It is just possible that a man in his wanderings may come across the horns of a hare But it is extremely difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,

छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।

माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,

नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥६॥

जो मनुष्य अपने अमृतमय उपदेशों से दुष्ट को सुराह पर लाने की इच्छा करता है, वह उसके समान अनुचित काम करता है, जो कोमल कमल की डंडी के सूत से ही मतवाले हाथी को बाँधना चाहता है, सिरस के नाजुक फूल की पखड़ी से हीरे को छेदना चाहता है अथवा एक बूँद मधु से खारी महासागर को मीठा करना चाहता है॥६॥

हाथी जैसा बलवान जानवर रस्सों से भी नहीं बँध सकता, जो मनुष्य उसे कोमल कमल की डंडी के सूत से बाँधने की चेष्टा करता है, वह मूर्ख है। हीरे मे बड़े २ घनों की चोट से भी कुछ नहीं होता, पर जो मनुष्य सिरस के से नाजुक फूल की पंखड़ी से उसमें छेद करना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है। समुद्र सारी पृथ्वी के मधु और चीनी-शक्कर प्रभृति से भी मीठा नहीं हो सकता, पर जो मनुष्य उस महा-

सागर का खारापन एक बूँद शहद से मिटाना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है। ये तीनो काम करने वाले जिस तरह मूर्ख हैं; उसी तरह वह भी मूर्ख है, जो अपने उत्तमोत्तम अमृतोपम उपदेशों से दुष्ट को, कुराह से हटा कर, सुराह पर लाने की अभिलाषा करता है। सारांश यह—(दुष्ट को उपदेश देकर भला आदमी बनाना मूर्खता से खाली नहीं। गधे को उपदेश देने वाला भी गधा ही समझा जाता है।)

अच्छी मिट्टी मे बोने से बीज उगता है। अच्छे लोहे पर पालिश करने से ही चमक आती है। जिसे ईश्वर योग्यता देता है, उसी पर सुशिक्षा का फल होता है। जिसमें स्वयं बुद्धि होती है, उसी को सदुपदेश और शास्त्र से लाभ होता है। सुपात्र को दिया दान फलता है और कुपात्र को दिया दान वृथा जाता है। यही हाल सुशिक्षा का है। कुपात्र मे कोई भी क्रिया फलवती नहीं होती। (हजारो तरह के उपाय करने से भी बगुला तोते की तरह पढ़ाया नहीं जा सकता) शेख सादी ने कहा है—

अब गर आबे ज़िन्दगी बारद।
हर्गिज अज़ शाखे बेद बर न खुरी॥

बादल का पानी की जगह अमृत बरसाना मुमकिन हो सकता है, पर बेत की शाखो में कभी फल नही लग सकते। दूषित जड़ से छायादार वृक्ष नहीं हो सकता। नालायक को

नसीहत देना गुम्बद पर अखरोट फेकना है। कमीने के पीछे अपना समय नष्ट करना अच्छा नहीं, क्योंकि नरकुल से कभी चीनी नहीं निकल सकती। कुत्ते की पूँछ को कोई कितना ही तेल प्रभृति से मल कर और बाँध कर, बारह वर्ष तक भी क्यों न रखे, खुलने पर वह वैसी-की-वैसी ही रहेगी। कवियों ने कहा है:—

फूले फले न बेत, यदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख-हृदय न चेत, जो गुरु मिलें विरंचि-सम ॥ तुलसी।
बिगर्‌यो होय कुसंग जिहि, कौन सकै समुझाय?
लसन बसाये बसन कौं कैसे सकै बसात? ॥ वृन्द।

छप्पय।

कमलतन्तु सों बाँधि, गजहि बसकरन उमाहत।
सिरस-पुहुप के तार, वज्रकों बेध्यो चाहत ॥
बूँद सहत की डार, उदधि को खार मिटावत।
ये बातें विपरीति होहिं बरु, यह श्रुति गावत ॥
पर अमृतमयी निज बैन सों, सतपथ में खैंचन चहै।
जो कोउ, कहु, खल जननकों, इहै एक अचरज अहै? ॥६॥

6 He attempts to bind an elephant with the fibres of a young lotus stalk or to make a bore in a diamond with the help of the point of a Shrish flower or to make the water of the ocean sweet by adding to it a single drop of honey, who tries to make evil minded persons walk in the path of virtuous men by his nectar-like precepts.

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा,
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे,
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाने के लिये ब्रह्मा ने "मौन धारण करना" अच्छा उपाय बना दिया है और वह उनके अधीन भी कर दिया है। मौन मूर्खता का ढक्कन है। इतना ही नहीं, वह विद्वानों की मण्डली में उनका आभूषण भी है ॥७॥

संसार में मौन रहने या चुप साध लेने के समान मूर्खता के छिपाने का दूसरा और उपाय नहीं है। अँगरेजी में एक कहावत है—"जब कि मूर्ख मौन साधे रहता है, तब वह बुद्धिमान् समझा जाता है* ।" एक और विद्वान् ने कहा है—"जिसे आत्म-विश्वास नहीं है, उस मनुष्य के लिये मौन सर्वोत्तम निरापद पथ है† ।" बोनार्ड नामक विद्वान् ने कहा है—"मौन मूर्खों की बुद्धिमता और बुद्धिमानों का एक गुण है§।" बर्न नामक

---

*A fool when he is silent is wise —Pr.

† Silence is the safest course for the man who is diffident of himself.—*La Roche.*

§ Silence is the wit of fools, and one of the virtues of the wise men —*Bonard*

विद्वान् ने कहा है—"चुप रहने की आदत सीखो और इसे अपना मॉटो (Motto) मानो*। कहाँ तक लिखें? मौन की सभी देशों के शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा लिखी है। महात्मा रैले ने कहा है—"सुनो बहुत और बोलो कम, क्योंकि संसार में सब से बड़ी भलाई और सब से बड़ी बुराई इस जबान से ही होती है।"

चुप रहने से मनुष्य मिथ्या भाषण और परनिन्दा के पाप से बचता है। जो जियादा बोलता है, उसके मुँह से कोई न कोई बुरी बात भी निकल ही जाती है और शत्रु की नजर सदा बुरी बातों पर ही रहती है। जब तक मनुष्य नहीं बोलता, उसके ऐब और हुनर छिपे रहते हैं—बोलते ही सब भेद खुल जाता है। (कव्वे और कोयल दोनों काले होते हैं। जब तक वे नहीं बोलते, यह तमीज करना कठिन हो जाता है, कि कौन कव्वा और कौन कोयल है) शेख सादी ने भी कहा है—

ता मर्दे सुखन न गुफ्ता बाशद।
ऐबो हुनरश न हुफ्ता बाशद॥

---

* Learn taciturnity, let that be your Motto—*Burne.*

Hear much and speak little, for the tongue is the instrument of the greatest good and the greatest evil that is done in this world—*Releigh.*

जब तक कोई बात-चीत नहीं करता तब तक उसकी भलाई-बुराई नहीं मालूम होती।

हमारे चाणक्य महाराज ने भी कहा है—

> मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः।
> तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचिन्न भाषते॥

सभा मे मूर्ख वस्त्र पहने हुए उस समय तक अच्छा दीखता है, जब तक कुछ नहीं बोलता। बोलते ही सारी कलई खुल जाती है। इसलिये मूर्खों को, अपनी मूर्खता छिपाये रखने के लिये, मौनावलम्बन करना ही अच्छा है। "गुलिस्ताँ" मे एक कहानी है—

एक बुद्धिमान नौजवान, जिसने विद्या और धर्म-कार्यों में खूब उन्नति की थी, विद्वानो की समाज में अक्सर कुछ न बोला करता था। एक दिन उसके पिता ने कहा—"पुत्र! तुम जो जानते हो उसे कहते क्यो नहीं?" पुत्र ने जवाब दिया—"पिताजी! मै इस बात से डरता हूँ कि, वे लोग मुझ से कोई ऐसी बात न पूछ बैठें; जिसे मैं न जानता होऊँ और उसके कारण मुझे लज्जित होना पड़े। क्या आपने उस सूफी की बात नहीं सुनी, जो अपनी खड़ाउँओं मे कील ठोक रहा था? कीलें ठोकते देख कर, एक हाकिम ने उसकी आस्तीन पकड़ ली और उससे कहा—'चलो, मेरे घोड़े के पैरो मे नाल बॉध दो।' जब तुम चुप रहोगे, तब तुम्हे कोई

न छेड़ेगा । अगर बोलोगे, तो सुबूत लेकर तैयार रहना पड़ेगा । खुदा ने मनुष्य को कान दो और जीभ एक, इसी गरज से दी है, वह सुने बहुत और बोले कम । जिसमें मूर्ख की प्रतिष्ठा-रक्षा तो मौन धारण करने में ही है ।" कहा है—

कम खाना और कम बोलना अक़्लमन्दी है ।
बहुत खाना और बहुत बोलना बेवक़ूफ़ी है ॥

दोहा ।

मूरखता के ढकन कों, रच्यो विधाता मौन ।
ज्ञानि-सभा महँ आभरण, अज्ञहि गुण को भौन ॥ ७ ॥

7. Silence which is within one's own power and which has numerous other facilities, has been made by the Creator to serve as a cover for ignorance. Especially in an assembly of learned men it is the best ornament of those who are ignorant

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मन्दान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं,
तदामूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥८॥

जब मैं कुछ थोड़ा सा जानता था, तब मैं मदोन्मत्त हाथी की तरह घमण्ड से अन्धा होकर, अपने तईं सर्वज्ञ समझता था । लेकिन ज्योंही मैंने विद्वानों की संगति से कुछ जाना और

सीखा, त्योंही मालूम हो गया कि मैं तो निरा मूर्ख हूँ। उस समय मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया ॥ ८ ॥

कहावत है—"अल्पविद्यो महागर्वी।" थोड़ी विद्या वाला बड़ा अभिमानी होता है। अल्पज्ञ अपने सिवा सारे संसार को मूर्ख समझता है। जब तक वह विद्वानों की सुहबत नहीं करता—अनेक प्रकार के ग्रन्थो को नहीं देखता, तब तक वह अपने तईं सर्वज्ञ समझता है और उतनी सी विद्या के घमण्ड से मतवाला रहता है, लेकिन, ज्योही वह पण्डितों की संगति करता है, उनसे कुछ सीखता है, उसकी आँखे खुल जाती है—उसका सारा नशा किरकिरा हो जाता है—उसका मद-ज्वर फौरन उतर जाता है।

अल्पज्ञ की दशा कूप मण्डूक की सी होती है। कुए का मेंड़क सदा कुए मे रहता है और कुए के सिवा और किसी जलाशय को नहीं देखता। उस दशा मे, वह उस कुए को ही सर्वश्रेष्ठ जलाशय समझता है। लेकिन जब वह सरोवरो, नदियो अथवा सागर को देखता है, तब उसकी आँखे खुल जाती हैं। उसी तरह जो लोग थोड़ा-सा इल्म रखते हैं; अनेक विषयो से अनजान रहते हैं, वे अपने साधारण ज्ञान को ही सर्व श्रेष्ठ समझते है और उस पर अभिमान करते है; किन्तु जब वे विद्वानो की संगति से कुछ और देखते और जानते हैं, तब उनको होश होता है, तब वे समझते

है कि, हम तो कुछ भी नहीं जानते । उस्ताद जौक ने कहा है:—

हम जानते थे, इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी ।

वाल्टेयर* नाम विद्वान् ने भी ठीक यही बात कही है —"जितना ही अधिक हमने पढ़ा, उतना ही अधिक हमने सीखा, जितना ही अधिक हमने चिन्तन किया, उतना ही हमारा दृढ़ निश्चय हुआ कि हम तो कुछ भी नहीं जानते, अर्थात् अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचार करने से हमारी यह धारणा हो गई, कि हम तो अज्ञ हैं।"

मनुष्य ज्यों-ज्यों देशाटन करता है, त्यों-त्यों उसकी देश देखने की इच्छा होती है और वह समझने लगता है कि, जिस गाँव में मैं रहता हूँ, पृथ्वी उतनी ही नहीं है—पृथ्वी बहुत बड़ी है, मैंने अभी कुछ भी नहीं देखा है । इसी तरह ज्यों-ज्यों मनुष्य विद्वानों की सुहबत करता है, ज्यों ज्यों नये नये शास्त्र देखता है, त्यों-त्यों उसे मालूम होता है, कि मैं जितना जानता हूँ, उतना कुछ भी नहीं है—अभी मेरे सीखने के लिये बहुत पड़ा है—अगर सारी उम्र सीखता रहूँगा तो-भी विद्या का अन्त न आवेगा । इस विचार पर पहुँचने से

*The more we have read, the more we have learned, the more we have meditated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing-*Valtaire.*

उसे अभिमान नहीं रहता और वह दिन-दिन उन्नति करके, एक दिन सचमुच ही आदर्श विद्वान् हो जाता है । जो मनुष्य अपनी त्रुटियों—अपनी कमजोरियों को जानता है, जो अपने तईं सबसे छोटा समझता है, वह निश्चय ही विद्वान् और गुणवान् हो जाता है, किन्तु वह मनुष्य जो अपने तईं सर्वज्ञ समझता है; अपने सर्वज्ञ होने में सन्देह भी नहीं करता, अपनी नाम मात्र की विद्या-बुद्धि के घमण्ड मे चूर रहता है । वह जहाँ का तहाँ ही पड़ा रहता है -उसकी मूर्खता कभी नहीं जाती । मूर्ख ही अपने तईं बुद्धिमान समझता है । बुद्धिमान तो सदा अपने तईं मूर्ख समझता है ।

छप्पय ।

जब हौं समझो नेक, तबहि सर्वज्ञ भयो हौं ।
जैसे गज मदमत्त, अंधता छाय गयो हौं ॥
जब सतसंगति पाय, कछुक हौ समझन लाग्यौ ।
तबहिं भयो अति मूढ़, गर्व गुण कौ सब भाग्यौ ॥
ज्वर चढत-चढ़त अति ताप ज्यों, उतरत सीतल होत तन ।
त्योंही मन को मद उतरिगौ, लियो शीश सन्तोष पन ॥ ८ ॥

8. When I know but little, I was blind with madness like an elephant and my mind was full of vanity with the idea that I knew all. Now that I have learnt a little by keeping company with wise men my vanity has vanished like fever with the idea that I know nothing at all

क्रमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितं,
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थिनिरामिषम् ।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते,
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ॥९॥

जिस तरह कीड़ों से भरे हुए, लारयुक्त दुर्गन्धित, रस-माँस-हीन मनुष्य के घृणित हाड को आनन्द से खाता हुआ कुत्ता, पास खड़े हुए इन्द्र की भी शंका नहीं करता, उसी तरह क्षुद्र जीव जिसको ग्रहण कर लेता है, उसकी तुच्छता पर ध्यान नहीं देता ॥९॥

नीचों का स्वभाव कुत्ते का-सा होता है। जिस तरह कुत्ता बुरी-से-बुरी चीज को आनन्द से खाता है; उसी तरह नीच और स्वार्थी लोग बुरे-से-बुरे कर्म करने अथवा निन्द्य-से-निन्द्य उपायों से जीविका उपार्जन करके पेट भरने में किसी की शंका नहीं करते। अगर कोई उनसे सौ-सौ जूतियाँ मार कर और हजारों गालियाँ देकर भी उन्हें टुकड़ा देता है, तो भी वे बड़े खुश रहते हैं। ऐसे लोग भी संसार में देखने में आते हैं, जो लुच्चे-बदमाश, भंगी-चमार, चोर-लुटेरे प्रभृति के पीकदान, नरक की मूल, वेश्या के बुरे-से-बुरे काम करते हैं; उससे पिट-कुट कर और दुत्कार सुन कर, उसकी जूठी दो रोटियाँ पाने से ही आनन्दित हो जाते हैं। नीच और स्वार्थियों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे बुरे-से-बुरा काम करने में नहीं लजाते और जिस निन्द्य कर्म को करने लगते हैं,

जिस बुरी आदत को अखत्यार कर लेते हैं, उसे नहीं छोड़ते। न वे लोकनिन्दा की परवा करते हैं और न परमात्मा से भय खाते हैं।

कुण्डलिया।

कूकर शिर कारा परै, गिरै बदन ते लार।
बुरौ बास बिकराल तन, बुरौ हाल बीमार॥
बुरौ हाल बीमार, हाड सूखे कौं चावत।
लखि इन्द्रहुकों निकट, कछू उर शंक न लावत॥
निठुर महा मनमाँहि, देख घुर्रावत हूकर।
तैसे ही नर नीच, निलज डोलै ज्यौं कूकर॥६॥

9. A dog while eating a human bone which is covered over by whole families of germs and is dripping with saliva and full of vicious smell such as can not be likened to anything good, and which is devoid of all flavour and has not an iota of flesh sticking to it feels no shame even if he sees the God Indra standing by his side So a degenerate person does not care for the propriety or otherwise of any action that he sets himself to.

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापिजलधिम्।
अधोऽधोगंगेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥१०॥

गंगा के दृष्टान्त से मालूम होता है कि, विवेक भ्रष्टों का पद-पद पर सैकड़ों तरह से पतन होता है।

गंगा पहले स्वर्ग से शिव के मस्तक पर गिरी, उनके मस्तक से हिमालय पर्वत पर गिरी, वहाँ से पृथ्वी पर गिरी, और पृथ्वी से बहती-बहती समुद्र में जा गिरी। इस तरह ऊपर से नीचे गिरना आरम्भ होने पर, गंगा नीचे-ही-नीचे गिरी और स्वल्प होती गई। गंगा की सी ही दशा उन लोगों की होती है, जो विवेक-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका भी अधःपतन गंगा की ही तरह सौ-सौ तरह होता है ॥१०॥

गंगा जैसी पतितपावनी सुरनदी, अभिमान के कारण, विष्णुचरणों में लोप हुई। वहाँ से शिव के मस्तक पर गिरी। वहाँ से भी हिमालय की चोटी पर आई। हिमालय की चोटी से पृथ्वी पर आई। पीछे, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पटना प्रभृति स्थानों में बहती-बहती गङ्गासागर के पास समुद्र में जा गिरी। जो गङ्गा एक दिन सर्वोच्च स्थान—स्वर्ग—में थी, वही ज्ञानमार्ग से भ्रष्ट होने के कारण बार बार नीचे ही गिरती-गिरती, सबसे नीचे स्थान समुद्र में जा गिरी। वहाँ पहुँच कर उसका अस्तित्व ही लोप हो गया—नाम ही मिट गया। इतना अधःपतन क्यों हुआ ? केवल विवेक—विचार-शक्ति से काम न लेने या विवेक के खो देने से। जो संसारी लोग विवेक या विचार-शक्ति से काम नहीं लेते, जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार खो बैठते हैं, उनकी भी दशा गङ्गा की-सी होती है। उन पर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं। जिस तरह

एक बार अधःपतन आरम्भ होकर गङ्गा फिर ऊँची न उठ सकी, उसी तरह वे भी जब नीचे गिरने लगते हैं, तब ऊँचे नही उठते और एक दिन मिट्टी मे ही मिल जाते है।

विचार शक्ति ही हमारी सच्ची रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका है। जो लोग प्रत्येक बुरे और भले काम मे इसकी सलाह नहीं लेते अथवा इसका कहना नहीं मानते, उनकी दुर्गति निश्चय ही होती है। स्वयं विष्णु भगवान् ने भले और बुरे काम का विचार न करके, जलन्धर की स्त्री वृन्दा का सतीत्व भंग किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आपको नीचा देखना पड़ा और अब सदा उसे तुलसी के रूप मे सिर पर धारण करना पड़ता है। अपने बौने का रूप धर कर राजा बलि को छला। नतीजा यह हुआ कि आपको उनके दरवाजे का दरबान होना पड़ा। राजा बलि ने विवेक से काम न लेकर सर्वस्व दान कर दिया। परिणाम यह हुआ कि, आप बाँध कर पाताल पठाये गये। चन्द्रवंशी राजा नहुष को, विवेक-भ्रष्ट होने से, महामुनि अगस्त के शाप से, दस हजार वर्ष तक, सर्प बन कर रहना पडा। लंकेश ने, विवेक-भ्रष्ट होकर, जगज्जननी सीता पर मन डिगाया और उन्हे, रामचन्द्र जी को धोखा देकर लङ्का को ले गया इसी कारण से उसे सकुल नाश होना पड़ा। कहाँ तक दृष्टान्त दे? जिसने भी विचार-शक्ति से काम न लिया उसका अधःपतन ही हुआ।

दुनियाँ मे रोज ही देखते है कि, जो लोग विचार कर काम नही करते, वे अहर्निश नीचे-ही-नीचे गिरते चले जाते है। अज्ञानी लोग पहले तो परिणाम का विचार न करके खलों की सगति करते है। दुष्ट लोग उन्हे गाना-बजाना सुनाने के बहाने वेश्याओ के यहाँ ले पहुँचते है। गाना सुनते-सुनते वे वेश्या-प्रेमी हो जाते है; फिर उन्हे उसके बिना चैन नही पड़ता; उसे ही अपनी आराध्य देवी समझ कर रात-दिन उसी की आराधना मे लगे रहते हैं। सोते-बैठते खाते-पीते, उसी का ध्यान रखते है, अपना धन, यौवन और स्वास्थ्य सब उस जगत् की जूठन और चोर बदमाशो के पीकदान पर न्यौछावर कर देते है, उसकी सगति मे धीरे-धीरे शराबी और माँसाहारी हो जाते है एवं कोकीन प्रभृति प्राणहारक विषैल पदार्थों को सेवन करने लगते हैं। जब तक पैसा पास रहता है, उसे देते है और जब पैसा चुक जाता है, तब बाप-दादे की जायदाद बेच-बेच कर उसकी भेट करते है। जब कुछ भी नही रहता, ऋण भार सिर पर चढ़ाते है। जब कर्ज भी नही मिलता, तब जूआ खेलते और चोरी-डकैती करते हैं। किसी न किसी दिन पकड़े जाते है, तो जेल की हवा खाने भेज दिये जात है। वहाँ उनका चरित्र नीच कैदियों की सुहबत से और भी बिगड़ जाता है। जब मियाद पूरी होने पर छूट कर आते है, तब पहले से भी अधिक बुरे कर्म करने लगते है, क्योंकि उन्हे उस समय न किसी से शर्म आ...। है और न किसी तरह का

इन्थ नद्भुवि नास्ति यत्र विधिना नोपाय चिन्ताकृता
मन्ये दुर्जन चित्तवृत्ति हरणो धातापि भग्नोद्यमः ॥

दुस्तर महासागर से पार होने के लिये नाव है; अन्धकार नाश करने के लिये दीपक है, हवा करने के लिये पंखा है; मदमत्त गजराज के घमण्ड को नाश करने के लिये अंकुश है। पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके उपाय की विधाता ने फ़िक्र न की हो। इसके मानते हुए भी यह कहना पड़ता है कि दुष्ट की चित्त वृत्ति को हरण करने के उपाय में विधाता का भी उद्योग निष्फल हुआ अर्थात् दुष्ट या मूर्ख की दवा स्वयं ब्रह्मा भी न निकाल सका।

जिस विधाता की चातुरी और कारीगरी को देख कर मनुष्य चकित हो जाता है, जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य और चाँद तथा अनगिन तारागणों की सृष्टि की, जिसने मनुष्य, पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और नभचर नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं की रचना की जो अनन्त और सर्व शक्तिमान है, वह विधाता भी मूर्ख की औषधि न निकाल सका, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। यहाँ आकर उसका भी दिमाग़ चक्कर खा गया, तब मनुष्य की क्या सामर्थ्य है, जो ज़िद पर चढ़े हुए अपने तईं बुद्धिमान समझने वाले मूर्ख की चित्त-वृत्ति को सुधार सके—उसे किसी तरह समझा बुझा कर राह पर ला सके? मूर्ख किसी की नहीं मानता और बुद्धिमान दूसरे की उचित बात को फ़ौरन मान लेता है।

इसका मुख्य कारण मूर्ख का अपने तईं मूर्ख न समझना है। शेक्सपियर के 'ऐज़ यू लाइक इट' मे एक जगह लिखा है*—"मूर्ख अपने तईं बुद्धिमान् समझता है; किन्तु बुद्धिमान् अपने तईं मूर्ख मानता है।" मूर्ख का अपनी मूर्खता न समझना, अपनी ही बात को सर्वश्रेष्ठ समझना, और अपनी निकम्मी अक्ल पर घमण्ड करना ही उसके सदा-सर्वदा मूर्ख रहने का खास कारण है। परमात्मा दुराग्रही मूर्ख से पाला न पटके। बुद्धिमानो को चाहिये, कि ऐसे हठीलो से माथा पच्ची करके अपना समय बर्बाद न करे, क्योकि उन्हें हरगिज कामयाबी न होगी। जो ऐसो को राह पर लाने की उम्मीद करता है, वह अपने हाथों अपनी मौत को आह्वान करता है। अक्लमन्द उसे भी मूर्ख ही समझते हैं। "भामिनी विलास" मे लिखा है:—

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन,
कालानल परिचुम्बिषति प्रकामम्।
व्यालाधिपञ्च यतते परिरब्धुमद्धा,
यो दुर्जनं वशयितु कुरुते मनीषम्॥

जो मनुष्य दुष्ट को वश में करने का यत्न करना चाहता है, वह हलाहल विष को पीने, कालाग्नि को चूमने और भयंकर नागेन्द्र को आलिङ्गन करने की इच्छा करता है।

---

*The fool doth think he is wise, but the wise man knows himself to be a fool —*As you like it*

छप्पय ।

मिटै छत्र सों धूप और जल अग्नि बुझावें ।
तीखे अंकुश मार, मत्त गज वशमें लावै ।
दण्ड दिये तैं दुष्ट, बैल, अरु गदहा सूरख ।
औषधि विविध प्रदान, व्याधि खोवै, चित नू रख ॥
अरु लिखे अनेकन मन्त्र जिमि हरहिं जु विपता सवन की ।
पै इक औषधि जगत में, दहैं मूर्खता कुजन की ॥ ११ ॥

11. Fire can be put down by water; protection from the sun can be effected by an umbrella, an elephant can be curbed by a sharp pointed Ankhusha weapon, a head strong bull or an ass can be controlled by a stick, a disease can be cured by medicines or various preventive measures and the effects of poison can be nullified by the chanting of mantras. There is a special remedy for every thing given in the Shastras, but there is no remedy for an ignorant person

साहित्यसंगीतकलाविहीनः,
साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमान
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य साहित्य और संगीत कला से विहीन है, यानी जो साहित्य और संगीत शास्त्र का जरा भी ज्ञान नहीं रखता या इनमें अनुराग नहीं रखता, वह बिना पूँछ और सींग का साक्षात् पशु

है । यह घास नहीं खाता और जीता है, यह इतर पशुओं का परम सौभाग्य है ।

जो मनुष्य काव्य अलंकार और न्याय प्रभृति का ज्ञान नहीं रखता—उनसे अनुराग नहीं रखता, गान विद्या से रुचि नहीं रखता, उसका मर्म नहीं जानता, वह मनुष्य होने पर भी मनुष्य नहीं, किन्तु विना दुम और सींग का जानवर है। वह घास नहीं खाता और जीता है यह अन्य पशुओं का सौभाग्य है। अगर वह भी कहीं घास खाता होता, तो वेचारे पशुओं को अपना पेट भरना कठिन हो जाता—वेचारे घास विना भूखो मर जाते।

जन्म लेने के समय मनुष्य के बच्चे और पशु के बच्चे से कोई फर्क नहीं होता। दोनो ही ज्ञान हीन पशु होते है। केवल रूप, रङ्ग और आकृति मे फर्क रहता है सो यह भेद तो पशुओं मे भी रहता है । पशु भी अनेक प्रकार के होते हैं । उनमे ही, मनुष्य भी एक प्रकार का पशु ही होता है । मनुष्य जब विद्यार्ज्जन करता है, नाना प्रकार के ग्रन्थ पढ़ता है, विद्वानो की संगति करता है, तब उसे ज्ञान होता है. वह हिताहित और कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने लगता है, तभी वह पशु से मनुष्य बनता है । मनुष्य और पशु मे इतना ही भेद होता है, कि मनुष्य मे ज्ञान और विवेक होता है. पर पशुओं मे यह नहीं होता। अगर मनुष्य भी अज्ञानी और निरक्षर हो. तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं। कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना ॥

मनुष्य खाते-पीते हैं, पशु भी खाते-पीते है, मनुष्य सोते है, पशु भी सोते है, मनुष्य डरते है, पशु भी डरते हैं, मनुष्य मैथुन करते है, पशु भी मैथुन करते हैं। ये चारों काम मनुष्य और पशु समान रूप से करते है । फिर मनुष्य और पशुओं मे भेद क्या ? बस, भेद यही है कि मनुष्यो मे धर्म-ज्ञान होता है, किन्तु पशुओ मे यह नहीं होता । धर्म-ज्ञान से ही मनुष्य—मनुष्य कहलाता है और धर्म-ज्ञान के अभाव से पशु—पशु कहलाता है। ग्विन्नाक नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी यही बात कही है । आप कहते है,—"विद्या मनुष्य का गुणोत्कर्ष है, जिससे वह साधारण रूप से इतर पशुओ से विभिन्न समझा जाता है।"

अँगरेजी मे और हमारे यहाँ भी एक कहावत है- "कोई भी मनुष्य माँ के पेट से बुद्धिमान् और विद्वान् नहीं पैदा होता ।" सभी पढ़-लिख कर और अनुभव प्राप्त करके विद्वान् और बुद्धिमान् हो जाते है । मनुष्य को इस संसार मे जीवन का बेड़ा सुख से पार करने के लिये, आगे की यात्रा के लिये अच्छी-अच्छी तैयारियाँ करने के लिये, साहित्य

(Literature) और संगीत-शास्त्र (Music) में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। साहित्यावलोकन से मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, उन पर पड़ा हुआ पर्दा हट जाता है। वह स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सिद्धि में सफलता लाभ करता है, इस लोक में सुख से जिन्दगी बसर करता और मरने पर स्वर्ग में जाकर देवताओं के समान आनन्द करता है अथवा जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है।

एक दिन हमारे देश में सङ्गीत-शास्त्र—गान-विद्या या स्वर शिक्षा का बड़ा आदर था। लोग इस कला में अच्छी निपुणता लाभ करते थे। कोई ३८० साल हुए, अकबर के जमाने में ही, तानसेन जैसे संगीत-कला मर्मज्ञ हो गये हैं। सुनते हैं, उन्होंने 'दीपक राग' से दीपक जला दिये थे। रावण ने अपनी स्वर-विद्या से ही शिवजी को मोहित करके मनमाने वर लाभ किये थे। "पञ्चतन्त्र" में लिखा है—

> नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते।
> शुष्कस्नायुस्वराह्लादात्त्र्यक्षं जग्राह रावणः॥

संसार में गीत से अधिक प्यारी चीज और नहीं है। तपस्या के कारण से इन्द्रियों के सूख जाने पर भी, रावण ने "स्वर" से ही शिवजी को अपने वशीभूत किया था।

हमारे नारद जी इस कला मे कैसे निपुण हैं, इसे कौन नहीं जानता ? श्री कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि से व्रजबालाये अपने पतियो को सोते छोड़ कर, अपने प्राण प्यारे बालको को बिसार कर, कृष्ण भगवान् की सेवा मे पहुँचती थी। भगवान् की बाँसुरी की रसीली ध्वनि से एक दिन जमुना का बहना और चन्द्रमा का चलना बन्द हो गया था। इस पर पशु भी मुग्ध हो जाते है। हिरन बंसी की ध्वनि से व्याधा के बन्धन मे पड़ कर प्राण दे देता है। सर्प जैसा भयङ्कर जन्तु भी मदारी की पुङ्गी की ध्वनि पर नाचने लगता है; तब मनुष्यों का क्या कहना ?

पाश्चात्य विद्वानो ने भी इस विद्या की कम तारीफ नहीं की है। जगद्विजयी सम्राट कुल तिलक नेपोलियन ने कहा है—"सङ्गीत का, सब विद्याओ की अपेक्षा, मनुष्य के चित्त पर सब से अधिक प्रभाव पड़ता है, इसलिये आईन बनाने वाले को इसे सब से अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये।" लूथर महोदय कहते है—'सङ्गीत मनुष्यो को अधिक भव्य, सभ्य, विनीत, नम्र तथा विवेकी और न्यायी बनाता है।" एडीसन महोदय कहते है—"संगीत ही एक मात्र इन्द्रियो को आनन्दित करने वाला विषय है, जिसे मनुष्य यदि अधिकता से भी उपभोग करे, तो भी उससे उसके नैतिक और धार्मिक विचारो को हानि नहीं होती।" बीथोविन साहब कहते हैं—सगीत आत्मिक और दैहिक जीवन का

मध्यस्थ है।" वोवी महाशय कहते है—"संगीत हमारी चार बड़ी जरूरियातो मे से एक है—पहली जरूरियात भोजन है; दूसरी पोशाक है; तीसरी आश्रय-स्थान है और चौथी सगीत या गानवाद्य कला है।" लूथर महाशय और भी कहते है—"सङ्गीत भविष्य वक्ताओं की विद्या है। इस एक मात्र विद्या से ही अशान्त या उद्विग्न आत्मा को शान्ति मिल सकती है।" एक महाशय कहते है—("सङ्गीत मे वह जादू है, जो निष्ठुर पशुवत् हृदयो को भी शान्त कर सकता है।)" कहिये पाठक! अब तो आपने संगीत-विद्या की गुणावलि समझी? यह वह विद्या है, जिस पर मस्त होकर सिपाही रणभूमि मे हॅसता हुआ अपने प्राण दे देता है।

सारांश यह है, कि साहित्य और सगीत-विद्या दोनो ही मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली और मानव जीवन के लिये परमावश्यक है। जो इन दोनो से कोरे है, वे निस्सन्देह पशु हैं। मनुष्य मात्र को इन दोनो से अनुराग रखना चाहिये। काम-धन्धो से जो समय मिले—उसे सोने, कलह करने या ताश-चौपड़ मे न गॅवा कर, इनमे लगाना चाहिये। इनमे जो आनन्द है, उसे हम लिख कर बता नहीं सकते। बुद्धिमानो का समय इनमें ही जाता है। कहा है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

काव्य और शास्त्र के आनन्द मे ही बुद्धिमानो का समय बीतता है। मूर्खों का समय व्यसन, निन्द्रा और लड़ने-झगड़ने मे जाता है।

दोहा।

गीत कला साहित्यहूँ, नहिं सीख्यो नर जौन।
सीग पूँछ बिन पशू पर, तृण नहिं खाते तौन ॥ १२ ॥

12 A man destitute of literary or musical attainments is a very beast minus tail and horns He does not eat grass but still lives on and so is a very remarkable member of the beast family.

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १३ ॥

जिन्होंने न विद्या पढी है, न तप किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान ही उपार्जन किया है न सच्चरित्रों का-सा आचरण ही किया है, न गुण ही सीखा है, न धर्म का अनुष्ठान ही किया है—वे इस लोक मे वृथा पृथ्वी का बोझा बढ़ाने वाले, मनुष्य की सूरत-शकल मे, मृगों की तरह पशु है।

जिन्होंने न्याय, नीति, वेदान्त आदि शास्त्रो का अध्ययन नही किया है, जिन्होंने मधुसूदन की भक्ति नहीं की है, जिन्होने समाधि लगा कर मुकुन्द के चरण कमलो का ध्यान नहीं किया है, जिन्होंने सत्पात्रों को दान नहीं दिया है,

जिन्होंने गरीब और मुहताजो के कष्ट निवारण न
जिन्होंने शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान सम्पादन न
है, जिन्होंने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान लाभ नहीं किया है, जिन्होंने भले आदमियो का-सा आचरण नहीं किया है, जिन्होंने शीलव्रत धारण नहीं किया है, जिन्होंने गुणो का उपार्जन नहीं किया है, जिन्होंने धर्म-कार्य नहीं किये हैं—उन्होंने इस दुनिया में, वृथा पृथ्वी का भार बढ़ाने के लिये, पशुओं की तरह जन्म लिया है। वे सूरत-शकल या आकृति से मनुष्य है, पर वास्तव में जानवर है। "हितोपदेश" मे लिखा है—

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथित यश.।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

दान, तप, बहादुरी, विद्या और धनार्ज्जन मे जिसने नाम नहीं कमाया है, वह महतारी के मलमूत्र के समान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमे से जिसे एक की भी प्राप्ति नहीं हुई, उसका जन्म लेना बकरी के गले के स्तनो की भाँति वृथा ही है। परम नीतिज्ञ महात्मा शेख सादी ने भी कहा है—

चू इन्साँरा न बाशद फजलो ऐहसाँ।
चे फर्क अज आदमी ता नक्श दीवार॥

हाजी ते नेस्ती शुतरस्त अज बराये आँके ।
बेचारा खार मी खुरद वा बार मी बरद ॥

यदि मनुष्य मे गुण सम्पादन करने और परोपकार करने की इच्छा न हो, तो उसमे और दीवार पर खिंचे चित्र में क्या अन्तर है ? जिस हाजी मे दया आदि सद्गुण नही है, उससे वह ऊँट अच्छा जो काँटे खाकर वोझ उठाता है ।

और भी कहा है—पूर्णवयस्क वही मनुष्य है, जो सांसारिक वासनाओं से मन हटा कर ईश्वर के प्रसन्न करने के उद्योग में लगा रहता है । जिसमे यह बात नहीं उसे विद्वान् पूर्णवयस्क--जवान नहीं समझते । पानी की एक बूँद ने चालीस दिन तक माँ के पेट मे रह कर मनुष्य का रूप प्राप्त किया । अगर किसी पूरी उम्र के आदमी मे समझ, ज्ञान और सच्चरित्रता या शील न हो, तो "मनुष्य" न कहना चाहिये ।

दोहा ।

विद्या दान न ज्ञान तप, शील धर्म गुण हीन ।
विचरहि ते नररूप पशु भूमि-भार अति दीन ॥ १३ ॥

13. Those who neither possess knowledge nor perform penances, who do not cultivate habits of charity and self realisation, and who have neither politeness nor capability nor a sense of duty, are only a burden of this earth and roam over it like beasts in the shape of men

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

सिंह व्याघ्र प्रभृति वनपशुओं के साथ घूमना अच्छा, पर मूर्ख का सहवास इन्द्रभवन में भी भला नहीं ।

मनुष्य के न पहुँच सकने योग्य दुर्गम पहाड़ों और भयानक घोर जंगलों में सिंह, व्याघ्र आदि हिंसा करने वाले जानवरों से रह कर जिन्दगी को खतरे में डालना कहीं अच्छा, पर मूर्ख के साथ मेल जोल, दोस्ती और परिचय करके स्वर्ग-समान सुखों का भोगना किसी दशा में भी भला नहीं। (दरिद्रता का जीवन यापन करना भला, पर मूर्ख या दुष्ट के साथ अमीरी के सुख भोगना भला नहीं।)

किसी और महापुरुष ने भी कहा है:—

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्ट वृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधू ।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिप पुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥

(सूनी घुड़साल भली, पर दुष्ट बैल अच्छा नहीं, वेश्या-पत्नी अच्छी, पर दुश्चरित्रा कुलवधू भली नहीं, वन में बसना अच्छा, पर अविवेकी—अविचारवान् के राज्य में रहना भला नहीं; मर जाना भला, पर नीच का सङ्ग करना अच्छा नहीं।)

(ईसाइयों की 'इञ्जील" मे लिखा है—"बुद्धिमानो की झिड़कियाँ सुनना भला, पर मूर्खों के गीत सुनना अच्छा नहीं।"* और भी कहा है—"जो बुद्धिमानो की संगति करता है; वह निश्चय ही बुद्धिमान हो जायगा। किन्तु मूर्खों के साथ रहने-वाला अवश्य ही नष्ट हो जायगा।"‡)

"हितोपदेश" मे कहा है.—

> त्यज दुर्जन संसर्गं, भज साधु समागमम्।
> कुरु पुण्यमहोरात्र, स्मरन्नित्यमनित्यताम्॥

दुर्जनो का संसर्ग त्याग, सज्जनो का सङ्ग कर और सदा संसार की अनित्यता का ध्यान रख कर, दिन-रात पुण्य संचय कर।

और भी कहा है:—

> न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्।
> काक संगाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छश्च वर्तकः॥

दुष्ट के साथ न रहना चाहिये और उसके साथ चलना चाहिये। कव्वे के साथ रहने से हंस और साथ चलने से बटेर मारा गया।

---

* It is better to hear the rebuke of the wise than for a man to hear the song of fools.—*Bible.*

‡ He that walketh with wise man shall be wise, but a companion of fools shall be destroyed —*Bible.*

शेखसादी ने भी कहा है—"जो दुष्ट की संगति करता है, वह भला आदमी नहीं बनता। फरिश्ता यदि देवो की सगति करता है, तो चोरी और धूर्त्तता ही सीखता है।"

मनुष्य जैसे की सगति करता है, वैसा ही हो जाता है। हीन की संगति से हीन, समान की संगति से समान और उच्च की संगति से उच्च हो जाता है। जो मूर्ख और दुष्टों की संगति करता है, वह स्वयं मूर्ख हो जाता और अपनी तथा अपने मूर्ख साथियो की संगति से विविध प्रकार के क्लेश और दुःख भोग करता है; इसलिये मूर्ख और दुष्टों के संग रहने-सहने, चलने-फिरने और बोलने चालने तक की मनाही की है; क्यों कि दुष्ट अपने अच्छे-से-अच्छे साथी को अपना जैसा बना लेते है।

कुसग सर्वथा परित्याज्य है। कुसंग के समान सर्वनाशक और कुछ भी नहीं है। जिन लोगों का अधःपतन हुआ है उनसे पूछिये तो उनमें से प्रायः सभी अपने अध.पतन का कारण कुसग ही बतावेंगे। ससार मे कुपथगामियो की संख्या बहुत है। ये लोग भले आदमियो को खराब-खराब किस्से-कहानियाँ सुना कर, लण्डनरहस्य, छबीली भटियारी, तोता-मैना के क़िस्से प्रभृति पुस्तकों के पढ़ने का चसका लगा कर, रण्डियों के यहाँ ले जाकर थियेटर के तमाशे दिखा कर—अनेक प्रकार के आचरण करके और प्रलोभन देकर बेदाग आदमियों को भी खराब कर देते है। मूर्खों के साथ रह कर

मनुष्य लड़ना-भिड़ना, जूआ खेलना, चोरी करना, शराब पीना और ऐयाशी करना—ऐसे-ऐसे ही गन्दे काम सीखता है।

मूर्ख और दुष्टों के साथ रहने से काम क्रोध, लोभ, मोह की उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा बुद्धि का नाश होता है। नीचों के दृष्टान्त से उनके साथ कुसंगति सुनने और खराब पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य के दिल में स्वभाव से ही काम की उत्पत्ति होती है—भोग-लालसा बलवती होती है और जब भोगेच्छा की परितृप्ति नहीं होती, उसमें किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होती है, तब क्रोध का उद्रेक होता है क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है। उस समय मनुष्य का चित्त अन्धकारावृत हो जाता है। चित्त में अंधेरा होते ही स्मृतिभ्रम होता है अर्थात् जो कुछ ज्ञान सञ्चय हुआ था, दृष्टान्त देख कर या शास्त्र पढ़ कर जो सत्पथानुरागी होने की इच्छा हुई थी, वह सर्वथा नाश हो जाती है। इस तरह स्मृति विभ्रम होने से ही बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश होने से मनुष्य की वैसी ही दशा होती है, जैसी कि नाव का पाल टूट जाने से नाव की होती है बहुत क्या कहें, बुद्धि के नाश से सर्वनाश ही हो जाता है। मूर्ख और नीचों के संग रहने से उस बुद्धि का ही नाश हो जाता है, जिसके बिना मनुष्य इस जगत् में एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता, इसी से महापुरुषों ने मूर्खों की सङ्गति से वन्य पशुओं की सङ्गति अच्छी कही जाती है।

उनके साथ रह कर मनुष्य कदाचित् जीवन-रक्षा कर भी ले, पर इनके साथ मनुष्य की खैर नहीं। उनके खा जाने से तो मनुष्य का जीवन ही नाश होता है—परलोक नहीं बिगड़ता; पर इनकी संगति से पद-पद पर विपत्तियाँ झेलनी पड़ती है, लोग थू-थू करते है और प्राण नाश होने पर परलोक बिगड़ जाता है। कहाँ तक कहे, मूर्खों के संग से सिंह प्रभृति भयानक जन्तुओ का संग लाख दर्जे सुखदायी है।

लंकेश रावण नीतिशास्त्र का धुरन्धर पण्डित था, पर सूर्पणखा जैसी मूर्खा ने उसकी मति क्षण भर मे बिगाड़ दी—उसको जनकनन्दनी के अलौकिक रूप-लावण्य की बात सुना कर, पागल कर दिया। सूर्पणखा की बातो से ही उसके चित्त मे काम की उत्पत्ति हुई। भय तो उसे किसी का था ही नहीं, कामातुर होने से वह पूरा निर्लज्ज बन गया। चुपचाप आकर यति का भेप धर कर, जगज्जननी सीता माता को जबरदस्ती उठा ले गया। रामचन्द्रजी ने अपने मित्र सुग्रीव और हनुमान प्रभृति की सहायता से वानर-दल लेकर लंका पर चढ़ाई की। जब रावण को अपनी भोग लालसा मे बाधा उपस्थित होती दिखाई दी, वह एक दम से क्रोधान्ध हो गया। क्रोधान्ध होने से उसका चित्त भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीति को पढ़ कर जो अपूर्व ज्ञान उसने सञ्चय किया था, वह सब नाश हो गया।

रही-सही भी बुद्धि नष्ट हो गई। इसी से विभीषण, कुम्भकरण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तकों के समझाने से भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्रजी से लडने को तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे संसार मे कौन नहीं जानता है? जिसके घर मे एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घर मे दिया जलाने वाला भी न रहा! यह सब क्यो हुआ? एकमात्र मूर्खा सूर्पणखा की कुसंगति और कुमन्त्रणा से। कहते हैं, दुष्ट का पड़ोस भी बुरा। रावण के पडौस मे बसने से बेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण जैसे नीच के पडौस मे नहीं होता, तो उसकी दुर्गति क्यों होती? दुष्ट जो कुकर्म करते हैं, उनका फल भले आदमियो को भी भोगना पडता है। "हितोपदेश" मे लिखा है—

> खलः करोति दुर्वृत्त नन फलति साधुषु।
> दशाननोऽहरत्सीतां, बन्धनस्यान्महोदधेः॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म्म करता है, उसका फल साधुओ को निश्चय ही भोगना होता है। रावण ने सीताहरण किया और समुद्र बेचारा बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-संसर्ग के दोषों को इसी तरह समझाते चले जावेंगे तो इसी विषय मे एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नहीं, इसलिये मूर्ख की परिभाषा समझा कर ही, हम इस विषय को समाप्त करेंगे।

क्योंकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अपढ़—निरक्षरों को ही मूर्ख समझते हैं, पर मूर्ख पढ़े-लिखे भी होते हैं और बिना पढ़े भी। जर्मनी में एक कहावत है—"पढ़े लिखे मूर्ख सब मूर्खों से खतरनाक होते हैं"। मनुष्य की अपढ़ मूर्खों से जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढ़े-लिखे मूर्खों से बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पों के समान होते हैं; किन्तु साक्षर—पढ़े लिखे मूर्ख मणिधारी काल सर्प के समान भयंकर होते हैं।

असल बात यह है जो मनुष्य मूर्खों के से काम करे, वही मूर्ख है, चाहे वह पढ़ा लिखा हो और चाहे अपढ़ हो। शेखसादी ने यही बात कही है:—

इल्म चन्दाँ कि बेशतर खानी।
च अमल नेस्त दर तो नादानी॥
न मुहक्किक बुवद न दानिशमन्द।
चारपाये बरो किताबे चन्द॥

जो पढ़े-लिखे मनुष्य मूर्खों के से काम करते हैं, वे पढ़े-लिखे मूर्ख हैं। किसी गधे पर यदि कुछ ग्रन्थ लाद दिये जाँय तो क्या वह उनसे विद्वान् या बुद्धिमान बन सकता है?

चन्दन का भार उठाने वाला गधा केवल भार की बात जानता है, वह चन्दन और उसके गुणों को नहीं जानता;

इसी तरह जो लोग अनेक शास्त्रों को पढ़ तो लेते है, पर शास्त्रो के उपदेशानुसार नही चलते—वे मूर्ख गधे ही हैं। ऐसों को खाली अहङ्कार हो जाता है । इसमे उनकी मूर्खता और भी भयङ्कर हो जाती है । अँगरेजी मे एक कहावत है—"विद्या से मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है, किन्तु मूर्ख उससे और भी मूर्ख हो जाता है।" गुलिस्ताँ मे लिखा है—"निकम्मे लोहे से कोई भी अच्छी तलवार नही बना सकता। अक्लमन्दो ! सुनो,बदजात नालायकको नेक बनाना असम्भव है। मेह क्या बगीचा और क्या ऊसर जमीन - सर्वत्र एकसाँ जल बरसाता है, पर बगीचो मे लाला फूलते हैं और ऊसर मे घास उपजती है। ऊसर जमीन मे कभी सम्बुल नही लगता ।' इसका यही मतलब है कि जिनमे स्वाभाविक योग्यता होती है, वे ही विद्या से बुद्धिमान बन जाते है।

बकिल नामक एक विद्वान् कहते है—"विषयो से परिचित होना यथार्थ विद्या नही है, किन्तु विषयो का प्रयोग करना यथार्थ विद्या है। उससे मनुष्य खाली अहंकारी बनता है और इससे दार्शनिक पण्डित होता है ।" हमारे भारत के भूतपूर्व स्टेट सेक्रेटरी जॉन मॉरले ने भी कहा है—"यह समझना बड़ी गलती है, कि हमने अमुक उच्च श्रेणी के ग्रन्थ को एक दो या दस बार पढ़ लिया। बस, अब हो गया। तुम्हे अपनी रोजाना जिन्दगी मे उसे अपना साथी

बनाना चाहिये।" बात यह है, जो पढ़ो उस पर विचार करो और उसे अपने जीवन में प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करो।

बहुत ही कम लोग ऐसा करते हैं। लोग पढ़ते है, सो करते नहीं; उत्तमोत्तम सार पूर्ण निबन्ध लिखते हैं, परमोत्तम कवितायें करते हैं, पर आप स्वयं वैसे उत्तम कर्म नहीं करते। मैंने स्वयं अनेक लोग ऐसे देखे है, जो सचमुच ही लिखने में कमाल करते हैं। विद्या बुद्धि के कारण उनकी सुख्याति भी बहुत है। पर जब मैंने उनके भीतरी चरित्रों पर निगाह दौड़ाई, तो मालूम हुआ, कि उन जैसे नीच, निर्दयी, कपटी, अहंकारी बहुत कम लोग हैं। उनसे निरक्षर ग्रामीण लाखों दर्जे उत्तम है। वे पढ़े-लिखे मूर्ख, अपनी सामान्य शिक्षा के कारण, मदोन्मत्त हाथी से भी अधिक मतवाले रहते है। उनके अहंकार की सीमा नहीं। जिनमें अहंकार है, उन्हें विद्वान कौन कह सकता है? जो अहंकारी है, उसमें कौनसा दुर्गुण नहीं? विद्या का फल अहङ्कार का नाश होना है। जिनमें अहंकार है, वे तो मूर्खों के राजा है। बकौल शेखसादी, उस बर्र के समान है, जो डङ्क तो मारती है किन्तु मधु नहीं देती। उनसे मनुष्यों को कष्ट ही होता है।

अब बहुत हो गया। समझदारों को सब तरह के मूर्खों से सदा अलग रहना चाहिये। मूर्खों की छाया भी भली

नहीं। दुष्टों का जरासा संसर्ग भी बुरा। एक बार, एक कारखाने के स्वामी मेरे यहाँ आकर ठहरे। मैंने उन्हे ऊँचे दर्जे का आदमी समझ कर, उनकी बड़ी आव-भगत की। उनके लिये नाना प्रकार के षट्रस भोजन बनवाये और चाँदी सोने के बर्तनो मे परोस कर खिलाये। और भी सब तरह से उनकी खातिर की। नतीजा यह हुआ, कि वे क्रुद्ध गये और मेरे सर्वनाश की बन्दिशे बाँधने लगे। उनसे जो बना, उसमे उन्होने घाटा न रखा; परमात्मा की दया से मेरा बाल भी बाँका न हुआ। महामुनि वशिष्ठजी ने, महाराज विश्वामित्र को अपने आश्रम मे टिका कर, क्या-क्या आफतें नही उठाई ? इसी से कहा है.—

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्यात्प्रीतिसंगतिम् ।
वशिष्ठस्याहरद्धेनु विश्वामित्रो निमन्त्रितः॥

दोहा ।

कुटिल क्रूर लोभी जो नर, करै न सङ्गति ताहि ।
ऋषि वशिष्ठ-धेनू हरी,, विश्वामित्र जु चाहि ॥

पर ऐसे दुष्टों का पहचानना सहज नहीं। आप किसी की विद्या-बुद्धि का हाल कदाचित् एक ही दिन मे जान ले, पर उसके मानसिक दोषो का पता आपको वर्षों मे भी नही लग सकता। इसलिये शीघ्र ही किसी पर विश्वास न कर लेना चाहिये—शीघ्र ही उसे अपना साथी न बना लेना चाहिये; चाहे वह कैसा ही विद्वान् और हँसमुख क्यो न

हो। अगर किसी मूर्ख से पाला पड़ गया, तो आपको दिन में तारे दीख जायँगे। गोल्डस्मिथ ने कहा है:—"मूर्खों की संगति, आरम्भ में, यदि हमें हँसा भी दे, तो भी, अन्त में, वह हमें ग़मगीन बनाये बिना न रहेगी।" *

चाणक्य ने कहा है:—

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्यशल्येन, अदृशं कण्टको यथा॥

मूर्ख से दूर रहना ही उचित है, क्योंकि वह देखने में मनुष्य है, पर यथार्थ में दो पाँव का पशु है। जिस तरह अन्धे को काँटा बेधता है, उसी तरह वह अपने वाक्य-रूपी शल्य से मनुष्य के हृदय में छेद कर देता है।

दोहा।

बनचर संग रहबो सुखद, बन पर्वत के माहिं।
पै मूरख-संग स्वर्गहू, दुखयुत संशय नाहिं॥१४॥

14. It is better to wander over hills or forests in the company of wild animals rather than to live in the society of ignorant men in the palaces of Indra (the God of Paradise)

---

*The company of fools may at first make us smile but at last never fails of rendering us melancholy.—*Goldsmith*

विद्वानों की प्रशंसा ।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा-
विख्याता कवयो वसन्ति विषयेयस्यप्रभोर्निर्धनाः
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयोह्यर्थं विनापीश्वराः,
कुत्स्याः स्युःकुपरीक्षका हिमणयो यैरर्घतः पातिताः ॥१५॥

जिन कवियों की वाणी शास्त्राध्ययन की वजह से शुद्ध और सुन्दर है, जिनमें शिष्यों के पढ़ाने की योग्यता है, जो अपनी विद्या के लिये सुप्रसिद्ध हैं- ऐसे विद्वान् जिस राजा के राज्य में निर्धन रहते हैं, वह राजा निःसंदेह मूर्ख है। कविजन तो बिना धन के भी श्रेष्ठ ही होते हैं। रत्नपारखी यदि किसी बहुमूल्य रत्न का मोल घटा दे तो रत्न का मूल्य कम न हो जायगा। रत्न का मूल्य तो जितना है उतना ही बना रहेगा, हाँ, मूल्य घटाने वाला अनाड़ी समझा जायगा ॥१५॥

जो राजा शुद्ध और मधुर वाणी बोलने वाले, शिष्यों को सम्पूर्ण शास्त्रों की शिक्षा देने की योग्यता रखने वाले सुप्रसिद्ध विद्वानों की कदर नहीं करता, उनसे राज काज में सलाह नहीं लेता उनको उनकी योग्यतानुसार पद देकर उनका धनाभाव नहीं मिटाता,—वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है—वह स्वयं विद्वान् नहीं है। अगर उसने स्वयं विद्याध्ययन किया होता, तो निश्चय ही पण्डितों की कदर करता। राजा की बेकदरी से

विद्वानो की योग्यता नही घट जाती, किन्तु राजा की मूर्खता ही प्रकट होती है। यदि कोई मूर्ख हीरे को पाकर फेक दे, तो क्या हीरे की कीमत कम हो जायगी? जंगलो मे भील कोल आदि जगली लोग गजमोतियो को पाकर भी फैक देते है। क्या उनके फैक देने से मोतियो का मूल्य घट जाता है? जब वे सच्चे जौहरियो के हाथ पड़ जाते है, तब उनका यथार्थ आदर होता ही है। गुणी लोग ही गुणवानो की कदर करते है—वे ही उनसे सन्तुष्ट होते है। निर्गुणियो को गुणियो से कभी भी प्रसन्नता नहीं होती। भौरे दूर से भी आकर कमल का मधुपान करते है, पर मेढ़क रात-दिन पास रह कर भी उनका मजा नही लेते। मेढ़को की अजानकारी या बेकदरी से कमलो का क्या घट जाता है?

शेखसादी ने कहा है'—

आलिम अन्दर मयाने जाहिल रा।
मसल गुफ्तन्द अन्द सद्दीकाँ॥
शाहिदे दर मयाने कोरानस्त।
मसहफे दर मयान जिन्दीकाँ॥

विद्वानो की कदर विद्वान् ही करते है। मूर्खोंमे विद्वानो की वही दशा होती है, जो किसी सुन्दरी की अन्धो मे और धर्म-पुस्तक की नास्तिको मे।

और भी कहा है:—

पण्डित-जन को श्रम-मरण, जानत जे मत-धीर।
कबहूँ बाँझ न जानही, तन प्रसूत की पीर॥
मूरख गुण समझे नहीं, तो न गुणी मे चूक।
कहा भयो दिन को बिभो? देखी जो न उलूक॥
विरले नर पण्डित गुनी, विरले बूझनहार।
दुखखण्डन विरले पुरुष, ते उत्तम संसार॥

पण्डितो को राजाओ या अमीरो की बेकदरी से मन मे दुःखित न होना चाहिये। उनके पास यदि उत्तम विद्या है, तो क्या घाटा है? विद्या स्वयं अक्षय धन है। एक मूर्ख की अवज्ञा से क्या होगा? कोई न कोई गुणग्राही मिल ही जायगा। उनके दुःखित चित्त के सन्तोष-विधानार्थ हम 'भामिनी विलास" की एक अन्योक्ति यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझते है'—

कमलिनी मलिनी करोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः।
परिणतमकरन्द मार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥

हे कमलिनी! अगर तेरे मकरन्द के मर्म को समझाने वाले भौंरे संसार मे जीते हैं, तो तू मूर्ख बगुलो की अवज्ञा से अपने मन को क्यो दुःखी करती है?

छप्पय--सब ग्रन्थन को ज्ञान, मधुर वाणी जिनके मुख।
नित-प्रति विद्या देत, सुयश को पूर रह्यो सुख।
ऐसे कवि जिहिं देश, बसत निर्धनता लहि अति।
राजा नाहिं प्रवीन, भई याही ते यह गति।
वे हैं विवेक सम्पत्ति सहित सब पुरुषन में अतिहि वर।
घट कियो रतन को मोल जिन, तेइ जौहरी कूरनर ॥१५॥

15 If the poets of reputed fame whose speech is beautified by elegant expressions derived out of the sacred bore of Shastras and whose knowledge is fit for being imparted to their disciples live in the territory of a king on a state of poverty, the fault lies at the door of the king himself, otherwise the poets are the lords of all even with out the possession of wealth It is the unworthy jewellers who are to blame if they have reduced the price of precious gems (through their want of knowledge in setting the price of those gems)

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा,
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पांतेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैःसह स्पर्द्धते ॥१६॥

हे राजाओ! जिन महापुरुषों के पास असाधारण विद्या रूपी गुप्त धन है, उनसे आप हरगिज भी अभिमान न करें।

उस धन को चोर देख नहीं सकते, उससे सदा सुख की ही वृद्धि होती है, याचकों को देने से भी वह सदा बढ़ता ही रहता है और कल्पान्त या प्रलय काल में भी उसका नाश नहीं होता। जिनके पास ऐसा धन है, उनकी बराबरी कौन कर सकता है।

जो राजा या धनी लोग अपने धन-वैभव के कारण से विद्वानों के सामने अभिमान करते है उनको अपने मुकाबिले मे तुच्छ समझते हैं, उनका मान मर्दन करने के लिये राजर्षि भर्तृहरिजी कहते है—"हे धनियो! आपका धन चोर-चकोर, लुटेरे और डाकू सबकी नजरों मे रहता है। इसे आप छिपा कर भी छिपा नहीं सकते, इसलिये इसके जाने का सदा भय रहता है। आपके धन से आपको वास्तविक सुख कभी नहीं मिलता। इसके कमाने से दुःख, इसकी रक्षा मे दुःख और इसके नाश म दुःख है। ज्यों ज्यों यह बढ़ता है, त्यों-त्यों चिन्ता और तृष्णा बढ़ती है। धनियों का जीवन सदा खतरे मे रहता है। अगर यह धन मॉगने वालों को दिया जाता है या और तरह खर्च किया जाता है, तो घटता ही जाता है देने से बढ़ता नहीं। आपका यह धन चन्दरोजा है, सदा-सर्वदा नहीं रहता। अब विद्या धन की महिमा सुनिये वह धन सचमुच ही गुप्त धन है। वह किसी को भी नहीं दीखता, इसी से उसे चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट

नहीं सकते, उसके रखने वालों का सदा भला ही होता है। वह चिन्ता और शोक घटाता और मन को प्रफुल्लित करके सुख को बढ़ाता है। उसकी रक्षा की चिन्ता नहीं, जाने का खटका नहीं। वह ज्यों-ज्यों दिया जाता है, त्यों-त्यों उल्टा बढ़ता है और जन्म जन्मान्तर क्या कल्पान्त से भी नाश नहीं होता—मनुष्य के हर बार जन्म लेने पर साथ रहता है। उस असाधारण अक्षय धन की बराबरी क्या आपका यह तुच्छ, साधारण और क्षणभंगुर धन कर सकता है? जिनके पास असाधारण गुणों वाला विद्या धन है, वे सचमुच ही महापुरुष हैं। उनकी समता संसार के राजा महाराजा और धनी कदापि नहीं कर सकते। जो मूर्ख और नासमझ हैं, वे ही विद्वानों के सामने एंठते और अभिमान करते हैं, जिनमें कुछ भी अक्ल है, वे विद्वानों के सामने अपने धनैश्वर्य का घमण्ड नहीं करते। महा मूर्ख ही इस तुच्छ और सदा दुःखदायी धन से फूलते और अपने तई सुखी मानते हैं।

छप्पय—हार सकत नहिं चोर, भोर निशि पुष्ट करत हित।
अर्थिन हूं कों देत, होत क्षण-क्षण में अगणित।
कबहूं बिनसत नाहिं, लसत विद्या सु गुप्त धन।
जिनके ये सुख-साज, सदा तिनको प्रसन्न मन॥
राजाधिराज प्रभु छत्रपति, ये एतो अधिकार लहि।
उनको निहार दृग फेरिबो, यह तुमको है उचित नहिं॥१६॥

16. Knowledge is a thing incapable of being stolen by thieves It is always beneficial to everybody. Imparted to those who seek for it, it invariably finds something added to it It is not destroyed even at the end of a Kalpa. O Kings, give up your pride in respect to those to whom this knowledge is their sole internal wealth Who would behave improperly to wards them.

अधिगत परमार्थान् पण्डितान्मावमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां,
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥ १७ ॥

हे राजाओ ! जिन्हें परमार्थ-साधन की कुञ्जी मिल गई है, जिन्हे आत्मज्ञान हो गया है, उनका आप लोग अपमान न कीजिये, क्योंकि उनको तुम्हारी तिनके जैसी तुच्छ लक्ष्मी उसी तरह नहीं रोक सकती, जिस तरह नवीन मद की धारा से सुशोभित श्याम मस्तक वाले मदोन्मत्त गजेन्द्र को कमल की डंडी का सूत नहीं रोक सकता ।

जिनका ईश्वर से सच्चा प्रेम हो जाता है, जो उसके अनन्य भक्त हो जाते हैं, जिनका उस पर सच्चा विश्वास हो जाता है अथवा जो आत्मा और ब्रह्म को जान जाते है, वे केवल ईश्वर या अपनी आत्मा मे ही मस्त रहते है । उन्हे ससारी धन वैभव तो क्या, त्रिलोकी का आधिपत्य भी तुच्छाति-

तुच्छ जँचता है। वे धन के लोभ से संसारी राजा महा-राजाओं और धनियों की खुशामद क्यों करने लगे ? जो आत्मानन्द में मग्न रहते हैं या अपनी अचल भक्ति से ईश्वर को अपना बना लेते है, उन्हें किस बात का अभाव रहता है ? अष्ट सिद्धि नव निधि उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती है महाकवि दाग ने कहा है:—

तेरी वन्दा नवाजी, हफ्त किशवर बख्शा देती है।
जो तू मेरा, जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा ॥

तेरी सेवा करने से सातों विलायतों का राज्य मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तो सारे संसार के अपना होने में क्या सन्देह ?

किसी बादशाह ने एक महात्मा से पूछा—"क्या तुम कभी मेरा भी खयाल करते हो ?" महात्मा ने जवाब दिया—"हाँ उस समय जबकि मैं ईश्वर को भूल जाता हूँ।"

शेखसादी ने कहा है:—

हर सु दवद ऑकसजे, दरे खेश बर आनद।
वाँरा बखवानद, व दरे कश न दवानद ॥

जिसे ईश्वर अपने द्वार से भगा देता है, वही घर-घर टुकड़े माँगता फिरता है, परन्तु जिसे वह अपने पास बुला लेता है, उसे किसी के भी द्वार पर जाने की जरूरत नहीं होती, अर्थात् जिनका ईश्वर से प्रेम हो जाता है; उन्हे आत्म ज्ञान

हो जाता है, वे धन और रोटी के लिये किसी की खुशामद नहीं करते। अज्ञानी ही जगत् की झूठी माया में फँसते हैं।

हमें इस मौके पर एक कहानी याद आ गई है। उसे हम अपने पाठकों के उपकारार्थ नीचे लिखे देते हैं—किसी राजा के एक मेहतर था। मेहतर ने एक दिन राजभण्डार में चोरी करने का विचार किया। आधी रात के समय, वह राजा के शयनागार के पास ही सेंध लगाने लगा। ठीक उसी समय रानी ने राजा से कहा—"मैं कितने दिनों से कहती हूँ, पर तुम बड़ी पुत्री की शादी नहीं करते।" राजा ने कहा—"उपयुक्त वर मिले बिना, मैं किसके हाथ कन्या समर्पण करूँ ?" जब रानी ने बहुत कहा-सुनी की, तो राजा ने मजबूर होकर कहा—"अच्छा, कल सवेरे ही मैं पास के तपोवन में जाऊँगा। वहाँ मुझे पहले ही, जो योगी मिल जायगा, उसी को अपनी कन्या और आधा राज्य दे दूँगा।" मेहतर ने राजा का यह संकल्प सुन लिया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अब वृथा परिश्रम क्यों करूँ ? चोरी करने आया हूँ। अगर किसी को पता लग गया और मैं पकड़ा गया, तो प्राण-नाश होने में भी सन्देह नहीं। जाऊँ, योगी का वेष बनाकर, तपोवन में बैठ जाऊँ; इस तरह अनायास ही राजकन्या और आधा राज मिल जायगा।" वह ऐसा स्थिर करके अपने घर गया और वहाँ योगी-वेश धारण

करके, रात मे ही, प्रभात न होने पर भी, राजा के आने की राह के किनारे ही, तपोवन मे बैठ गया। गजरदम सवेरे, ज्यो ही राजा तपोवन के करीब पहुँचे, वह समाधि लगा कर बैठ गया। राजा ने देखा, कि योगी गम्भीर ध्यान मे मग्न है। राजा उसे साष्टांग प्रणाम करके उसके पास ही बैठ गया। राजा ने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, पर महात्मा का ध्यान भङ्ग न हुआ। आवेश मे, बहुत देर के बाद, महात्मा ने आँखे खोली। राजा ने उसके पैरो मे गिर कर नगर मे चलने की प्रार्थना की। बहुत कुछ ना-नू के बाद, योगिराज ने राजा की बात मानली। राजा उन्हे, बड़े आदर के साथ, आगे करके, ले आया। राजमहल मे आने पर राजा ने, योगिराज को सिंहासन पर बैठा कर, उसके पैर धोये। रानी चँवर ढोरने लगी। कुछ समय बाद, राजा-रानी दोनो ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की— "भगवान्! हमारे एक परम सुन्दरी कन्या है। आपकी अनुमति पाने से, हम उस कन्या को और अपने आधे राज्य को श्रीचरण मे उत्सर्ग करना चाहते हैं।" मेहतर यह तमाशा देख कर मन-ही-मन विचारने लगा—मैंने केवल ढोंग से योगी का वेश धारण किया है—इतने से ही राजा रानी, मेरे पैरों मे गिर कर राजकन्या और आधा राज्य देने के लिये व्याकुल हैं। अगर मैं सच्चा योगी हो जाऊँगा, तो न जाने कितने राजा-रानी मेरे पदानत होंगे—कितनी राजकन्याएँ और कितने राज्य

मुझे मिलेंगे।" इस तरह विचार करते-करते उसका दिल बदल गया। उसने राजा और रानी की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी; और तत्क्षण सिंहासन से उतर कर, व्याकुलभाव से, भगवान् को पुकारता-पुकारता, वन को चला गया। फिर विषय उसका स्पर्श तक न कर सके। भक्ति का द्वार खुल गया। जीवन सार्थक हो गया। भगवान् की कृपा हो गई—अमावस्या का अन्धकार पूर्णिमा की रात मे परिणत हो गया। यह तो ज्ञान की प्रथमावस्था की बात है। जिन्हे पूर्ण ज्ञान हो जाता है, उनका तो कहना ही क्या ?

सच है; जिन पर जगदीश की कृपा हो जाती है, जिनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते है, जिनका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है, उनको संसारी धन-वैभव तुच्छ-से-तुच्छ जँचते है। ऐसे ईश्वर के सच्चे भक्तो और ज्ञानियों को जो प्रलोभनो में फँसाना चाहते है, वे उन मूर्खों के समान ही हैं, जो मदमत्त गजराज को कमलनाल से बाँधने का वृथा प्रयास करते हैं।

कुण्डलिया—पण्डित परमार्थीनको, नहिं करिये अपमान।
तृण-सम सम्पत को गिनै, बस नहिं होत सुजान॥
बस नहि होत सुजान, पटा झरमद है जैसे।
कमलनाल के तन्तु-बधे, रुक रहिहै कैसे ? ॥
तैसे इनको जान, सबहिं सुख शोभा मण्डित।
आदरसो बस होत, मस्त हाथी ज्यों पण्डित॥१७॥

17. Do not treat with disrespect the learned who have the highest objects of life within their reach Riches which are as worthless as a straw are no deterrent for them. The fibre of a lotus stalk can not restrain an elephant, the upper part of whose trunk is black with the marks of fresh *meda* fluid bespeaking the restiveness of his temper

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरांकुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥१८॥

अगर विधाता हंस से नितान्त ही कुपित हो जाय, तो उसका कमल-वन का निवास और विलास नष्ट कर सकता है; किन्तु उसकी दूध और पानी को अलग-अलग कर देने की प्रसिद्ध चतुराई की कीर्ति को स्वयं विधाता भी नष्ट नहीं कर सकता ।

दूध और जल को अलग-अलग कर देने की हंस में स्वाभाविक सामर्थ्य है । इस गुण के लिये हंस सुप्रसिद्ध है । अगर विधाता, किसी वजह से हंस से अप्रसन्न हो जाय; तो वह इतना ही कर सकता है, कि उसको कमल-वन के निवास और विलास से वंचित कर दे—उसे सकमल सरोवर में आनन्द न करने दे; पर उसे उसकी जन्म सिद्ध क्षीर और नीर के

बिलगाने की चतुराई से रहित नहीं कर सकता। मतलब यही है, कि किसी के स्वाभाविक गुण को नष्ट नहीं कर सकता।

मसल मशहूर है, "गौर रूप से तो अपना सुहाग ले, किसी का भाग्य नही ले सकती।" अगर कोई राजा-महाराजा या अमीर-उमरा किसी विद्वान् से नाराज हो जाय, तो उसे अपनी नौकरी से निकाल दे सकता है; बहुत करे तो अपनी दी हुई जागीर और जमीन-जायदाद छीन ले सकता है; उसे अपनी दी हुई पदवियो से महरूम कर सकता है: पर उसकी विद्या-बुद्धि और स्वाभाविक चतुराई कोई नही छीन सकता। दुनियवी राजा महाराजा तो क्या चीज हैं, स्वयं विधाता भी उसकी विद्या बुद्धि से उसे वञ्चित नही कर सकता। सर्वस्व नाश हो जाने पर भी विद्वान् के गुण नष्ट नहीं हो सकते; इसलिए विद्वानों को राजाओं और धनियो से भय करने और मन मे जरा भी निराश होने की आवश्यकता नही। राजाओ को भी, इस बात पर विचार करके, अपने मिजाज का पारा नीचा ही रखना चाहिये। विद्वानो को डराने, धमकाने और उनका अपमान करने का खयाल भी दिल मे न लाना चाहिये।

दोहा।

कोपित यदि विधि हस को, हरत निवास विलास।
पय पानी को पृथक् गुण, तासु सकै नहिं नाश ॥ १८ ॥

18. The God Brahma, if he becomes angry can only deprive a Hansa-bird of its residence in

a wood of lotus flowers or its enjoyment of the same, but he is powerless to rob that bird of its untainted and worldwide fame in having the power of separating milk from water when these two are mixed with one another

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं, हारा न चंद्रोज्ज्वला।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं, नालंकृता मूर्द्धजाः॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं, या संस्कृताधार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणंभूषणम्॥१९॥

बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों के हार, स्नान, चन्दनादि के लेपन फूलों के शृङ्गार और सँवारे हुए बालों से पुरुष का शोभा नहीं होती; पुरुष की शोभा केवल संस्कार की हुई सुन्दर वाणी से है; क्योंकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते है, किन्तु वाणी-रूपी भूषण सदा वर्त्तमान रहता है॥ १९॥

तात्पर्य्य यह है, कि और सब भूषण नाशमान हैं किन्तु वाणी-रूपी भूषण नाशमान नहीं, इसलिये और भूषण वाणी-रूप भूषण की बराबरी नहीं कर सकते। वाणी-रूपी भूषण सब भूषणों से उत्तम है।

और सब जेवर अमीरी के चोचले हैं, जब तक धन रहता है ये रहते हैं; जहाँ धन गया और ये भी गये। धन का क्या भरोसा? इस क्षण है, अगले क्षण न रहे। धन बिजली की चमक और बादल की छाया के समान चञ्चल है। जिन्होने

विद्याज्र्जन करके, अपनी वाणी को विशुद्ध और सुन्दर कर लिया है, वे वास्तव में रूपवान है। उनका रूप सदा एक सा रहेगा। जो लोग पढ़-लिख कर वाणी को विशुद्ध नहीं करते, तमीज और तहजीब नहीं सीखते; वे चाहे जितने गहने लाद लें, चाहे जितने खूबसूरत बन लें, पर निकम्मे हैं।

छप्पय।

कंकन छवि नहिं देत, हार उज्ज्वल नहिं सोहैं।
कर उबटन अस्नान, कुसुम नहिं मन को मोहैं॥
केतिक केस सँभार, नाहिं शोभा दें ऐसी।
वाणी मनहर लसै, एक सुन्दर मुख जैसी॥
जग और अभूषण सब गिरे, टूटें विनसे हैं सही।
पै वाणी जो है एक रस, शुभ भूषण बिगड़ै नहीं॥ १९॥

19 It is neither armlets nor (pearl) necklaces, bright as the moor nor bathing, nor (sandal-wood) plastering (of limbs), nor flowers, nor finely dressed hair that can add to the beauty of a man but it is only chastened speech that does so. All the other adornments are destructible but the ornament of speech is the real ornament.

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं, प्रच्छन्नगुप्तंधनं।
विद्या भोगकरी, यशःसुखकरी, विद्या गुरूणांगुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने, विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसुपूज्यते नहि धनं, विद्याविहीनः पशुः॥२०॥

विद्या मनुष्य का सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है; विद्या मनुष्य को भोग, सुख और सुयश की देने वाली है; विद्या गुरुओं की भी गुरु है, परदेश में विद्या ही बन्धु का काम करती है, विद्या ही परम देवता है, राजाओं मे विद्या का ही मान है, धन का नहीं। जिसमें विद्या नहीं, वह पशु के समान है ॥२०॥

निस्सन्देह विद्या मनुष्य का सर्वोपरि रूप है। विद्या कुरूपो को भी रूपवान करने वाली है। मनुष्य कैसा ही खूबसूरत और नौजवान क्यों न हो पर विद्या बिना उसकी खूबसूरती पलाश के फूल की तरह वृथा और निकम्मी है।

विद्या मनुष्य का गुप्त धन है, उसे चोर चुरा नही सकते, डाकू लूट नहीं सकते, राजा छीन नही सकता, भाई-बन्धु और कुटुम्बी बँटा नही सकते।

विद्या से विनय की, विनय से सुपात्रता की और सुपात्रता से धन की प्राप्ति होती है। धन को उत्तम कार्यों मे लगाने और सत्पात्रों को देने से धर्म की प्राप्ति होती है। निस्सन्देह विद्या— धन, धर्म, सुख और सुयश की देने वाली है। इसमें यह बड़ा भारी गुण है, कि यह महा नीच को भी राजा तक पहुँचा कर, उसे धन और मान से परिपूर्ण कर देती है!

संसार मे दो विद्या है –(१) शस्त्र-विद्या; और (२) शास्त्र-विद्या। पहली जवानी मे ही काम देती है, पर बुढ़ापे मे काम नहीं देती, उस अवस्था मे उल्टी हँसी कराती है;

किन्तु दूसरी—शास्त्र विद्या, सदा सर्वदा मनुष्य का कल्याण करती और अन्त काल तक आदर कराती है।

विद्या उपदेशको की भी उपदेशक और गुरुओ की भी गुरु है। विद्या से ही संशयो का नाश होता है और परोक्ष प्रत्यक्ष होता है। विद्या सबकी आँख है। विद्या-विहीन अन्धा है!

विपद्-मुसीबत और विदेश मे विद्या ही सच्चे बन्धु का काम करती है। आपत्तिकाल मे यह सच्चे मित्र की तरह सलाह और तसल्ली देती है। घोर विपद् में जब मनुष्य को अपने बचने की जरा भी उम्मीद नही रहती, तब यह अपने बल से अपने साथी का सहज मे छुटकारा करा लेती है। दुर्दिन में मनुष्य को माता-पिता, भाई बन्धु और अन्यान्य कुटुम्बी त्याग देते हैं, पर यह नही छोड़ती। जब मनुष्य की आत्मा शोकताप से जलने लगती है, तब यही सुधावारि सिंचन करके, उसमें शान्ति का संचार करती है। विक्टर ह्यूगो ने कहा है:—"संकट के दिनो में बुद्धिमान लोग पुस्तकों से ही शान्ति लाभ करते हैं।" † बहुत कहाँ तक कहे, विपद् मे इसके समान सच्चा मित्र और नही। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है:—

तुलसी साथी विपत्ति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥

---

‡ It is from books that wise men derive consolation in the trouble of life—*Victor Huego,*

पाश्चात्य विद्वानों ने भी विद्या की कम प्रशंसा नहीं की है। यङ्ग नामक एक विद्वान् ने कहा है—"विद्या चन्द्र-किरणों की तरह उत्तापरहित आलोक प्रदान करती है।" हारवे नामक एक विद्वान् कहते है "जिस तरह सूर्य हमारे पथ को आलोकित करता और हमे काम पर लगाता है; विद्या भी, ठीक सूर्य की तरह, हमारे पथ को आलोकित करती और हमें सत्कर्मों मे प्रवृत्त करती है।" चेष्टरफील्ड महोदय कहते है—"बुढ़ापे मे विद्या ही हमारा रक्षास्थल और आश्रय स्थान है।"

इसी तरह सभी देशो के विद्वानो ने विद्या महारानी का कीर्तिगान किया है। इन पंक्तियो के लेखक ने जीवन मे बहुत से परिवर्तन और उलट फेर देखे हैं; कितनी ही बार इसने धनियो के प्रायः सभी सुख उपभोग किये और कितनी ही बार इसके पास जल पीने तक को लोटा भी न रहा, कितनी ही बार अनेक बन्धुबान्धव, इस पर दया करके, इसके साथ रहे और कितनी ही बार सभी ने इसे त्याग दिया और यह अकेला निर्जन निर्जल स्थानो और बयाबाँ जंगलो मे भटकता फिरा। यह अपने अनुभव से कहता है, कि घोर दुर्दिन मे मनुष्य का विद्या देवी जैसा साथ देती है, सच्चे मित्र की तरह उत्तमोत्तम सलाहे देती है, परम गुरुओ की तरह अच्छे-अच्छे उपदेश देती है, अन्नाभावहीन होने पर उनकी व्यवस्था करती है, शोक-ताप से जलती हुई आत्मा को शान्ति

प्रदान करती है,—वैसा जगत् में कोई भी प्यारे से प्यारा नहीं करता। बनी-बनी के सभी साथी रहते हैं, बिगड़ी में सभी मनुष्य को त्याग देते हैं। उस समय भी विद्या अपने साथी को नहीं त्यागती। सारे संसार के विद्वान् यदि एक साथ मिल कर भी विद्या देवी की महिमा बखान करें, तो भी न कर सकेंगे, तब इस क्षुद्रातिक्षुद्र लेखक की क्या सामर्थ्य जो विद्या देवी के गुणों को बखान कर सके?

छप्पय।

छप्पय—विद्या नर को रूप, अधिक विद्या सुगुप्त धन।
विद्या सुख यश देत, संग विद्या सुबन्धु जन॥
विद्या सदा सहाय, देवता हू विद्या यह।
विद्या राखत नाम, लसत विद्या ही ते गृह॥
सब भाँति सबन सौं अति बड़ी, विद्या को कवि जन कहत।
शिवि विधि कहँ विद्या बस करत, नृपति न्याय विद्या चहत॥२०॥

20. Knowledge is the greatest beauty of a man and his most hidden treasure. It is the giver of all enjoyments, fame and happiness It is the teacher of teachers and serves the function of a relative in going to a foreign country. It is the greatest God. It is knowledge that is honoured by kings, not riches. A man without knowledge is like a beast.

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं, किमरिभिः क्रोधोऽस्तिचेद्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदिसुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।

कि सर्पैर्यदि दुर्जनाः, किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडाचेत्किमुभूषणैः, सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥२१॥

यदि क्षमा है तो कवच की क्या आवश्यकता ? यदि क्रोध है, तो शत्रुओं की क्या जरूरत ? यदि स्वजातीय हे, तो अग्नि का क्या प्रयोजन ? यदि सुन्दर हृदय वाले मित्र हैं, तो आशुफलप्रद दिव्य औषधियों से क्या लाभ ? यदि दुर्जन है, तो सर्पों से क्या ? यदि निर्दोष विद्या है, तो धन से क्या प्रयोजन ? यदि लज्जा है, तो जेवरों की क्या जरूरत ? यदि सुन्दर कविताशक्ति है, तो राजवैभव का क्या प्रयोजन ? ॥ २१ ॥

जिस मनुष्य में क्षमा रूप उत्तम गुण है, उसे अपनी रक्षा की क्या चिन्ता ? क्षमा हजार कवचों का एक कवच है। जो तलवार चलाने वाले के सामने अपनी गर्दन नीची कर देता है, उसे कौन मार सकता है ? क्षमाशील के आगे सबका सिर नीचा हो जाता है, उसका कोई शत्रु नहीं। जो क्रोधजित् है, उसका सदा मगल है।

जिस मनुष्य में क्रोध है, उसे शत्रुओं का क्या अभाव ? क्रोधी को शत्रुओं का घाटा नहीं। क्रोधी का सदा अमङ्गल होता है। क्रोध के वश होकर. मनुष्य अपने विनाश का कारण आप हो जाता है। क्रोधी को कार्य्याकार्य्य का विचार नहीं रहता। क्रोधान्ध मनुष्य गुरुजन के भी प्राणनाश और अपमान पर उतारू हो जाता है। क्रोधी आत्महत्या को भी

घोर पाप नहीं समझता। क्रोध से क्या-क्या असंगत नहीं होते? दुर्जन दूरस्थ शत्रुओं के जीतने से कोई शूर नहीं हो सकता; जो अन्तःशत्रु क्रोध को जीत ले, वही सच्चा रिपुञ्जय है। जो क्रुद्ध के ऊपर क्रोध नहीं करता, वह अपने तईं और दूसरों के तईं बड़ी भारी विपद् से बचा सकता है। बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिबल से क्रोध के जीतने में ही अपनी तेजस्विता समझते है। क्रोध के परित्याग करने में जो तेजस्विता प्रकट होती है, उसको मूर्ख नहीं समझ सकते। क्रोधविहीन प्रशान्त चित्त के सुख का आस्वादन अशान्त लोग नहीं कर सकते। विधाता ने मानव-संहार के लिये ही मनुष्य के मन में रजोगुण-स्वरूप जिस क्रोध की सृष्टि की है, केवल उसी के द्वारा जीवों का संहार होता है। यदि हिंसा करने से प्रतिहिंसा करनी पड़े, दुःखित होने पर दुःख दिया जाय, तो इस प्रणाली से प्रतिहिंसा की अनुहिंसा में समस्त जगत् ही नष्ट हो जाय। क्षमा के द्वारा पृथ्वी का जो अभ्युदय हुआ है, वह तब नयनगोचर न होगा। यदि क्षमा गुण न होता, तो भूतधात्री धरित्री की भूतसृष्टि ही लोप हो जाती। क्षमा से ही धर्म की शान्ति होती है। क्षमा विहीन मनुष्य अपने दोनो लोक नष्ट कर देता है। क्षमाशील मनुष्य इहलोक और परलोक की रक्षा करता है। धर्मनन्दन महात्मा युधिष्ठिर, वनवास में, द्रुपद-तनया महारानी द्रौपदी को, यह उपदेश देकर कहते हैं—"हे साधुशीले! यदि मुझे स्वधर्म परित्याग करना

पड़े तो भी, क्षमा को परित्याग करके क्रोध का आश्रय नहीं लूँगा।" पाठको! क्षमा और क्रोध के सम्बन्ध में धर्मराज ने जो अनमोल बातें कही हैं, उन्हें मनुष्य मात्र को अपने हृदय-पट पर अङ्कित कर लेना चाहिये। निस्सन्देह, इस जगत् में, क्षमा से बढ़ कर मनुष्य की रक्षा करने वाला और क्रोध से बढ़ कर नाश करने वाला और दूसरा नहीं है। क्रोध और क्षमा पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने केवल चार ही पंक्तियों में बहुत-कुछ कह डाला है। पाठक उनकी भी सुधा-समान वाणी का आनन्द लेकर उपदेश ग्रहण करें:—

> दुर्जन वदन कमान सम, वचन विमुञ्चत तीर।
> सज्जन उर वेधत नहीं, क्षमा-सनाह शरीर॥
> कौरव-पाण्डव जानिबो, क्रोध-क्षमा को सीम।
> पाँचहि मारि न सो सके, सबै निपाते भीम॥

दुष्टों के मुख कमान की तरह होते हैं। उनसे वचन रूपी तीर—वाग्बाण छूटा करते हैं; पर वे सज्जनों के हृदय में नहीं लगते, क्योंकि सज्जन क्षमा रूप कवच पहने रहते हैं।

कौरव और पाण्डव क्रोध और क्षमा की सीमा थे। दुर्योधनादि क्रोध की मूर्ति और धर्मराज क्षमा के अवतार थे। इसी से सौ कौरव-भाई मिल कर भी पाँच पाण्डवों को न मार सके, किन्तु अकेले भीम ने सौ को मार डाला।

दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण प्रभृति दुष्टों ने पाण्डव-भाइयों को क्या-क्या कष्ट नहीं दिये ? भीमसेन को विष देकर नदी मे डुबा दिया। लाक्षागृह में उनके नष्ट करने को आग लगवादी। ये दुष्ट भरी सभा में पाञ्चाली को चोटी पकड़ कर ले आये और उसे नङ्गी करके उसकी लाज लूटने लगे; पर लज्जा रक्षक भगवान् कृष्ण ने कृष्णा की लाज रखली। कपट के जूए में उन्होंने पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर लिया। भीम को बैल और स्वयं धर्मनन्दन को कायर प्रभृति क्या-क्या घृणित और कठोर वाक्य उन्होंने नहीं कहे ? पर महात्मा युधिष्ठिर ने क्रोध को दबा कर, क्षमा से ही काम लिया। इसी का नतीजा था, कि अल्प-संख्यक पाण्डव बहुसंख्यक कौरवों के मुक़ाबिले में विजयी हुए। क्षमा के प्रताप से ही विजयलक्ष्मी ने उनके गले में विजयमाल डाली। इसकी वजह यही है, कि क्षमा शील के साथी स्वयं भगवान् होते हैं। महात्मा कबीर ने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

जहाँ दया तहँ धर्म, लोभ जहाँ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

जनकपुर में, रामचन्द्रजी के शिव-धनुष तोड़ने पर, क्षत्रिय-कुलनाशक महा पराक्रमी परशुराम जी ने, क्रोध के परवश हो, रघुकुल तिलक रामचन्द्र जी को क्या क्या कहनी-अनकहनी नहीं सुनाई ? पर रामचन्द्रजी ने क्षमा के सिवा क्रोध का

नाम भी न लिया। शेष मे, परशुरामजी को ही परास्त हो क्षमा-प्रार्थना करनी पड़ी। क्षमाशील की ही सदा जय होती है, इसमे जरा भी सन्देह नही। महापुरुषो मे क्षमा स्वभाव से ही होती है।

एपिकटेटस नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी कहा है—"क्षमा प्रतिशोध—बदलने से भी कही उत्तम है; क्षमा सज्जन-स्वभाव का लक्षण है और प्रतिशोध दुर्जनता का।" अँगरेजी मे एक कहावत है—"क्षमा सर्वोत्तम प्रतिशोध है।" जर्मनो मे भी एक कहावत है—"क्षमा किया जाने वाला, क्षमा करने वाले को कभी नहीं भूलता।" अँगरेजो के धर्म-शास्त्र "बाइबिल" मे लिखा है—"क्रोध मूर्खों के हृदय मे निवास करता है।" बहुत लिखना व्यर्थ है—महात्मा, सज्जन या बड़े आदमियो मे क्रोध नहीं होता। वे क्रोध से सदा दूर रहते है और सदा क्षमा से अपनी और जनता की रक्षा करते है। क्रोध से ही कलह होता है और कलह से नाश होता है। कलह से ही छप्पन करोड़ यादवों का नाश हुआ। कलह से ही भारत को गारत करने वाला महाभारत हुआ। कलह से ही सन् १९१४ का विश्व व्यापी महासमर हुआ। यदि भूतपूर्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलयम और आस्ट्रिया-नरेश क्रोध शत्रु का परित्याग करके क्षमा से काम लेते, तो पृथ्वी का इतना धन-जन क्यो क्षय होता? अपनी अङ्गुली पर सारी पृथ्वी को नचाने वाले कैसर को स्वयं छोटे से राज्य हालैण्ड की शरण क्यों लेनी

पड़ती ? हमने अपनी आँखों से देखा है, कि कलह के मारे अनेक फलती-फूलती गृहस्थियाँ बात-की-बात में नेस्तनाबूद हो गईं।

यदि मनुष्य कुछ भी समाज-विरुद्ध या लोक-विरुद्ध काम करता है, तो स्वजन या स्वजातीय लोग उसकी निन्दा करते हैं। उससे मनुष्य के दिल मे दाह और सन्ताप होता है—हृदय मे अहर्निश आग-सी जलती रहती है, इसी से कहा है, कि स्वजनो के रहने पर आग की क्या जरूरत ?

यदि मनुष्य का सच्चा हितकारी मित्र हो, तो वह सदा सुखी रहता है। मित्र सदा अपने मित्र का हित ही करता है। इस जगत् मे मित्र से बढ़कर मनुष्य का और हितकारी नहीं। माता-पिता और मित्र—ये तीन ही स्वभाव से हितकारी होते हैं, और लोग तो किसी मतलब से हित करते है। मित्र ही दुर्दिन मे मनुष्य की हर तरह से सहायता करता है, उसकी विपद् में छाया की तरह उसके साथ रहता है। जिसके शुद्धचित्त, दाता, सत्य, शील, सरल, उदार, अनुरागी, शूर, सुख-दुःख और हर्ष शोक मे समान रहने वाला मित्र है, वह सच्चा भाग्यवान है। उसे इस जगत् में क्या दुःख है ? वह सदा सुखी और आरोग्य है। उसके रोग, शोक और दुःखो की वही अव्यर्थ महौषधि है।

इस जगत् मे दुर्जनो से बढ़ कर मनुष्य को कष्ट देने वाले सर्प भी नही हैं। सर्प एकदम से मनुष्य को मार डालता है, पर दुर्जन छिद्र ढूँढ़ कर और घुला-घुला कर मारते

है। हाथी मनुष्य को छूकर मारता है; साँप काट कर या सूँघ कर मारता है; पर दुष्ट हँसते-हँसते प्राणनाश कर देता है। हम तो यही कहेंगे, कि दुर्जन से कभी पाला न पड़े। जिसके पीछे दुर्जन लगे हैं, उसके पीछे भयङ्कर भुजङ्ग लगे है। कहा है:—

खलहु सर्प इन दुहुन में, भलो सर्प खल नाहिं।
सर्प डसत है काल में, खल जन पद-पद माहि॥

यदि मनुष्य मे निर्दोष विद्या है, तो धन की क्या जरूरत? क्यो कि विद्या स्वयं अक्षय और असामान्य धन है। विद्वान को कहीं किसी तरह का अभाव नही। विद्वान् जहाँ भी चला जाता है, वहीं उसका सत्कार होता है। विद्वान् को बयावाँ जङ्गल मे भी मङ्गल है।

यदि मनुष्य में सुकविता करने की भी शक्ति है तो उसे राज्य-वैभव की आवश्यकता नहीं। कवियों का राजाओं मे ही मान होता है। राजाओ को भी उनकी सबसे अधिक जरूरत रहती है; क्यो कि उनके बिना उनके सुयश-सौरभ को दिग्दिगन्त मे कौन फैला सकता है?

जिसमें लज्जा है, जो असत्य कर्मों से लजाता है, वह रूपवान् है और सबका गुरु होने योग्य है। वह महा-तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशित है; किन्तु जो बुरे कामो से नहीं लजाता, बेहयाई का बुर्क़ा ओढ़ लेता है, वह महा

नीच है। ऐसा कौन है, जिससे कोई न कोई बुरा काम न हो जाय; पर जो अपने किये पर लज्जित होता है, मन-ही-मन अनुताप और पश्चाताप करता है, वह निस्सन्देह श्रेष्ठ पुरुष है। ऐसे को परमात्मा निश्चय ही क्षमा कर देता है। लज्जा मनुष्य का सच्चा भूषण है। जिसमें लज्जा है, उसे और जेवरों की जरूरत नहीं। यूरोप विजयी महावीर नेपोलियन ने भी कहा है,—"प्रतिष्ठान्वित जीवन का सर्वोत्तम आभूषण लज्जा और नम्रता है।"

छप्पय।

कवच न चहिये ताहि, क्षमा जो चित्त मे राखत।
कहा राजकुलीं ताहि, सुकविता सुख जो भाषत॥
क्रोध भये अरि कहा जाति नहीं अनलहि चाहत।
औषध तिनको व्यर्थ, जहाँ मन्मित्र निवाहत॥
अरु धन संचय फलहीन, जो विद्या होय अदूषणौ।
लज्जा संयुक्त जो होय, तेहि कछू न चहिये भूषणौ॥२१॥

21. If there is forgiveness in a man, where is the need for an armour? If he has an angry temper, he need not go far to seek for other enemies. If there is the pride of caste, where is the need for fire, (as his own pride is sufficient to set fire to his heart in the shape of a feeling of hatred for those inferior to him in caste)? If one has good friends, he does not stand in need of supernatural drugs. If a man is surrounded by wicked persons, he need not seek for

(more poisonous) snakes. If there is fair and faultless knowledge, what is the use of (any other sort of) wealth ? If a person possesses modesty, why should he seek for (better) ornaments ? If a man is a good poet, he need not wish for a kingdom

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता,
ये चैवं पुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥२२॥

जो अपने रिश्तेदारों के प्रति उदारता, दूसरों पर दया, दुष्टों के साथ शठता, सज्जनों के साथ प्रीति, राज-सभा में नीति, विद्वानों के आगे नम्रता, शत्रुओं के साथ क्रूरता, गुरुजनों के साथ सहनशीलता और स्त्रियों में धूर्तता या चतुरता का बर्ताव करते हैं,—उन्हीं कलाकुशल नरपुङ्गवों से लोक मर्यादा या लोक स्थिति है; अर्थात् जगत् उन्हीं पर ठहरा हुआ है ॥ २२॥

मनुष्य का कर्त्तव्य है, कि वह अपने बन्धु-बान्धवों और नातेदारों के प्रति उदार व्यवहार करे—अपनी सामर्थ्य-भर उनका पालन-पोषण करे अथवा समय-समय पर—जरूरत होने से—उनकी धनधान्यादि से सहायता करे। जो मनुष्य, समर्थ होने पर भी, अपने बन्धु-बान्धवों को मदद नहीं देते, उनके दुःख-दर्द में आड़े नहीं आते, वे जीते हुए ही मृतक के

समान है। जिनसे अपने घर वालों और रिश्तेदारों का ही भला न हो, उनका इस जगत् मे जन्म लेना ही वृथा है। "शुक्र-नीति" में लिखा है—"साध्वी स्त्री, पिता की स्त्री—माता, बालक, पिता, विधवा कन्या, पुत्र-वधू बहिन, भाई, भौजाई, मौसी, भूआ, नाना, सन्तानहीन गुरु, मामा और भाञ्जा—इन सबका अपनी सामर्थ्यानुसार पालन करना चाहिये।" 'महाभारत' मे कुटुम्ब को न पालने वाला, शत्रु को न दबानेवाला, मिले हुए पदार्थ की रक्षा न करने वाला, सदा स्त्रियों के वश मे रहने वाला, सदैव ऋणग्रस्त रहने वाला, महा दरिद्र, मँगता, गुणहीन और शत्रु के आधीन रहने वाला,—ये सब मुर्दे कहे हैं। अपना पेट कौन नहीं भर लेता ? अपना पेट तो कव्वे और कुत्ते भी भर लेते है। आदमी वही है, जिससे अपने कुटुम्बियो और गैरो का पालन-पोषण होता हो। महात्मा विदुर ने कहा है -"जो दान से मित्रों को, पराक्रम से शत्रुओ को और खान पान तथा वस्त्र-आभूषण प्रभृति से कुटुम्बियो को जीतता है, उसी का जीना सफल है।" एक अँगरेज विद्वान् ने भी कहा है—जो मनुष्य अपने प्रियजनों के लिये जीता है, उनके लिये परिश्रम करता और कष्ट सहन करता है वह ईर्षा करने योग्य है "हितोपदेश" में भी लिखा है:—

जीविते यस्य जीवन्ति, विप्रा मित्राणि बान्धवा।
सफलं जीवितं तस्य, आत्मार्थे को न जीवति ?

जिसके जीने से ब्राह्मण, बन्धु-बान्धव और मित्र जीते है, उसका ही जीना सार्थक है। अपने लिये कौन नहीं जीता ?

संसार में दया के समान और गुण नहीं; दया के समान और धर्म्म नहीं। किसी प्राणी को कष्ट न देना और उसके दुःख को अपने दुःख के समान समझ कर, दुःख दूर करने की चेष्टा करना ही दया की साधारण परिभाषा है। महात्मा बुद्ध ने संसारियो के कष्ट से ही पानी-पानी होकर, लोकोपकारार्थ, युवावस्था मे ही, अपनी युवती स्त्री और शिशु—पुत्र तथा राज-पाट को छोड़, वन मे जाकर, घोर तपश्चर्या करके, अपना शरीर सुखा डाला। उन्होने ही कहा है—"जो मनुष्य जीवित प्राणियों को दुःख देता है, वह आर्य्य नहीं है; किन्तु जो समस्त प्राणियो पर दया-भाव रखता है, वही आर्य्य पुरुप है।" चीनी महात्मा कन्फ्यूशियस ने कहा है—"मनुष्य को दयालुओ के ही पड़ौस मे बसना चाहिये। जो दयालु और चिन्ता रहित है, वही श्रेष्ठ पुरुप है।" महात्मा शुक्राचार्य ने कहा है—"दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी-इन चारो से बढ़ कर और वशीकरण नहीं है। कीड़े-मकोड़े और चींटियो पर भी, अपने समान समझ कर, दया करनी चाहिये। उपकार-योग्य शत्रु का भी उपकार करना चाहिये। दरिद्री का दारिद्र्य मिटाना चाहिये और शोकार्त्त का शोक दूर करना चाहिये।" किसी महापुरुप ने कहा है—"यदि मुक्ति की इच्छा है, तो विपयों को विपवत् त्यागो और

सहन-शीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाई को अमृत की तरह पीओ।" क्या उत्तम उपदेश है? कबीरदास ने भी कहा है—

दया-भाव जानै नहीं, ज्ञान कथै बेहद।
ते नर नर्कहि जायँगे, सुनि-सुनि साखी शब्द॥
दाया दिल मे राखिये, तू क्यों निरदय होय?
साँई के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय॥

राज-सभा में मनुष्य को नीतिपूर्वक ही वर्तना चाहिये। राजाओं के सारे काम नीति से होते हैं। प्रजापालन और दुष्टों का नाश—इसमें नीति की ही जरूरत है और यही राजाओं का काम है। इसीलिये वहाँ नीतिज्ञों का मान होता है। इसके सिवा राज [illegible] विनीत भाव से रहना चाहिये।

दुष्ट के साथ मनुष्य को नम्र व्यवहार करना चाहिये। दुष्ट के साथ नम्र व्यवहार करना—दुष्ट को सिर चढ़ा कर आफत मोल लेना है। सरल व्यवहार वाले को दुष्ट कदम-कदम पर तंग करते हैं। तुलसीदास ने कहा है—

नीच चंग-सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकाश॥

ते = वे। दाया = दया। निरदय = बेरहम। साँई = मालिक, ईश्वर। कीरी = चींटी। कुँजर = हाथी। दोय = दोनों। चंग = पतङ्ग। महि = जमीन।

नीच उस पतङ्ग के समान होते है, जो ढील देने से जमीन-पर गिर पड़ती है, और खीचने से आकाश में चढ़ती है। अगर दुष्टो को खींचे रहोगे, तो वे डरते रहेगे; अगर उनसे सरल व्यवहार करोगे, तो वे सिर पर चढ़ कर अनेक उपद्रव करेगे।

शेखसादी ने कहा है—"दुष्टो पर दया करना, सज्जनो पर अत्याचार करना है। अत्याचारियो को क्षमा प्रदान करना, अत्याचार पीड़ितो पर अत्याचार करना है। अगर तुम कमीनो पर मिहरबानी करोगे तो वे तुम्हारी हिमायत से अधिक अपराध करेंगे और तुमको उनके अपराधों का भागीदार या हिस्सेदार बनना होगा। क्षमा करना बहुत अच्छा है, पर दुर्जनो के घावों पर मरहम लगाना भला नहीं। साँप की जान बचाने वाला नहीं समझता कि, वह आदम की औलाद—आदमी को हानि पहुँचावेगा।

चाणक्य ने कहा है—"उपकारी के प्रति उपकार करना चाहिए। मारने पर मारना अपराध नहीं और दुष्टता करने पर दुष्टता करना अनुचित नहीं।"

महात्मा विदुर ने कहा है—"जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। दुष्ट के साथ दुष्टता और सज्जन साथ सज्जनता करनी चाहिए।"

"गुलिस्ताँ" मे लिखा है—"कमीना अच्छा व्यवहार करने नहीं समझता। ऐसा करने से उसका घमण्ड और भी बढ़

जाता है। जो तुम पर दया करे, तुम अपने तईं उसके चरणों की धूलि समझो, जो तुम्हारा अपकार करे, उसकी आँखों में धूल झोंक दो। धूर्त्त के साथ सभ्यता से बात न करो, क्योंकि मोर्चा या जङ्ग लगा हुआ लोहा रेती से साफ नहीं होता।"

सारांश यह, दुष्ट के साथ दुष्टता, शठ के साथ शठता और कुटिल के साथ कुटिलता करने में ही भलाई है। इस जगत् की रीति ही ऐसी है, कि सीधे को सभी खा जाना चाहते हैं। राहु भी पूर्ण चन्द्र को ही ग्रसता है; द्वितीया या दूज के टेढ़े चाँद को नहीं ग्रसता। असल बात यह है कि, जैसे के साथ तैसा ही वर्ताव करना चतुराई है। किसी समय इन पंक्तियों का लेखक सभी के साथ अत्यन्त विनीत व्यवहार करता था। दुर्जन और सज्जन सभी इसके सामने समान थे। इस भयङ्कर भूल से इसे बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। किन्तु जब इसने दुष्टों के साथ कुटिलता का व्यवहार किया तो, इसका पीछा छूट गया।

जिस तरह दुष्टों के साथ कुटिलता का बर्ताव करना चाहिये, उसी तरह विद्वानों के साथ सदा नम्रता का बर्ताव करना चाहिये। उनसे प्रत्येक काम में गर्वरहित व्यवहार करना चाहिये। जो बुद्धिमान विद्वानों का आदर-सत्कार करते हैं, उनके सामने विनीत रहते हैं, तमीज—तहजीब और अदब-कायदे से बोलते-चालते हैं, उनकी हर तरह खातिर-तवाजा करते हैं; विद्वान् उनसे सन्तुष्ट रहते हैं और वे उनसे

फायदा उठाते है। सच्चे विद्वान् आदर-सम्मान, सिधाई-सच्चाई और नम्रता से ही वश मे होते है, इसमे सन्देह नहीं, पर हमारी पहले लिखी हुई बात को कभी न भूलना चाहिये, कि जो विद्वान सज्जनो के से काम करे, उनके साथ ही विनीत व्यवहार करना चाहिये; जो विद्वान् दुर्जनो के से काम करे, उनसे भूल कर भी सरल व्यवहार न करना चाहिये।

शत्रुओ के प्रति शूरता का व्यवहार करने मे ही भलाई है। जो शत्रुओ के मध्य में पराक्रम से काम नहीं लेता, उनसे दबता है, उनसे भय खाकर पीछे हटता है, उसे शत्रु मार लेते है, अतः शत्रु को सदा दबाना चाहिये, उससे दबना न चाहिये।

प्रीति सदा सज्जनो के साथ करनी चाहिए। सज्जनो के साथ प्रीति करने से सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती और शोक-ताप तथा दुःखो का नाश होता है। सज्जनो की प्रीति टूटने पर भी नहीं टूटती—टूट जाने पर भी, कमल-नाल के सूत की तरह कुछ-न-कुछ सम्बन्ध बना ही रहता है। वे जिसे एक बार अपना कर लेते हैं, उसे दोष होने पर भी निबाहे ही जाते हैं—वे जिसे अङ्गीकार कर लेते है, उसे नही त्यागते। शिवजी ने विष को और शेष जी ने पृथ्वी को आज तक नहीं त्यागा। सज्जन आम के वृक्ष के समान होते हैं, जो पत्थर मारने पर भी

फल देते हैं; अथवा तरु के समान होते हैं, जो अपने काटने वाले पर भी छाया ही करता है। सज्जनों की गाली भी भली और दुर्जनो की तारीफ भी भली नहीं। श्रवण के पिता ने राजा दशरथ को श्राप दिया, पर वह आशीर्वाद के रूप में फला। इसी से कहा गया है कि प्रीति सज्जनों के साथ करनी चाहिये। सज्जनो की प्रीति मे जो आनन्द और सुख है, उसे काठ की लेखनी से लिख कर बताना असम्भव है।

माता-पिता, बड़े भाई और गुरु—इनको गुरुजन कहते है। चतुरो को इनकी कड़ुवी बातो को भी अमृत की तरह पी जाना चाहिये। संसार में मीठी बातो के कहने वाले बहुत, पर मीठी और यथार्थ हितकारी बात के कहने-वाले विरले ही हैं। माँ-बाप और गुरु जो कुछ कहते है, वह प्रायः हित कामना से ही कहते हैं। इसीलिये सभी देशो के शास्त्रकारो ने गुरुजनों की आज्ञा पालन करने की आज्ञा दी है; रामचन्द्रजी ने पिता की आज्ञा से राज्य वैभव त्याग कर वनवास किया। ऐसा उदाहरण भारत के सिवा और किसी भी देश मे नहीं पाया जाता। परशुरामजी ने पिता यम-दग्नि की आज्ञा से माता के प्राण नाश कर दिये। भीष्म पितामह ने, अपने पिता शान्तनु के सुख के लिये, सांसारिक सुख जन्म भर के लिये त्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। राजा ययाति के छोटे पुत्र ने अपने पिता की इच्छा पूरी करने

के लिये, अपनी जवानी उन्हें दे दी। हमारे यहाँ ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। महात्मा गोथे ने कहा है—"उत्तम उपदेश को ग्रहण करो और वृद्धों का सब से अधिक सम्मान करो।" शेक्सपियर 'किंग लियर' मे लिखा है—"माता-पिता की आज्ञा पालन कर; अपने वचन को पूरा कर; कसम न खा ....।"

माता-पिता की आज्ञा का पालन करना सन्तान का परम धर्म है; पर कहीं-कहीं ऐसे मौके भी आ जाते हैं, जहाँ इनकी आज्ञा का पालन करना अनुचित हो जाता है। प्रह्लाद को अपने पिता की आज्ञा के विरुद्ध काम करने में ही भलाई दीखी और उसकी वह बात स्वयं भगवान् को भी पसन्द आई। अधर्म्मी और अत्याचारी पिता की आज्ञा उल्लंघन करने मे दोष नहीं। विशेष कर देश और धर्म्म के लिये, पिता-माता की भी आज्ञा भंग की जा सकती है; पर यह बात, छोटे-छोटे बालकों को नहीं, जवानो को लिखी गई है; क्योंकि सभी प्रह्लाद नहीं होते। पूर्णवयस्क हो जाने पर, स्वयं सोच-समझ कर ही काम करना चाहिये। अन्ध-भक्ति से गुरुजनो की राय पर चलने से बाज-बाज औकात भयानक आफतों का सामना करना पड़ता है। इन पंक्तियों का लेखक, कोई २२ साल की उम्र तक, अपने पिता की बात आँख बन्द करके मानता था। सच्ची बात तो यह है कि वह अपने पूज्यपाद का उचित से अधिक भय करता था।

उन्होने इसे एक काम पर, इसकी पूर्ण अनिच्छा होने पर भी, लगा दिया और स्वयं ऐसी आज्ञा और नसीहते दीं, कि उनकी वजह से इसने २४ साल तक वह-वह आपदायें भोगी, जिनके सुनने से पत्थर का भी कलेजा दहले बिना न रहे। सच तो यह है, इसकी सारी जिन्दगी ही खराब हो गई। भला हो, महामहिमान्वित् श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड और आनरेबिल मिष्टर गोरले सी० आई० ई०, आई० सी० एस० का, जिन्होने दयासिन्धु दीनबन्धु की प्रेरणा से इसका संकट दूर करके, शेष जीवन सुख-शान्तिमय कर दिया। मेरे कहने का यह मतलब नहीं, कि लड़को को अपने गुरुजनो की आज्ञा न माननी चाहिये--अवश्य माननी चाहिये; उनकी परमात्मा के समान भक्ति और सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिये; पर अपनी निजी बातो मे, पूर्ण वयस होने पर, समझ पक जाने पर, अपनी विचार-शक्ति से भी काम लेना चाहिये। इन कामो में अपने कॉन्शैन्स—अपने अन्तरात्मा की बात पर चलना सदा सुखदायी है। मैंने, पिता जी की आज्ञा के मुकाबले में अन्तरात्मा की बात नहीं मानी, इसी से मुझे घोर विपत्तियाँ झेलनी पड़ी।

स्त्रियो के सम्बन्ध मे हम इसी पुस्तक के पृष्ठ ३-७ मे लिख आये हैं, कि ये स्वभाव से ही परले सिरे की चतुरा और मायाविनी होती है। यो तो वे चतुर-से-चतुर को भी नचा सकती है; पर यदि कोई निरा भोंदू उनके हाथ मे आ जाता है,

तब तो वे वह खेल खेलती हैं, जिनका क्या कहना ? जो पुरुष इनकी चाल और चालाकियों से जानकारी रखते हैं और इनको परखते रहते हैं एवं समयानुसार यथोचित बर्ताव करते है, वे ही संसार मे सुख पाते है । महाराजा भर्तृहरि स्वयं पिंगला से किस तरह ठगे गये, यह इसी शतक के आरम्भ के पृष्ठ पढ़नेवालो से छिपा नहीं है। मेरा भी कुछ अनुभव है, उससे यही कहना पड़ता है, कि इनकी तारीफ मे इस पुस्तक के दूसरे श्लोक के नीचे, जो शास्त्रकारो के वचन उद्धृत किये गये हैं, वे नितान्त सच है, पर मै यह हरगिज नहीं कहता, न कह ही सकता हूँ कि सभी देवियाँ वैसी ही होती है। लेकिन इसमे शक नहीं, कि चन्दन वन-वन मे नहीं होता और साधु पुरुष सर्वत्र नहीं होते; यानी सती देवियाँ और सज्जन पुरुष कम ही होते है, पर होते अवश्य हैं। जिन्होने पूर्व जन्म मे पुण्य किये है, जिन्होंने घोर तपश्चर्या की है, उन्हे ही वे मिलते है ।

जिन पुरुषरत्नो मे स्वजनों में उदारता, गैरो मे दयाभाव, दुष्टो के प्रति कुटिलता, सज्जनो में प्रीति प्रभृति उत्तमोत्तम गुण होते हैं, वे ही इस ससार के सच्चे स्तम्भ है, उन पर ही यह संसार ठहरा हुआ है। उनके बिना लोक मर्यादा अथवा स्थिति नहीं। प्रत्येक सुखाभिलाषी को इन उत्तम गुणो को ग्रहण करना चाहिये।

छप्पय ।

सज्जन सों हित-रीति, दया परजन सो आपहु ।
दुर्जन सों शठभाव, प्रीति सन्तन-प्रति राखहु ॥
कपट खलन सों, विनय राखौ बुधजन सो ।
क्षमा गुरुन सों राख, शूरता बरीगण सों ॥
अरु धूर्तता राखि त्रियन सो, जो तू जग वसिवो चहै ।
अति ही कराल कलिकाल में, इन चालन सों सुख लहै ॥२२॥

22. Generosity for one's relatives. kindness for others, rigorous treatment for the wicked, love for the virtuous, judicious behaviour for Kings, respect for the learned, boldness for one's enemies forgiveness for elder and cleverness for women are the qualities, which, if a man possesses them, make him famous in the world.

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? ॥२३॥

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य सींचती है, सन्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो, सत्संगति मनुष्य से क्या नहीं करती ? ॥२३॥

इसका खुलासा अर्थ यह है, कि सत्संगति से बुद्धि की मन्दता नाश होती है, बुद्धि तीव्र होती है; सत्य बोलने मे अनुराग होता है; सम्मान बढ़ता है; पाप नाश होते हैं; चित्त प्रसन्न रहता है और हर तरफ सुयश फैलता है। ऐसी कोई बात ही नहीं जो सत्सङ्गति से न हो।

हितोपदेश मे लिखा है—

सत्सङ्गः केशवे भक्तिर्गङ्गाम्भसि निमज्जनम्।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत्॥

सज्जनो का संग, कृष्ण की भक्ति, निर्मल गङ्गाजल मे स्नान—इस असार संसार मे ये तीन ही सार समझे जाते है।

संसार के शोक-ताप से जलने वाले के लिये स्त्री पुत्र और सत्संगति ही शान्ति देने वाले है। तीर्थ समय पर फल देता है; पर सज्जनो की संगति का फल शीघ्र ही मिलता है। इस मृगतृष्णा के समान मिथ्या संसार को क्षण-विध्वंसी समझ कर, धर्म और सुख की प्राप्ति के लिये, सत्संगति करनी चाहिये। इस संसार रूपी कड़वे वृक्ष के दो ही फल है.— (१) मधुर भाषण, और (२) सज्जनो का संग।

सत्संग की महिमा अपार है। जिस तरह लोह और पारस के मिलने से लोह भी सोना हो जाता है; उसी तरह सत्संग से नीच पुरुष भी महापुरुष हो जाता है। सप्त ऋषियों के सत्संग से ही नित्य हत्या करने वाला व्याध महामुनि हो गया। वाल्मीकि जी का पूर्व-वृत्तान्त कौन नही जानता ?

मनुष्य नीचो की संगति से नीच और सज्जनो की संगति से सज्जन बनता है। मूर्खों की संगति से बुद्धि मलीन होती है; किन्तु सज्जनो की संगति से बुद्धि की मलिनता नाश होकर, बुद्धि निर्मल और तीव्र होती है। कुसंगति में पड़ कर मनुष्य को मिथ्या भाषण से अनुराग होता है; सत्संगति से वह सत्य भाषण का अनुरागी होता है; कुसंसर्ग में पड़ कर मनुष्य निन्दा और घृणित कर्म करता है; इसीलिये उससे भले आदमी घृणा करते है और उसे अपने पास भी नही आने देते, कोई उसका आदर नही करता। सत्सगति के प्रभाव से मनुष्य सुशील होता है, उत्तमोत्तम कर्मों पर उसकी अभिरुचि होती है. गुणो की वृद्धि होती है; इसलिये सर्वत्र उसका सम्मान होता है। दुष्ट सङ्गति मे पड़ कर मनुष्य विविध प्रकार के पाप-कर्म करता है, किन्तु सत्सङ्गति से पापो से अरुचि या घृणा हो जाती है; इसलिये मनुष्य इस लोक मे सुख पाता और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी होता है। कुसंगति मे पड़ कर मनुष्य बुरे-बुरे काम करता है, इसलिये उसकी अपकीर्ति फैलती है। सत्सङ्गति मे रह कर वह दान, दया, परोपकार प्रभृति उत्तम गुण ग्रहण करता और सदा सत्कर्म करता है; इसलिये उसकी सुकीर्त्ति देश-देशान्तरो मे फैल जाती है, इसलिये मनुष्य को, कुसङ्ग को दूर ही से नमस्कार करके, सदा सत्सङ्ग करना चाहिये। महात्मा विदुर ने मनुष्य के लिये छः सुख बताये हैं: –

(१) निरोग रहना, (२) कर्जदार न होना, (३) देशभ्रमण करना, (४) स्वाधीनता-पूर्वक धन कमाना, (५) सदा निर्भय रहना, और (६) सज्जनो का संग करना।

कबीरदास ने कहा है—

एक घरी आधी घरी, आधी सों भी आध ॥
कबिरा सङ्गति साधु की, कटे कोटि अपराध ॥
कबिरा सङ्गति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥

सारांश—सत्संग सर्वोपरि है। यह धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चारो का दाता है। यह दुःख या पापो का समूह नाश करने वाला और नित्य सुख बढ़ाने वाला है; इसलिये "सत्संग करो"।

दोहा।

जड़ताई मति की हरत, पाप निवारत अग।
कीरति सत्य प्रसन्नता, देत सदा सत्सङ्ग ॥

23. Society of good men removes the dullness of a man's reason makes his tongue truthful. enhances his respectability, overcomes his sins, gives pleasantness to his heart and spreads his fame in all directions. Tell me what it does not do for men.

घरी = घड़ी = २४ मिनट। कबिरा = कबीर दास। सङ्गति = सुहबत। साधु = सत्पुरुष। दुर्मति = खोटी बुद्धि। सुमति = सुबुद्धि। जड़ताई = भोंदापन।

जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये, जरामरणजं भयम् ॥२४॥

जो पुण्यात्मा कवि श्रेष्ठ शृङ्गार आदि नव रसों मे सिद्ध हस्त हैं, वे धन्य हैं ! उनकी जय हो ! उनकी कीर्त्ति रूप देह को बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं ॥ २४ ॥

जो कवीन्द्र नव रसो के पूर्ण पण्डित है, जो सरस कविता करने मे सिद्ध हस्त है, नाना प्रकार के काव्य प्रकाशित करते है, उनकी पञ्चतत्त्व से बनी मिट्टी की देह को ही जरा और मरण का भय है; पर उनकी सुयशमय देह को न जरा का भय न मरण का भय । उनकी कीर्त्ति रूप देह सदा-सर्वदा—कल्पान्त तक अजर और अमर रहेगी

वाल्मीकि कालिदास, माघ, भवभूति, सूरदास, तुलसीदास और विहारीलाल प्रभृति इस देश के कवीन्द्र और शेक्सपियर, मिल्टन, बेरन, वर्डस्वर्थ प्रभृति पाश्चात्य देशो के कवियों के पाञ्चभौतिक शरीर वृद्ध भी हुए और नष्ट भी हो गये; परन्तु उनके सुयश के शरीर आज तक भी विद्यमान हैं; न उन्हें जरा का भय है न मरण का—सदा-सर्वदा प्रलय काल तक इसी तरह रहेगे। इस ग्रन्थ के रचयिता महात्मा भर्तृहरि को ही लीजिये; आज उनके पञ्चतत्वो से बने शरीर को नष्ट हुए प्रायः दो हजार साल हो गये, पर उनकी अपूर्व रचना के कारण उनका सुयशमय शरीर आज तक मौजूद

है और सदा इसी तरह रहेगा। जरा और मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ न सकेंगी।

इस विषय में उस्ताद जौक ने भी खूब ही कहा है—

रहता है सखुन से नाम, कयामत तलक है जौक।
औलाद से तो है, यही दो पुश्त चार पुश्त ॥

सखुन के मनुष्य का नाम प्रलय-काल तक रहता है, पर औलाद से तो पीढ़ी और बहुत हुआ तो चार पीढ़ी तक रहता है।

सारांश—उत्तम कवि या ग्रन्थकारों की मिट्टी की देह को बुढ़ापे और मृत्यु का भय भले ही हो; पर उनकी कीर्ति रूप-देह को न जरा का भय, न मौत का भय, अर्थात् उनकी सुकीर्त्ति सदा अजर अमर रहती है।

दोहा।

सबसे ऊँचे सुकविजन, जानत रस को सोत।
जिनके यश की देह को, जरा मरण नहि होत ॥२४॥

24. Triumphant are the poets, the doers of glorious deeds and perfect in the expression of various natural emotions, whose fame is never in fear of decay or death

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशंमनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं,
तुष्टे विष्टपहरिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना ॥२५॥

सदाचरणपरायण पुत्र, पतिव्रता सती स्त्री. प्रसन्नमुखी स्वामी, स्नेही मित्र निष्कपट नातेदार, क्लेश रहित मन, सुन्दर आकृति, स्थिर सम्पत्ति और विद्या से शोभायमान मुख--ये सब उसे मिलते हैं जिस पर सर्व मनोरथों के पूर्ण करने वाले स्वर्गपति कृष्ण भगवान् प्रसन्न होते हैं; अर्थात् विश्वेश लक्ष्मी पति नारायण की कृपा विना ये उत्तमोत्तम पदार्थ नहीं मिलते।

संसार मे प्रायः सभी के पुत्र भी होते हैं, स्त्री भी होती हैं, स्वामी भी होते हैं, मित्र भी होते हैं. नातेदार भी होते हैं एवं मन, आकृति और मुख भी होते है; पर वे ऐसे ही हों जैसे कि ऊपर लिखे हैं, तब तो मनुष्य से सुख का क्या ठिकाना? ऐसे भाग्यवान को पृथ्वी पर ही स्वर्ग है। स्वर्ग मे और क्या सुख-आनन्द है? और यही सब हो पर ऐसे न हों; यानी लड़का बदचलन हो, स्त्री व्यभिचारिणी हो, स्वामी क्रोधमुखी हो, मित्र स्नेह हीन हो, रिश्तेदार कपटी हो; मन क्लेश पूर्ण हो, सूरत शकल खराब हो, सम्पत्ति अस्थिर हो और मुख विद्या-रहित हो. तो मनुष्य के दुःखो की सीमा नहीं. उसे यही नरक है। नरक मे इन से बढ़ कर और क्या दुःख है?

——::o::——

सदाचारी पुत्र या बदचलन बेटा।

यद्यपि दुनियवी लोग पुत्र के नाम से ही अपने को धन्य समझते है, पुत्र से पितरो के पिण्ड की और स्वर्ग की

आशा करके बड़े खुश होते हैं, पर दुष्टात्मा और दुराचारी पुत्र से कोई लाभ नहीं, क्योंकि दुराचारी पुत्र से पिता-माता को कोई सुख नहीं, उल्टा दुःख होता है; क्षण-क्षण मे जी जलता है। वह कानी आँख की तरह वृथा होता है, जो काम तो कुछ नही देती पर दुखनी आकर तकलीफ जरूर देती है। पुत्र वही उत्तम है, जिससे वंश की उन्नति हो, जिससे संसार का भला हो, जिससे जनक-जननी को हर तरह सुख मिले। जिसका पुत्र न दानी है, न तपस्वी है, न वीर है, न विद्वान है और न धनवान् है, वह पुत्रवान् है तो निपुत्री कौन ? ऐसे पुत्रवान् होने से निपुत्री होना कहीं भला। जिनका पुत्र आज्ञा पालन करता है, सेवा मे आलस्य नहीं करता, छाया की तरह साथ रहता है, धन कमाने का उद्योग करता है, अपने और पराये सब पर दया-भाव रखता है, दीनो के दुःख दूर करता है, सज्जनो का सङ्ग करता है, सत्यभापण मे अभिरुचि रखता है, पाप कर्मों से घृणा करता है, सदा प्रसन्न सुखी रहता है, शोक और हर्ष मे समान रहता है, वही माता पिता सच्चे पुत्रवान हैं। कंस जैसे दुरात्मा पुत्र से सिवा दुःख के सुख नहीं। भगवान् किसी को पुत्र दे, तो राम और श्रवण सा दे।

—:o:—

पतिव्रता या पाकदामन स्त्री।

स्त्री होने से ही मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। यदि स्त्री सती-साध्वी या पतिव्रता न हो, पति की आज्ञा न मानने वाली

कुलटा या व्यभिचारिणी हो, दिन-रात कलह करने वाली और क्रोधमुखी तथा अप्रिय बोलने वाली हो, घर के काम-धन्धो मे अकुशल और फूहड़ एवं कर्कशा हो, तो पुरुष को इस पृथ्वी पर ही नरक है; ऐसी स्त्री, स्त्री नहीं—पुरुष की साक्षात् मृत्यु है। सच तो यह है कि, ऐसी स्त्री से मृत्यु कहीं भली; क्योंकि मृत्यु क्षण-भर मे प्राण नाश कर देती है; पर ऐसी स्त्री जला-जला और घुला घुला कर मारती है। जो स्त्री सदा अपने पति मे अनुराग रखती है, पर पुरुष के नाम और छाया से भी दूर रहती है, गृह कार्य मे कुशला, पुत्रवती और सुशीला होती है—वही स्त्री, स्त्री है। जिस पुण्यवान् के ऐसी गुणवती नारी है, वह सचमुच ही भाग्यवान् है। जिसके घर मे पतिव्रता स्त्री है, उसके घर मे क्या अभाव है ? उसके घर मे अष्ट सिद्धि नव निद्धि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। पतिव्रता दरिद्र मे भी दरिद्र सा मालूम नही होने देती। पतिव्रता रोगी पति का सच्चा वैद्य है। पतिव्रता विपद्ग्रस्त स्वामी का उद्धार कराने और समय समय पर अमूल्य मन्त्र—सलाह प्रदान करने में सच्ची मित्र है। पतिव्रता कुराह में जाते हुए पति को सुपथ मे ले आती है। पतिव्रता मरे हुए स्वामी को जिन्दा कर सकती है। पतिव्रता दुष्ट स्वामी का भी उद्धार करके स्वर्ग मे ले जाती है। जिसके घर में पतिव्रता है; वही गृही और सच्चा सुखी है। विद्वानो ने कहा है:—

सा भार्य्या या गृहे दक्षा, सा भार्य्या या प्रजावती।
सा भार्य्या या पतिप्राणा, सा भार्य्या या पतिव्रता॥

वही स्त्री है जो घर के कामो में निपुण है वही स्त्री है जो सन्तान वाली है; वही स्त्री है जो पतिप्राणा और पतिव्रता है।

किन्तु यदि दुर्भाग्य से स्त्री सती न हो, तो सुख कहाँ है? कहा है:—

यस्य क्षेत्रं नदी तीरे, भार्य्या च परसंगरता।
ससर्पे च गृहे वासः, कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः॥

जिसका खेत नदी-किनारे है, जिसकी स्त्री परपुरुषरता है जो साँप वाले घर मे रहता है,—उसे सुख कहाँ है?

प्रसन्नमुखी स्वामी या हँसमुख मालिक।

प्रथम तो पराई चाकरी ही महा कठिन काम है! संसार मे पराई चाकरी से अधिक दुःखदायी और काम ही नहीं है। नौकरी करना और सर्प को खिलाना एक ही बात है। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"स्वर्ग मे चाकरी करने से, नरक मे राज करना कहीं भला है।" पर-सेवकाई मे गुण भी औगुण हो जाते है और स्वाधीनता तो नाम को भी नहीं रहती। महा मूर्ख गधा स्वामी भी अपने चतुर-चूड़ामणि सेवक को मूर्ख और पागल कह देता है। उसके अच्छे से अच्छे कामो मे भी दोष लगा देता है। जरा जरा सी बातो में सेवक का अपमान करता

है। पराधीनता से जीविका उपार्जन न करना ही, जन्म की सफलता है। पराधीन जीविका वाले यदि जीवित हैं, तो मरे कौन है? पर इस पापी पेट और जीभ के लिये, विशेषकर स्त्री और बच्चो के लिये, पूर्व कृत पापो के फल स्वरूप, मनुष्य को यह निंद्य कर्म भी करना ही पड़ता है। यदि दुर्भाग्य से स्वामी क्रोधमुखी और स्वार्थी मिल गया, तब तो जीते जी ही नरक हो गया। यदि पूर्व पुण्यो से स्वामी हँसमुख, सेवक के कष्ट और दुःख से सहानुभूति रखने वाला तथा उसका भला चाहने वाला मिल गया, तब तो किसी प्रकार सुख से जीवन कट जाता है, उतना दुःख नहीं होता। पर ऐसा स्वामी भगवान् कृष्ण की पूर्ण कृपा बिना नही मिलता।

—::⁂::—

स्नेही मित्र।

इस जगत् मे जिनके निष्कपट सच्चे स्नेही मित्र हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान् हैं। माता-पिता, स्त्री और सगे भाई मे जो सुख नहीं है वह सच्चे स्नेही सुहृद् में हैं। स्वाभाविक मित्र के ऊपर पुरुषो का जैसा विश्वास होता है; वैसा विश्वास माता, स्त्री और सगे भाई पर भी नहीं होता। सच्चा मित्र, मित्र के सुदिन और दुर्दिन में एक सा स्नेह रखता है; बल्कि दुर्दिन में अपने स्नेह की मात्रा को और भी बढ़ा देता है। मित्र के बालू के दाने बराबर दुःख को पहाड़ के समान समझता है, अपने पहाड़ के समान दुःख को भी बालू के दाने जितना समझता है;

समय पर तन मन और धन से साहाय्य करता है; छाया के समान साथ रहता है; विपद् से छुटकारा कराता है अथवा अपनी सामर्थ्य भर छुटकारे की चेष्टा करने मे कोई कसर नहीं रखता; मित्र के गुणो को प्रकाशित करता, औगुणो को छिपाता और प्राणान्त होने पर भी, मित्र के गुप्त रहस्य प्रकट नहीं करता,—ऐसा मित्र ही मित्र होता है। जिन पर जगदाधार भगवान् कृष्ण की पूर्ण कृपा होती है, उन्हे ही ऐसा मित्र मिलता है। ऐसे मित्र दुर्लभ है। आज-कल तो मतलब के यार रह गये है। जब तक आपके पास पैसा है, आप खिलाते-पिलाते और पोला हाथ रखते हैं, तब तक आपके मित्र बने रहते हैं; जहाँ आपके पास पैसा न रहा, कि मित्र राम सटके। जब तक अवस्था भली रहती है, तब तक आज-कल के मित्र छाया की तरह साथ रहते है, जहाँ दरिद्रदेव आये, विपद् ने पदार्पण किया, कि मित्रो ने आपको मॅझधार मे छोड़ा। आज-कल मित्र कहाँ हैं? हमारे जैसे ना समझ लोग खुशामदियो को मित्र समझ लेते हैं; पर खुशामदी से बढ़ कर दुश्मन इस जगत् मे नहीं। जब तक खुशामदी की इच्छा पूरी की जाती है, वह खुशामद और लल्लो-चप्पो करता रहता है, जहाँ मतलब में बाधा पड़ी और उसने अपने साथी की घोर-घोर निन्दा आरम्भ की। ऐसे लोग अच्छे समय में अपने साथी या मित्र के दोषो पर गहरी नजर रखते हैं और किसी समय के लिये उन्हे, धन की तरह, अपने हृदय-बैङ्क मे सुरक्षित

रखते जाते हैं। जब तक बनी रहती है, स्वार्थ सधता रहता है, दोषों को दबाये रखते हैं. जहाँ स्वार्थ मे बाधा पड़ी, कि मित्र के उन्हीं दोषो से काम निकालने की चेष्टा करते है। बेचारे को डराते-धमकाते है और अगर उसके पास कुछ होता है, तो उससे येन केन उपायेन एंठते हैं, उसको घोर विपद् मे देख कर भी उन्हे जरा दया नहीं आती। अपने मित्र की विपद् को शतगुणी बढ़ाते है। उसके सर्वनाश मे अपनी सारी विद्या-बुद्धि और बल खर्च कर देते हैं। हम यह नहीं कहते, कि सत्यस्नेही मित्र आज कल होते ही नहीं; होते होगे; किसी पुण्यात्मा को मिलते होगे; पर हमने ऐसे मित्र आज तक नहीं देखे। बुद्धिमान् अपनी भूलो और पराई गलतियो से अनुभव प्राप्त करता है। जिसने अपने जीवन मे मूर्खता के काम नहीं किये, अनेक ठोकरे नहीं खाईं—वह कदापि बुद्धिमान् नहीं हो सकता। हमें तो देखने और सुनने से जो अनुभव हुआ है, उससे यही कह सकते हैं—कि जिन्हें मित्र कहते हैं, वे इस कलियुग मे पारस-पत्थर या हुमा-पक्षी की तरह दुष्प्राप्य है; नाममात्र चला जाता है। आशा है, हमारे पाठक हमारे अनुभव से लाभ उठावेगे—धोखा खाने से बचेगे। हमने अपने जीवन मे सुमित्र जैसे रत्न के लिये अपनी शक्ति-भर द्रव्य भी नष्ट किया, तन मन भी लगाया, खोज भी बहुत की; पर हमे वह रत्न न मिला। संसार मे औरो से भी पूछा, पर सबको हमारी तरह शिकायत करते ही पाया। जो

कुछ दिनो तक हमारी बात की दिल्लगी उड़ाते रहे, हमें पागल समझते रहे, शेष मे एक दिन उनको भी कहना ही पड़ा -- "आपका अनुभव ठीक है, हम बड़ी गलती पर थे।" आप किसी को भी दुश्मन न बनाइये, सबसे अच्छा बर्ताव कीजिये, इससे आपको सुख ही मिलेगा; पर झटपट ही बिना कठिन परीक्षा किये, किसी को अपना मित्र न मान लीजिये, किसी से भी अपने मन की बात न कहिये। यदि आपकी अवस्था अच्छी होगी, आपके पास धन-दौलत होगी, तो बहुत लोग आपके अभिन्न मित्र बनेगे—आपके लिये समय पर जान देने तक की डींग मारेंगे, आपके ऊपर अपना सर्वस्व तक स्वाहा कर देने की लम्बी-चौड़ी बाते कहेंगे—पर आप इन बातो मे भूल न जाइयेगा—बिना परीक्षा किये विश्वास न कर लीजियेगा। जहाँ तक हमारा अनुभव है, परीक्षा के समय कोई भी मित्र आपकी परीक्षा मे उत्तीर्ण न होगा। उस समय आप हमारी बात को सच पाकर खुश होगे।

मैने यहाँ जो इतनी पंक्तियाँ लिखी है, बहुत से लोग इन्हे मेरा खब्त समझेंगे। समझा करे; मैने जो कुछ यहाँ लिखा है, वह निष्कपट भाव से सत्य लिखा है और वह केवल इस उद्देश्य से लिखा है, कि लोग मेरी तरह धोखा न खाये-तकलीफे न उठावे।

निष्कपट नातेदार।

जिस तरह सच्चे मित्रो का प्रायः अभाव-सा है, उसी तरह

निष्कपट बन्धु-बान्धव और रिश्तेदारों का भी प्रायः अभाव है जब तक आपके पास लक्ष्मी रहेगी, तब तक आपके नातेदार, नातेदार बने रहेंगे। संसार में लोग साला कहलाने में बहुत संकोच करते हैं, पर धनवान् के साले बनने में भी सौभाग्य समझते हैं, गरीब के लोग बहनोई भी नहीं बनते; किन्तु अमीर के, साले न होने पर भी, साले बन जाते हैं। इस जमाने में न कोई किसी का बाप है, न बेटा-बेटी, न कोई बहिन है न भाई—सब पैसे के संगी हैं। निर्धन को स्त्री तक त्याग देती है; तब औरों का तो कहना ही क्या? आज कल लोग उपकारी के उपकार का बदला भी नहीं देते। बिना उपकार कराये,—किसी रिश्तेदार की सहायता करना—उसके दुःख में आड़े आना तो बहुत ही कठिन है। यदि आप धनी से दरिद्र हो जायें; तो आपके सब नातेदार आपको फौरन से पहले त्याग देंगे और अगर आप प्रारब्धवश फिर दरिद्र से धनी हो जायें, तो सब मक्खियों की तरह आ-चिपटेंगे। औरों की बात जाने दीजिये, स्वयं पैदा करने वाला पिता और सहोदर भाई ऐसा करते हैं। आजकल के बन्धु-बान्धव और मित्रों के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदासजी ने बहुत ही ठीक कहा है और जो कुछ उन्होंने अपने श्रीमुख से कहा है, वह हमने अपने नेत्रों से देख लिया है*—

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
सरस वृक्ष पक्षी बसें, निरस भये उड़ जाहिं॥

---

* इसके सच्चे उदाहरण पुस्तकान्त में देखिये

इस दोहे का यह आशय है, कि संसार मे जितने लोग है, सब स्वारथ के है। अपने-अपने मतलब से ही सगे-सम्बन्धी और नातेदार बन रहे हैं, बिना स्वारथ कोई किसी का नहीं है। जब तक वृक्ष मे फल-फूल रहते है, पक्षी उस पर टिके रहते है; जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि पक्षी उसे छोड़ कर नौ दो ग्यारह हुये।

सारांश—किसी ही भाग्यवान् को निष्कपट बन्धु-बान्धव मिलते है।
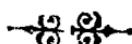
क्लेश रहित मन।

अगर मनुष्य का मन क्लेशरहित—निःक्लेश या स्वस्थ हो, तो उसे दुःख ही क्या है? उसके समान सुखी कौन है? उसके समान सौभाग्यवान कौन है? निस्सन्देह, जगदीश की पूर्ण दया होने से ही मन स्वस्थ रहता है। इस जगत् में बहुत ही कम लोग निरोग रहते है। यदि किसी को शारीरिक रोग नही है, तो मानसिक रोग है। जिसे मानसिक व्याधि नही है, ऐसा कोई विरला ही भाग्यवान् है। जिस पर जगदीश की सोलह आने कृपा होती है उसी का मन क्लेशरहित रहता है। कोई अपने व्यवसाय के घाटे के मारे मन ही-मन दुखी हो रहा है, तो कोई अपने प्रिय पुत्र या प्यारी स्त्री अथवा और किसी प्यारे की जुदाई या मृत्यु से जल रहा है। कोई दुर्जनों के वाग्वाणो से जर्जरित हो मन-ही-मन

शोक-ताप से भस्म हो रहा है, कोई पराजय या शत्रु की जय से पीड़ित हो रहा है, कोई भावी दुःखों की कल्पना से ही चिन्तित हो रहा है। हमने ऐसा कोई नहीं देखा, जिसका मन किसी-न-किसी दुःख से चिन्तित या क्लेशित न हो। गुरु नानक ने सारा संसार खोज डाला, पर उन्हे सच्चा सुखिया कोई न मिला। किसी का मन किसी दुःख से और किसी का किसी दुःख से उन्होने क्लेशित ही पाया; इसलिये उन्होंने कहा—"नानक दुखिया सब संसार।"

गरीब और निर्धन लोग राजा-महाराजाओ और अमीर-उमराओ को देख कर मन-ही-मन दुःखित हुआ करते है और कहा करते है कि वे लोग स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं; पर वास्तव में यह बात नहीं है। यह उन लोगो की खाम खयाली है। जो जितने ही धनी है, जो जितने ही उच्च पद पर हैं, वे उतने ही चिन्ताग्रस्त और दुःखी हैं। प्रकट मे वे लोग सुखी दीखते हैं, परन्तु उनकी भीतरी दशा बहुत ही दुःख और कष्टपूर्ण है। उनके ऊपर बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ और चिन्तायें सवार हैं। बड़े लोगों को रात के समय भी सुख की नींद नही आती। नातजुर्बेकार लोग समझते हैं कि धन की वृद्धि से मनुष्य सुखी होता है, पर हमारी समझ मे धन ज्यों-ज्यो बढ़ता जाता है, चिन्तायें भी त्यों-त्यो बढ़ती जाती है। मन को सदा सुखी रखने का एक ही उपाय 'आत्म-संयम' है। जिसने अपनी इन्द्रियो पर पूर्ण विजय प्राप्त करली है, जिसकी दृष्टि में सुख-

दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, सम्पद्-विपद्, निन्दा-स्तुति समान हैं; यानी जो समदर्शी हैं; वही सुखी है। जो सुख में हर्ष नहीं करता और दुःख में शोक नहीं करता, अपने प्यारे-से प्यारे के मर जाने पर भी दुःखी नहीं होता—वह निस्सन्देह सुखी है। मन का निःक्लेशित रहना ही सच्चा सुख है। और मन तभी सुखी रह सकता है, जब कि मनुष्य इन्द्रियों पर अपना पूर्ण अधिकार जमा ले और हर अवस्था में सन्तुष्ट रहे—त्रिलोकी की सम्पदा मिल जाये, तो भी सुखी और सर्वस्व नष्ट हो जाय तो भी सुखी। यह हालत इन्द्रियविजयी समदर्शी महात्माओं की होती है। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, क्यों कि वे सुख-दुःख को समान और पूर्वजन्म के भले और बुरे कर्मों का अवश्यम्भावी फल समझते हैं। उनकी दशा दर्पण की सी है, जो पहाड़ का अक्स पड़ने से दब नहीं जाता और समुद्र की प्रतिच्छाया पड़ने से भीगता नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

सुख दुख दोनों एक सम, सन्तन के मन माहिं।
मेरु उदधि गति मुकुर जिमि भार भीजिबो नाहिं॥

अगर यह कठिन काम न हो, तो मन को गोस्वामी जी की इस उक्ति से समझा कर ही सुखी और निश्चिन्त रखिये—

"हुइ हैं वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा?"

गोस्वामी जी के इस उपदेश में बड़ा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है। मन को सुखी रखने की इससे बढ़ कर उत्तम औषधि और नहीं,

है। सभी जानते हैं, सुगति और दुर्गति हमारे पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल है। सुकर्मों का फल सुख है। दुष्कर्मों का फल दुःख है। कोई मनुष्य क्षण-भर भी कर्म-रहित नहीं रह सकता। बुरा और भला जो हमारे सामने आरहा है, वह सब हमारे ही किये कर्मों का फल है। कर्म-फल बिना भोगे कोई भी बच नहीं सकता। जो होनहार है, वह अवश्य होगी। जो नहीं होनी है, वह कभी न होगी। हमने जो बोया है, वही हम काटेंगे। आम का वृक्ष लगाने वालों को आम है, बबूल का वृक्ष लगाने वालों को काँटे है। जिस तरह बछड़ा अपनी माता को हजारों गायों मे खोज लेता है, उसी तरह कर्म अपने कर्त्ताओं को ढूँढ़ लेता है। ईश्वर के नियम मे दोष और भूल नहीं, जो कुछ और जैसा जिसने किया है, वह उसे अवश्य लेना होगा। कर्म के फल को विधाता भी मेट नहीं सकना। इन बातों को विचार कर, मनुष्य को सदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। आगे के दु:खो की कल्पना करके, वृथा अपनी सुख की घड़ियो को भी दु खमय न करना चाहिये। शोक और चिन्ता से उल्टा दु:ख बढ़ता है, घटता नहीं। हर हालत मे खुश रहने वाले को दुःख भी दुःख-सा मालूम नहीं होता।

पाठको! बहुत लिखने से आपका समय नष्ट होगा। इतने में ही समझ लीजिये, कि मैंने इन सब नीति-वाक्यो के पढ़ लेने पर भी अपनी मूर्खता से इन पर अमल न किया। भावी विपद् की कल्पना-ही-कल्पनाओं मे अपने दुष्प्राप्य शरीर को नष्ट

कर दिया, जवानी मे ही बुढ़ापे को बुला लिया। मेरी कल्पनायें मिथ्या निकली, और मेरे भावी विचार एक दम झूठे हो गये। जिन दु.खों की कल्पनाओं से मुझे २४ साल मे कभी सुख की नींद नही आई, वे सब यो ही मूर्खता की कल्पनायें निकली। अन्त में मुझे पछताकर कहना पड़ा—"हाय ! मैंने इतने वर्ष यों ही गँवाए ! सुख के दिन भी अपनी नासमझी से दुःखमय कर दिये ! अन्त मे वही हुआ, जो होना था।" दूसरो के दुःखो से लोग इसी तरह समझाया करते है,पर खुद पर जब आ पड़ती है, तब प्रायः सभी मेरी तरह गलतियाँ करते हैं। पर ऐसा करना, है वृथा मूर्खता करके अपनी जिन्दगी खराब करना। जो सज्जन दुःख में नहीं घबराते,भावी दुःखो की कल्पनाओ मे जिन्दगी बरबाद नहीं करते—वे सचमुच ही महा-पुरुष हैं, वे इस जगत के सच्चे भूषण है। पर ऐसे पुरुषरत्न इस जगत् मे विरले ही हैं। आशा है, पाठक मेरी गलतियो से नफा उठायेंगे और अपने सुखी जीवन का एक क्षण भी वृथा दुःख-मय न करेंगे। जो दूसरों की गलतियो से लाभ उठाते है, वे ही बुद्धिमान हैं। दूसरो के लिये ही मैं, मौके-मौके पर, अपनी बेवकूफियो को लिख रहा हूँ। आपने अपनी बेवकूफियो और गलतियो के कहने वाले सिवा गाँधी जी के बहुत ही कम देखे-सुने होंगे। आप ऐसा मत समझ लेना, कि ऐसा आदमी एक ग्रन्थ लिख कर हमे उपदेश दे रहा है ? मैं उपदेश देने योग्य नहीं; पर मेरी आन्तरिक इच्छा है, कि

और लोग मेरी तरह कष्टमय जीवन न बितावे; इसलिये अपनी गलतियो की बात लिख रहा हूँ। भाइयो ! महात्मा हे ने कहा है—"जो अपने जीवन मे कभी मूर्ख न था, वह कदापि बुद्धिमान् न था।" अरबी मे एक कहावत है—"जो स्वयं बीमार नहीं हुआ, वह उत्तम चिकित्सक हो नहीं सकता।" संसार का प्रत्येक मनुष्य अनेकानेक घटनाओ से भरा हुआ उपन्यास है। अगर सभी मनुष्य अपनी-अपनी नकाबें उलट दे—अपने बुरे भले काम संसार के सामने रखदें, तो दुनिया के बहुत से आदमी ठोकरे खाने और खड्डो मे गिरने से बचे, पर लोगों को तो अपनी शान मे बट्टा लगाना बुरा लगता है, अपने गुणो का कीर्तन ही उन्हे अच्छा लगता है। लोग अपने औगुणो, अपनी गलतियो और अपनी बेवकूफियो पर परदा डालते और अपने अच्छे कामो को अपने मित्रो—अपने खुशामदियो द्वारा संसार के सामने रखते हैं। इससे भी संसार को किसी-न-किसी हद तक लाभ ही होता है, पर अपने दोष और गलतियो को संसार के सामने रखने से जितना लाभ हो सकता है, उतना नहीं होता।

सुन्दर आकृति या अच्छी सूरत शकल।

——:o:——

सुन्दर आकृति परमात्मा की देन है; पर विद्वान् उसे ही सुन्दर आकृति वाला और खूबसूरत समझते है, जो विद्वान् है,

पण्डित है; बुद्धिमान है; धर्मात्मा है, परोपकारपरायण है, दीनो पर दया करता है, गरीब और मुहताजो की जरूरियातो को मिटाता है, अनाथों का पालन करता है: संसार के सभी प्राणियों के कष्ट को अपना कष्ट समझता है, जो सदा प्रसन्न चित्त रहता है, जिसके माथे पर कभी चिन्ता और क्रोध की सलवटें नहीं पड़ती, जो मधुर भाषण से जगत् के हृदय को मुग्ध कर लेता है। आँख, नाक और आकार की सुन्दरता—सुन्दरता नहीं है। अगर सूरत-शकल, आकार-प्रकार सुन्दर और निर्दोप हो और साथ ही मनुष्य मे ये खूबियाँ भी हों, तभी आकृति की सुन्दरता है। अगर ये खूबियाँ न हों, केवल आकृति सुन्दर हो, तो व्यर्थ है। सारांश यह, उत्तम गुण के साथ आकृति भी सुन्दर होनी चाहिये। सुन्दर आकृति से लोगों का चित्त आकर्षित होता है; पर ऐसा मेल कहीं कहीं ही मिलता है। बहुधा देखने मे आता है कि रूप है तो गुण नही, गुण है तो रूप नही। वृन्द कवि ने कहा है,—

जैसो गुण दीनों दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहाँ पाइये, सोनो और सुगन्ध ?

स्थिर सम्पत्ति।

—::o::—

बहुत दिन तक स्थायी रूप से रहने वाली सम्पत्ति ही सुखदायी सम्पत्ति है। आज है और कल नहीं, वह सम्पत्ति किस काम की ? वैसी सम्पत्ति से सम्पत्ति का न होना

ही भला। पर लक्ष्मी का स्वभाव ही चञ्चल है, वह कभी एक जगह टिक कर नहीं रहती। आज इस घर में है, तो कल उस घर में। धन पाँव की धूल के समान है, जो पैरों में लगती है और झट झड़ जाती है। बूकन नामक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"धन दुष्ट सेवकों के समान है, जिनके जूते भागने वाले चमड़े के बने होते है और जो एक स्वामी के पास बहुत दिन नही रहते।"* अर्थात् (खराब चाकर और धन किसी के पास बहुत दिनो तक नहीं टिकते) एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—"हमने किसी के पास दौलत समान रूप से तीन पीढ़ी से अधिक ठहरती नही सुनी।" किसी ने कहा है—("दौलत के पंख होते है।") सभी ने कहा है कि धन-वैभव सदा स्थायी नहीं रहते। जिस तरह जन्म के साथ मृत्यु जवानी के साथ बुढ़ापा, संयोग के साथ वियोग प्रभृति लगे हुए है, उसी तरह सम्पद् के साथ विपद् लगी हुई है। जिन पर जगदीश की पूर्ण कृपा होती है, उन्हीं के यहाँ उनकी उम्र भर धन ऐश्वर्य रहते हैं।

छप्पय—पुत्र मिलै सच्चरित, नारीहु सती सुहावन।
स्वामी हँसमुख मिलै मित्रहू प्रीति निबाहन॥
परिजन छलसों हीन,कलह बिन मन सुखकारी।
आनन सुन्दर मिलै, अचल लक्ष्मीहू भारी॥

---

*Riches are like bad servants, whose shoes are made of running leather, and will never tarry long with one master.

इमि सब शोभा की खानि, तो विद्या मुख ही मंडनौ।

जब होहिं प्रसन्न रमेराजू, कल्मष सकल विडंडनौ ॥ २४ ॥

25 A well-behaved son, a chaste wife, a pleased master, a fond friend, an undeceitful relative, an unafflicted mind, a graceful figure, a stable prosperity and an oratorical vocal organ are only obtainable by those with whom Vishnu the Lord of Heaven and the giver of all good, is pleased.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधन हरणे संयमः सत्यवाक्यं-

काले शक्त्याप्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।

तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकंपा,

सामान्यःसर्वशः शास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेषपंथाः॥२६॥

जीव हिंसा न करना, पराया धन हरण करने से मन को रोकना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, पर स्त्रियों की चर्चा न करना और न सुनना, तृष्णा के प्रवाह को तोड़ना, गुरुजनों के आगे नम्र रहना और सब प्राणियों पर दया करना—सामान्यतया, सब शास्त्रों के मत से ये सब मनुष्य के कल्याण के मार्ग हैं।

जीव-हिंसा न करना।

——:o:——

धर्म शास्त्रों में अनेक विषयों मे परस्पर मतभेद है; पर "अहिंसा परम धर्म है"—इस वाक्य को सभी धर्म एक मत से

मानते हैं। संसार मे जीवहिंसा से निवृत्त रहने के समान और धर्म नहीं है। फिर भी, न जाने क्यों अज्ञानी लोग अपने पेट के लिये परायी जान लेते हैं? "धर्मपद" मे लिखा है,—"सब मनुष्य दण्ड से डरते हैं, सभी मौत से भीत होते हैं; ध्यान रखो, तुम भी उन्हीं के समान हो, इसलिए किसी की हिंसा न करो और न किसी का संहार होने दो। जो मनुष्य अपनी तरह सुख की इच्छा रखने वाले प्राणियो की अपने सुख के लिये हिंसा करता है, उसे मृत्यु के पश्चात् सुख नहीं मिलेगा। जो किसी की भी हिंसा नही करते, जो सत्पुरुष इन्द्रियो का संयम करते है, वे अटल निर्वाण को प्राप्त होंगे—वहाँ उन्हे लेशमात्र भी दुःख न होगा।" हमारे ही शास्त्रो मे कहा है—"जो सब तरह की हिंसाओ से निवृत्त हैं, जो कष्ट सहिष्णु हैं, जो सब जीवो को आश्रय देने वाले है—वे ही स्वर्ग को जाते है। जो माँस खाता है और जिसका माँस खाता है, उन दोनों का अन्तर देखो! एक को क्षण भर के लिये सुख होता है और दूसरा अपने प्राण से ही जाता है। शेख़ सादी ने भी कहा है—

जेरे पायत गर, बिदानी हाले मोर।
हम चो हाले तस्त, जेरे पाये पील॥

तुम्हारे पाँव के नीचे दबी चींटी का वही हाल होता है, जो यदि तुम हाथी के पाँव के नीचे दब जाओ तो तुम्हारा हो।" दूसरे के दुःख की अपने दुःख से तुलना किये बिना, हमे पराये दुःख का हाल मालूम नही हो सकता। मतलब यह है कि, हमें

सभी जीवों को अपने समान समझना चाहिये—पराये प्राण भी अपने प्राणों के समान समझने चाहिये—दूसरो को कष्ट पहुँचाते समय इस बात का खयाल रखना चाहिये कि, यदि हमे कोई ऐसा ही कष्ट दे, हमे भी जिबह करे, तो हमारा क्या हाल हो ? अगर मनुष्य यह विचार अपने हृदय मे रखे, तो उससे कभी किसी की हत्या न हो और किसी तरह का और भी ज़ुल्म न हो। कबीरदास ने कहा है:—

> बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
> जो बकरी को खात हैं, तिनको कौन हवाल ?
> मुरग़ी मुल्ला सों कहै, ज़िबह करत है मोहि।
> साहब लेखा माँगसी, संकट परि है तोहि॥
> गला काटि कलमा भरै, किया कहै हलाल।
> साहब लेखा माँगसी, तब होसी कौन हवाल ?

पर-धन पर मन न चलाना।

धन-जैसी खराब चीज और नहीं। इसके प्राप्त करने मे दुःख, रखने मे दुःख और नाश मे दुःख है। धन चिन्ता का आगार और आफतों का भाण्डार है। जिनके पास यह होता है, उनकी चिन्तायें बेतहाशा बढ़ जाती हैं। दिन-रात वे इसी के फेर मे पड़े रहते है और उनकी जिन्दगी सदा खतरे मे रहती है। और तो क्या—सगे नातेदार और स्वयं पुत्र तक धनी की मरण कामना किया करते है। ड्रेगरी नामक विद्वान ने भी कहा है—

"धन की प्राप्ति से हमें उतनी खुशी नहीं होती, जितना कि उसके नाश से हमें दुःख होता है।" प्लूटार्च ने कहा है—"जिनके पास धन होता है, उन्हें उससे कष्ट ही अधिक होता है।" ऐसे अनर्थों के मूल धन को सिवा मूर्ख और अज्ञानियों के और कौन पसन्द करे? और यदि इसे किसी तरह संसार के काम चलाने के लिए अच्छा भी समझ ले, तो भी पराया धन चोरी-जोरी या बेईमानी से हड़प जाना तो महा-अनर्थ और पाप का मूल है। पराया धन हरण करना तो बड़ी बात है, उसके हरण का विचार भी मन मे लाना महा अनर्थकारी है। जो ऐसा विचार भी करते हैं, उनके दोनो लोक बिगड़ जाते हैं, यहाँ लोक-निन्दा होती और दण्ड मिलता है। यदि यहाँ (इस दुनियाँ मे) किसी तरह बच गये, तो वहाँ (दूसरी दुनियाँ मे) तो किसी तरह बच ही नहीं सकते। आपकी बुरी इच्छाओं तक को नोट करने वाला आपके भीतर ही मौजूद है। वह आपके गुप्त-से-गुप्त कामों पर नजर रखता है। विदुर ने कहा है—"पराया धन हरण करने, पर स्त्रियो से व्यभिचार करने और विश्वासी मित्रो के साथ विश्वासघात करने से मनुष्य नष्ट हो जाता है।" "धर्मपद" में लिखा है—"जो हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, जो दूसरों की चीज़, उनके दिये बिना अपहरण करता है, वह इस लोक में ही, अपने हाथ से अपनी जड़ खोदता है।"

अगर धन की लालसा ही हो, तो स्वयं उद्योग करना चाहिये। उद्योगी और मिहनती के पास लक्ष्मी निश्चय ही

दौड़ कर आती है। उद्योगी कभी भी दरिद्री नहीं रहता। अगर बहुत धन भाग्य में न भी लिखा हो, तो भी उद्योगी दरिद्री नहीं रह सकता, इसलिये भूल कर भी पराये धन पर मन न चलाना चाहिये। परद्रव्य लोष्टवत् यानी पर-धन मिट्टी के ढेले के समान समझना चाहिये।

सच बोलना।

सत्य स्वयं परमात्मा है, सत्य के समान न कोई धर्म है, न तीर्थ। सत्य सब धर्मों से ऊँचा है। "वाल्मीकि रामायण" के अयोध्याकाण्ड में लिखा है—"प्राचीन समय में, स्वयं विधाता ने सत्य और अश्वमेध यज्ञ को, तराजू के पलड़ों में रख कर तोला तो उन्हे अश्वमेध यज्ञ से सत्य भारी मालूम हुआ।"

सच्चे का सब कोई विश्वास और सम्मान करते हैं। सत्य की सदा जय होती है. सत्य की नाव पर्वत पर चलती है, सत्य से ही पृथ्वी ठहरी हुई है. सत्य से ही सूर्य्य तपता है. सत्य से ही हवा चलती है, जो कुछ है वह सत्य पर ही ठहरा हुआ है। यही बात एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी कही है—"सत्य और विश्वास संसार-मन्दिर के स्तम्भ खम्भे हैं। जब ये स्तम्भ टूट जायेंगे, तब भवन गिर पड़ेगा और सब चूर चूर हो जायगा।" टिल्टसन महोदय कहते हैं,—"हमें अपने लक्ष्य-स्थान या मंज़िल मक़सूद तक पहुँचने के लिये सत्य ही की राह-पर चलना चाहिये। यह राह सीधी और नजदीकी है; अर्थात् सत्य की राह पर चलने से, हम अपने लक्ष्य पर बहुत जल्दी

पहुँचते हैं।" बॉसट नामक एक विद्वान् कहते हैं—"सत्य एक रानी है, जिसका नित्य-सिंहासन स्वर्ग मे है और उसका निवास परमात्मा के हृदय मे है।" कहाँ तक कहे, सत्य की महिमा संसार के सभी विद्वानो ने खूब लिखी है। सत्य ऐसा है, तभी तो धर्मराज युधिष्ठिर ने अनेक असहनीय कष्ट भोग किये। पाञ्चाली के बारम्बार रोने-गाने पर भी, भीमार्जुन के उत्तेजित करने पर भी, उन्होने सत्य को नहीं त्यागा और सत्य के बल से ही अन्त में उन्हीं की विजय हुई। सत्य के लिये ही हरिश्चद्र ने राज्य, धन और स्त्री-पुत्र तक को त्याग कर, श्मशान-घाट पर चाण्डाल की सेवा स्वीकार की।

सच्चा मनुष्य ही पूर्ण है। सच्चे स्वामी पर ही नौकर की श्रद्धा होती है। मनुष्य मात्र को सचाई की जरूरत है। प्रकृति स्वयं सच्ची है, प्रकृति का अर्थ सच्चा है और जिसमें सचाई है, उसमें प्रकृति का हाथ अवश्य है। सत्य को कितना ही छिपाइये, वह छिपेगा नहीं। अगर दब भी जायगा, तो फिर ऊपर आवेगा और आवेगा।

अँगरेजी मे एक कहावत है—"सत्य और तेल सदा ऊपर रहते है।" सर विलियम हेम्प महोदय कहते है—"सत्य बोतल के काग के समान है। आप काग को पानी मे दबा दीजिये, पर वह ऊपर आये बिना न रहेगा।" सत्य का भी यही हाल है, वह दबा देने पर भी कभी-न-कभी ऊपर आता ही है।

मनुष्य को सदा-सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। सच्चा अगर कभी भूल से या जान कर झूठ भी बोल देता है; तो

उसका वह मिथ्या भी सत्य ही समझा जाता है । जो मिथ्या बोलता है, वह यदि कभी सच भी बोले तो लोग उसे मिथ्या ही समझते है । निश्चय ही सच्चा अपनी घोर विपद् के भी पार हो जाता है । कहा है:—

कृत्यर्थं भोजनं येषा, सन्तानार्थं च मैथुनम् ।
वाक् सत्य वचनार्थाय, दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥

जो मनुष्य प्राण-रक्षा के लिये खाते हैं, सन्तान के लिये स्त्री-संसर्ग करते है और सत्य के लिये बोलते है - वे विपद् के पार हो जाते है । कबीर साहब ने कहा है:—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदय साँच है ताके हृदय आप ॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय ।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माँहि समाय ॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय ।
अहो कबीरा ! साँच गहु, आवागमन नसाय ॥

सारांश—सदा सच बोलो । सच बोलने वाले का दर्जा सबसे ऊँचा है । सत्यवादी परमात्मा का सबसे जियादा प्यारा है । सत्य का परिणाम सदा सुखदाई है ।

आप = भगवान् । शाप = बद्दुआ । काल = मौत । साँचे = सच्चे । साँचा = ईश्वर । जबलगि = जब तक । पार बसाय = बस चले । गहु = पकड़ । आवागमन = आना जाना, जन्मना और मरना । नसाय = बन्द हो, मोक्ष हो जाय ।

सामर्थ्यानुसार दान करना ।

✤

मनुष्य को अपनी सामर्थ्य—श्रद्धानुसार समय पर जरूरत के समय, अवश्य दान करना चाहिये। सामर्थ्य से अधिक देना अथवा समय चूक कर बिना समय देना अच्छा नही। समय की एक कौड़ी, बिना समय के रुपये से अच्छी है । यौवन, जीवन, वित्त, छाया, लक्ष्मी और प्रभुता ये चञ्चल हैं आज हैं, कल का भरोसा नही। मरने पर केवल धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है। और सब तो शरीर के साथ ही नाश हो जाते हैं; इसलिये मनुष्य को हर दिन कुछ न कुछ दान करना चाहिये। कौन जाने किस समय घड़ी के पैण्डूलम का हिलना बन्द हो जाय, दम निकल जाय ? दानी की इस लोक में सत्कीर्ति होती और मृत्यु के बाद उसे स्वर्ग मिलता है। हरिश्चन्द्र, कर्ण, विक्रम, नौशेरवाँ और हातमताई आज इस असार-नापायेदार दुनिया में नही हैं, उनकी हड्डियो का भी पता नही है; पर उनका विमल सुयश आज तक वर्तमान है और प्रलयान्त तक इसी तरह अजर और अमर रहेगा। 'हितोपदेश" मे लिखा है—

> अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
> गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

मैं कभी बूढ़ा न हूँगा और न कभी मरूंगा—यह समझ कर बुद्धिमान् विद्या और धन की चिन्ता करे और मेरे बाल

मौत ने पकड़ रक्खे हैं—यह समझ कर धर्म का अनुष्ठान करे। इसी टक्कर की बात हरडर नामक एक यूरोपियन विद्वान् ने भी कही है—

"Seek knowledge, as if thou wert to be here for ever, virtue as if death already held thee by the bristling hair".

यह समझ कर, कि गोया तू सदा ही इस जगत् में रहेगा विद्यार्जन कर, मौत ने तेरे बाल पकड़ रक्खे है, यह समझ कर, धर्म का अनुष्ठान कर।

भाइयो! इस बात को हरदम याद रक्खो कि, शरीर सदा रहने वाला नहीं, धन और सम्पत्ति भी सदा रहने वाले नहीं, मौत सिर पर खड़ी घात देख रही है, इसलिये भला चाहते हो, तो धर्म करो, धर्म करो, दूसरों का दुःख दूर करो। मरने पर यही मित्र—धर्म साथ जायगा और सब मित्र जीते जी के है। कहा है, परदेश मे विद्या मित्र है, घर मे स्त्री मित्र है, रोगी की औषधि मित्र है और मरे हुए का एक मात्र धर्म मित्र है।

अज्ञानी लोग समझते हैं - दान-धर्म और भजन-उपासना का समय बुढ़ापा है। यह उनकी कैसी भयङ्कर नादानी है! रोज ही देखते हैं कि, काल न बूढ़े को देखता है, न जवान को और न बालक को। वह जिसे पाता है, उसे ही उठा ले जाता है। इसलिये बचपन से ही दान-धर्म और भजन उपासना करनी चाहिये। ध्रुव और प्रह्लाद ने, बचपन मे

ही, भगवद्भजन किया था । जो अब तक नहीं चेते है, वे अब चेत जायँ । कहा है—

"पहली अवस्था मे विद्या, दूसरी मे धन और तीसरी मे धर्म का सञ्चय नही किया, तो चौथी मे क्या करोगे ?

"जब तक शरीर निरोग है, मृत्यु दूर है, तब तक अपनी भलाई के लिये परोपकार-पुण्य सञ्चय कर, प्राणनाश होने पर क्या करेगा ?

"हाथ दान-रहित है, कान वेद शास्त्र के विरोधी है, नेत्रो ने साधु-महात्माओ के दर्शन नहीं किये, अन्याय से कमाये हुए धन से पेट भरा है और उससे सिर ऊँचा हो रहा है- रे रे स्यार ! ऐसे निन्दित—घृणित शरीर को शीघ्र त्याग" ।

क्या गरीबों को भी दान करना चाहिये ?

दान-धर्म मे गरीब अमीर की कुछ कैद नही है । जिसके पास कौड़ी हो, वह कौड़ी ही दान करे, जिसके पास पैसा हो वह पैसा ही दे, जिसके पास रुपये और अशर्फियाँ हो, वह रुपये और अशर्फियाँ ही दान करे । निर्धन की एक कौड़ी करोड़पति की अशर्फियो से अधिक फलदायी होती है । राजा भोज ने पूर्व जन्म मे एक अतिथि को एक रोज अपना भोजन खिला देने से ही राज्य औ अटूट सम्पति पाई थी। सोचिये तो सही, एक एक पाई रोज दान करने से एक बरस मे

३६० पाई, दस वर्ष मे ३६०० और पचास वर्ष मे सहज मे १८००० पाई जमा हो जाती है। विद्या, धन और धर्म के मामले मे इस बात का खूब खयाल रखना चाहिये।

भाइयो! एक-एक ईंट से महल खड़ा हो जाता है। एक-एक बूँद से घड़ा भर जाता है। घड़ा ही क्या—एक-एक बूँद से महासागर और एक-एक छोटे कण से आपकी यह पृथ्वी बनी है। एक-एक मिनट से अनन्त युग बन गये है। दया पूर्ण छोटे-छोटे काम और प्रेम पूर्ण छोटे-छोटे शब्द हमारी इस पृथ्वी को स्वर्गीय नन्दन कानन बना देते है। महात्मा विदुर ने कहा है—"जो समर्थ और बलवान होने पर क्षमा करता है और निर्धन होने पर दान करता है, वह स्वर्ग के भी सिर पर रहता है। जो धनी होकर दान न करे और निर्धन होकर तप न करे, उसे गले मे पत्थर बॉध कर डुबा देना चाहिये।"

सज्जनो का स्वभाव होता है, कि वे आप तो दुःख पाते हैं, पर दूसरो का दुःख दूर करते है; उनसे दूसरो का दुःख देखा ही नही जाता। उन्हे एक रोटी मिलती है, तो उसमे से आधी अपने भूखे-पड़ौसी को दे देते है और ऐसे भी लोग इस संसार मे है, जो अपने पास लाखो-करोड़ो होते हुए भी दूसरो का दुःख देखा करते है; पर उन्हे अपने भाइयो पर दया नहीं आती—उनका पत्थर समान हृदय जरा भी नही पसीजता। वे रात दिन निन्यानवे के फेर मे पड़े रहते है। उन्हें रात-दिन धन बढ़ाने की ही चिन्ता रहती है। दान के

नाम से उनका कलेजा काँप उठता है। याचक उन्हें शत्रु जैसे दीखते हैं; पर यह उनकी नासमझी है। वे धन का स्वभाव नहीं जानते। वे समझते हैं, कि हम और हमारी औलाद सदा सर्वदा धनी ही बने रहेंगे। दान करने से, दूसरों को देने से धन घट जायगा। शेख सादी ने कहा है:—

जकाते माल बदर कुन, के फ़ज़लेऐ रज़रा।
चो बाग़वाँ बबुर्द, बेशतर दिहद अंगूर॥

(दान करने से धन घटता नहीं. बढ़ता है। अंगूरों की शाखें काटने से और जियादा अंगूर आने हैं।)

यद्यपि हमारा भारत अब दरिद्र हो गया है—अब इस देश मे धन की नदियाँ नहीं बहतीं; फिर भी इस देश में थोड़े-बहुत धनी हैं ही, पर आज-कल के धनी प्रायः अशिक्षित और मूर्खराज रहते हैं। यदि वे दान भी करते हैं, तो उनसे जितना उपकार होना चाहिये, उतना उपकार नहीं होता। वे शिक्षित न होने से, दान करने के नियम-कायदों को नहीं जानते कुपात्र और सुपात्र का विचार नहीं करते। लूथर ने कहा है— "हमारा मालिक खुदा मूर्खों को धन देता है, जिन्हें धन के सिवा और कुछ नहीं देता, अर्थात् जिन्हे धन देता है, उन्हे विद्या, बुद्धि, सज्जनता, उदारता प्रभृति सद्गुणों से कोरा रखता है।" इसी वजह से आजकल धनी या तो दान करते ही नहीं; यदि करते हैं तो ऐसों को दान करते हे जो सण्डे-

मुसण्डे और नीच कुकर्मियो के सरदार है जिनके यहाँ लक्ष्मी का अभाव नही है, जो दानियो के धन से गो-हत्या कराते, वेश्याओ को भोगते और उन्हे नचाते है अथवा और विविध प्रकार के कुकर्म करते है। बहुत से दानी उनको दान देते है, जो रात-दिन उनकी खिदमत और खुशामद करते है, उनके पीछे-पीछे फिरा करते हैं, और जो या तो कुछ-न कुछ धर रखते हैं, अथवा कमा सकते हैं। कुछ धनी केवल अखबारो मे प्रशंसा कराने के लिये ही अपना रुपया बर्बाद करते हैं। इस तरह जो धन नष्ट किया जाता है, उसका फल कुछ नही मिलता और बाज़-बाज समय उलटे पाप का भागी बनना पड़ता है। हमारे पास स्थान का अभाव है, इसलिये हम इन बातो को और भी बढ़ा-चढ़ा कर लिखने मे असमर्थ है। "अक़्लमन्दाँरा इशारा काफ़ी अस्त।" बुद्धिमान् इशारे मे ही समझ जाते है। धन उन्हे देना चाहिये, जो वास्तव मे गरीब या मुहताज है; चाहे वे राह के भिखारी हो, चाहे सफेद पोश और महलो के रहने वाले हो। हजारो परिवार धन के अभाव से प्राण त्याग कर देते है, पर लज्जा के मारे किसी के दरवाजे नही जाते। अमेरिकन धनकुवेर कारनीगो और रॉकफेलर प्रभृति सदा ऐसे लोगो का खूब ध्यान रखते थे—ऐसो को खोज-खोज कर धन-दान करते थे और उनको हर तरह सुखी बनाने की फिक्र रखते थे। वजह यह थी, कि लोग शिक्षित भी थे और धनी भी थे। बहुत लिखने से क्या, धन उन्हे देना

चाहिये, जिनको उसकी सच्ची जरूरत हो। जिनके पास है, उन्हें देने से कोई लाभ नहीं। कहा है:—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु, वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु, वृथा दीपो दिवापि च॥
मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः, क्षुधार्ते भोजनं तथा।
दरिद्रे दीयते दानं, सफलं पाण्डुनन्दन!
दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनं।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्य किमौषधैः?

समुद्र मे वर्षा का होना वृथा है अघाये हुए को भोजन कराना वृथा है, धनवान् को धन देना वृथा है और दिन मे दीपक जलाना वृथा है।

मरुभूमि मे वर्षा होने से लाभ है; भूखे को भोजन कराना सफल है; उसी तरह हे पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर! दरिद्र को दिया दान सार्थक है।

हे कुन्तीपुत्र! दरिद्रो का भरण-पोषण कर। धनियो को धन मत दे। रोगी को दवा हितकारी है; निरोग को दवा से क्या लाभ?

वृन्द ने भी कहा है—

दान दीन को दीजिये, मिटै दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर॥

अघाये हुए = पेट भरे हुए। दीन = निर्धन। दरिद्र = निर्धनता। पीर = तकलीफ। जाके = जिसके।

आजकल के दानियों में एक और दोष है। वे लोग अपने गाँव वालों, अपनी जान पहचान वालों या अपनी लल्लोचप्पो करने वालों को ही जियादातर देते हैं,लेकिन यह संकीर्ण-हृदयता है। उदारों के लिये कोई पराया नहीं, सारा जगत् उनका कुटुम्ब है। कहा है:—

अयं निजः परः वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है, ऐसा विचार छोटी समझ-वाले ही करते हैं; उदारचरितों के लिये तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है।

जब सुकरात से पूछा गया, कि तुम किस देश के निवासी और नागरिक हो, तब उसने जवाब दिया—"सारे संसार का।" सचमुच ही महात्मा पुरुष सारे जगत् को अपना देश, हर नगर को अपना नगर, हर आदमी को अपना नातेदार समझते हैं। जो निर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी है वे ही किसी को अपना और किसी को पराया समझते हैं। महापुरुष सब का ही भला करते हैं और उसमें भी खूबी यह, कि बिना कहे, बिना जाँचे ही परोपकार करते हैं; यानी सत्पुरुष किसी के कहने-सुनने, अनुनय-विनय करने या खुशामद करने से किसी का, भला नहीं करते। उनका तो ध्यान ही हर किसी की भलाई पर रहता है। वृन्द कवि ने कहा है:—

बिना कहेहुँ सत्पुरुष, पर की पूरैं आस।
कौन कहत है सूर कौं, घर-घर करत प्रकाश ।।
जो सब ही कों देत है, दाता कहिये सोय।
जलधर बरसत सम-विषम, थल न विचारत कोय ।।

सत्पुरुष बिना कहे ही पराया दुःख दूर करते हैं। सूरज से घर-घर में प्रकाश करने को कौन कहता है? जो सभी को देता है वही दाता है। ऐसा दाता मेघ है, क्योंकि वह सम और विषम स्थल का विचार न करके जल बरसाता है।

एक बात का और ध्यान रखना चाहिये। वह यह है कि जिसे कुछ साहाय्य करना हो उसे उसकी जरूरत के वक्त देना चाहिये। समय का दिया हुआ एक पैसा, बिना समय के रुपये से अच्छा होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने ॥

परस्त्रियों की चर्चा।

पर स्त्रियों की चर्चा न स्वयं करनी चाहिये और दूसरो से सुननी चाहिये। इनकी बातें करने और सुनने से ही मद आ जाता है और फिर अनर्थों की राह खुल जाती है। इसीलिए विद्वानो ने खराब किताबों और दुष्टों की सङ्गति से दूर रहने की सलाह दी है। स्त्रियों के रूप, यौवन और हाव-भाव की वर्णना सुनने और पढ़ने से मन शीघ्र ही विचलित हो जाता है। इस संसार में ऐसे लोग बहुत थोड़े है, जो कुत्सित रूप-

वर्णना सुनकर, अपने हृदयों को निर्विकार रख सके। एक बार हमारा विचार—"Mysteries of the court of London" नामक अङ्गरेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके या कराकर प्रकाशित करने का हुआ। हमने उसकी दो जिल्दे पढी। पढ़ कर हमारे मन की जो बुरी दशा हुई, उसे लिख कर जाता नही सकते। उसमें इस तरह की कुत्सित रूप-वर्णना है, जिसे पढकर दिल न बिगडे, ऐसे पाठक हमे बहुत कम दीखते हैं। उस किताब ने यूरोप मे लाखो नवयुवक और नवयुवतियो को भ्रष्ट कर दिया। मन्द स्त्री-चरित्र सुनने से पैशाचिक प्रवृत्ति उत्तेजित हो ही जाती है—लोग सत्यानाशी राह मे क़दम धर ही देते है, इसी से हमने उस पुस्तक को प्रकाशित न किया। यद्यपि हमको उससे धन लाभ होता, पर और तो हजारों लाखों घर नष्ट हो जाते—लाखो सती-साध्वी कुलटा हो जातीं—लाखो अपने पतियो के कुपथगामी हो जाने से विरह-वेदना मे जलती—लाखो नौजवान चरित्रभ्रष्ट होकर दो कौड़ी के हो जाते। ऐसी भ्रष्ट पुस्तकों के शौक़ीनो की कमी नहीं! पर जिन्हे अपना लोक परलोक बनाना हो, जिन्हे अपने जीवन का बेड़ा सुख से पार करना हो, वे ऐसी पुस्तको से सदा काल-भुजङ्ग की तरह दूर रहे। परस्त्रियो की रूप-वर्णना सुनकर ही लोग पहले भी नष्ट हुए है। इन्द्र अहिल्या की और रावण सीता की रूप-वर्णना सुनकर ही उस ओर झुके। परिणाम जो हुआ, सो सभी को मालूम है। न रावण सीता की रूप-

माधुरी की बातों पर कान देता, न उसका पतन होता। पहले मनुष्य परस्त्री के रूप-लावण्य की बात सुनता है, पीछे उसका मन उसी ओर खिंच जाता है। उसके बाद वह न्याय नीति और धर्म को तिलाञ्जलि देकर प्राप्त करने की धुन मे लग कर विविध प्रकार के उपाय करता है। बस, इस तरह उसके सर्व-नाश की राह साफ हो जाती है। "धर्म-पद" मे लिखा है—'जो अविचारी परस्त्री की अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते है--(१) अपयश, (२) निद्रानाशक चिन्ता, (३) दण्ड और (४) नरक।"

संसारी जीव अपना सर्वनाश न करे, अपने सुखमय जीवन को दुःखमय न करे, इसी गरज से राजर्षि भर्तृहरि बुद्धि-मानो को परस्त्री की चर्चा से ही अलग रहने की शिक्षा देते हैं; क्योंकि आफत की जड इनकी चर्चा ही है। हम भी पाठको को इस उपदेश पर आँख बन्द करके चलने की सलाह देते हैं।

तृष्णा का प्रवाह तोड़ना।

तृष्णा सब दुःख और आफतो की मूल है। जिसे तृष्णा नहीं है, वह निर्धन होने पर भी राजाओ का राजा और सम्राटो का सम्राट् है। तृष्णाहीन की जगत् मे कौन बराबरी कर सकता है? तृष्णा ही मनुष्य को नीचे-से-नीचा बनाती है, तृष्णा ही मनुष्य से पराई चाकरी कराती है,तृष्णा ही मनुष्य से नीच-से-नीच धनियो की खुशामदें कराती है, तृष्णा ही मान का

नाश कराती है; तृष्णा का दास ही अभिमानियों की खोटी-खरी सुनता है, क्षुद्र लोगों को हाथ जोड़ता है और उनके पैर पड़ता है। तृष्णार्त्त क्या कर्म नहीं करता? तृष्णा का सेवक, तृष्णा के वश मे हो, दुर्गम पर्वत और अगम्य वनो मे फिरता है, समुद्र मे गोते लगाता है और रात रात भर श्मशान मे जाप करता है, पर तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। तृष्णा का स्वभाव है, कि वह दिन-दिन बढ़ती है। कुछ भी पास न होने पर, सौ रुपये की इच्छा होती है; सौ हो जाने पर हजार की, हजार हो जाने पर लाख की और लाख हो जाने पर करोड़ की, करोड़ हो जाने पर राज्य की, राज्य मिल जाने पर साम्राज्य की और साम्राज्य मिल जाने पर त्रिलोकी के आधिपत्य की इच्छा होती है। इन्द्र को स्वर्गराज्य भोगते करोड़ो क्या अरबो—खरबो वर्ष हो गये, पर अब भी उसकी इच्छा स्वर्गराज्य त्यागने की इच्छा नहीं होती, तब मनुष्य बेचारा किस बाग की मूली है?

तृष्णा के फेर में पड़ कर मनुष्य इस लोक म क्षण-भर भी सुख नहीं पाता; इस दुष्प्राप्य मानव-शरीर को वृथा नष्ट करता और बारम्बार जन्म-मरण के बन्धन मे पड कर सदा दु:ख भोगता है। फिर भी न जाने मनुष्य क्यों तृष्णा को नहीं त्यागता? अज्ञानी इतना नहीं समझता कि, जितना मैंने पहले जमा कराया है, उतना मुझे अवश्य मिलेगा। यदि मैं न लूँ, तो भी मुझे जबरदस्ती लेना पड़ेगा और जो मैने जमा नहीं कराया है, वह मुझे किसी तरह—हजार भटकने-भ्रमने और नीच से

नीच कर्म करने पर भी न मिलेगा। सादी साहब ने कहा है—
"जो तेरे भाग्य में नहीं है, वह तुझे हरगिज़ न मिलेगा;
और जो तेरे भाग्य मे है, वह तुझे जहाँ तू होगा वहीं मिल
जायगा। सिकन्दर अमृत की तृष्णा मे अँधेरी दुनियाँ मे गया,
किन्तु वहाँ पहुँच जाने पर भी, वह अमृत को न चख सका"
मतलब यही है कि, प्रारब्ध का लिखा हर जगह बिना प्रयास,
बिना उद्योग के ही मिल जाता है और प्रारब्ध मे नहीं है, वह
हजार हजार चेष्टाएँ करने से भी नहीं मिलता। इसलिये
मनुष्य को तृष्णा—इच्छा—त्याग कर सन्तोष करना चाहिये।
सन्तोष मे ही सच्चा सुख है। सन्तोषी के बराबर इस जगत् मे
कोई सुखी नहीं। सन्तोष ही सबसे बड़ी दौलत है। जिसे
सन्तोष नहीं, तृष्णा है वह अरब-खरब और सारे संसार का
स्वामी होने पर भी सुखी नहीं।

मनुष्य-जीवन कोई लम्बा-चौड़ा नहीं। यह बदली की
छाया और बिजली की चमक के समान क्षणस्थायी है। मनुष्य-
जीवन खान खोदने वाले के चकमक पत्थर के पहिये की चिन-
गारी है। जब तक पहिया घूमता है, रोशनी है; जहाँ पहिया
ठहरा कि अन्धकार है। ऐसे क्षणिक जीवन को तृष्णा के भुलावे
मे आकर नष्ट करना और ईश्वर ने जो कुछ दिया है, उसको
सुखपूर्वक न भोगना, महा अज्ञानता है। तृष्णा का ओर-छोर
नहीं; एक इच्छा पूरी नहीं होती और दूसरी सामने आ
जाती है। इस तरह इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मृत्यु

झट मनुष्य को अपने पंजो मे दबाकर ले भागती है। इसलिये बुद्धिमान् वही है, जो तृष्णा को सन्तोष से शान्त करके, परमात्मा की भक्ति और परोपकार मे अपना अमूल्य और क्षणिक जीवन अतिवाहित करे। कहा है:—

क्रोधो वैवस्वतो राजा, तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनुः, सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र का बगीचा है।

तृष्णा की शान्ति का उपाय मोटा मोटी सन्तोष है। सन्तोष तभी होता है, जब मनुष्य को ज्ञान होता है, अतः ज्ञान ही तृष्णा को शान्त करने वाला है। विषयो के भोगने से तृष्णा बढ़ती है और विषयो के त्यागने से तृष्णा शान्त होती है। अगर आप तृष्णा के दोषो को जान कर तृष्णा से दूर रहना चाहते हैं, तो आप मन को वश में कीजिये। मन के वश मे हो जाने से इन्द्रियाँ आप ही काबू में हो जायँगी। इन्द्रियो के वश मे होने से इन्द्रियो के विषय—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द की चाह न रहेगी। जब इन विषयो की चाह न रहेगी, तब किसकी चाह रहेगी? अर्थात् किसी भी पदार्थ की चाह न रहेगी। जब चाह ही न रहेगी, तब तृष्णा कैसी? विषयों के भोग के लिये ही तो मनुष्य धन की तृष्णा करता है। जब विषयो को भोगने की इच्छा नहीं, तब धन की क्या जरूरत? इसलिये तृष्णा नाश करने के लिये आप अपनी इन्द्रियो को वश में कीजिये। फिर देखिये,

आपको इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग से अधिक सुख मिलता है कि नहीं। जिसने इन्द्रियों को जीत लिया, उसने जगत् को जीत लिया। जिसने इन्द्रियों को स्वाधीन कर लिया है, वही सच्चा स्वाधीन है। जो स्वाधीन है, वह तृष्णा क्या—किसी के भी अधीन नहीं है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है—घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है, जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे दान देने से अधिक फल मिलता है।

कबीर साहब ने कहा है:—

कबिरा तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोरि।
पैंड़-पैंड पाछे परे, लागै मोटि खोरि॥

सारांश—तृष्णा को मुँह न लगाइये। मुँह लगाने से ही यह पीछे पड़ती है। इसके नाश के लिये, आप ज्ञान का सञ्चय कीजिये और ज्ञान-बल से मन और इन्द्रियों को वश में करके सदा सन्तोष से प्रीति कीजिये।

गुरुजनों के प्रति नम्रता।

सुखाभिलाषी मनुष्यों को अपने माता-पिता गुरु आदि बड़ों के आगे नम्र रहना चाहिये और सहनशीलता से काम लेना चाहिये। रूसो नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"सहनशीलता सीखना ही बालक का सर्व प्रथम और परम आवश्यक पाठ है।" हमारे शास्त्रों में ऐसे रत्नों के बहुत

उदाहरण है, जिन्होंने गुरुजनो की सहने और उनकी आज्ञा पालन करने मे हद ही करदी। उन सब में श्रीरामचन्द्र जी सबसे आगे है। उनके समान नम्र और सहनशील पुरुष बहुत कम हुए हैं। किसी मे दो उत्तम गुण थे, तो किसी मे चार या छः, पर रामचन्द्रजी तो सभी उत्तम गुणों के आधार थे, इसी से आप मर्य्यादापुरुषोत्तम कहलाते है। चाणक्य मे लिखा है—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता।
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयिता चित्ते अति गम्भीरता॥
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता।
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव!॥

धर्म मे अभिरुचि, मुख मे मधुरता, दान मे उत्साह, मित्र के साथ निश्छल व्यवहार, गुरुजनो के साथ नम्रता, चित्त में गंभीरता, आचार मे पवित्रता, गुणो में रसिकता, शास्त्रज्ञान, रूप की सुन्दरता और शिवजी की भक्ति—ये सब गुण राघव! आप ही मे है।

नीच लोग अपने माँ बाप और उस्ताद या गुरु अथवा बड़े भाई आदि से सदा रूखा और कड़ा बर्ताव करते है, पर महापुरुष गुरुजनो के आगे सदा नम्र रहते है और उनकी बुरी-भली सभी बातो को बर्दाश्त करते है। रामचन्द्र ही थे, जिन्होने पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ चौदह साल तक वन-वास के कठोर कष्ट सहन किये। अपने बड़े भाई युधिष्ठर के

लिये भीम, अर्जुन और नकुल सहदेव ने भी कम कष्ट नहीं सहे। ऐसे आदर्श संसार के इतिहास मे और कहाँ हैं ?

वृन्द कवि ने कहा है'—

भले बुरे गुरुजन वचन, लोपत कबहुँ न धीर।
राज-काज को छाँडिके, चले विपिन रघुवीर॥
गुरु बच जोग अजोगहु, करिय भ्रम बिसराय।
राम हते जमदग्नि कै, वचन सहोदर मय॥

धैर्य्यवान पुरुष गुरुजनो की भली और बुरी बातो को लोप नही करते। पिता की इच्छा से रामचन्द्रजी राज्य छोड़ कर वन को चले गये।

माता-पिता आदि बड़ो की उचित और अनुचित आज्ञा का भ्रम छोड़ कर पालन करना चाहिये। परशुरामजी ने पिता जमदग्नि की आज्ञा से सहोदर भाइयों और माता के प्राण नष्ट कर दिये।

प्राणिमात्र पर दया।

संसार मे दया के समान और गुण नही है। जो दयालु स्वभाव है, वह देवता है। जिसमे दया नही, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नही—राक्षस है। दयालु पुरुष समझते है कि, जैसे हमे अपने प्राण प्यारे हैं, वैसे ही दूसरो के भी है। चींटी अगर हमारे पैर के तले दब जाय, तो उसे

उतना ही कष्ट होगा, जितना हमें हाथी के पैर तले दबने से होगा। दया दो तरह से की जा सकती है—(१) दूसरों के दिल को अपने समान समझ कर, उनका दिल न दुखाने से, और (२) जो दुःखी हैं; उनका दुःख दूर करने से। अगर मनुष्य दूसरों के कष्ट और अभावों को दूर न कर सके, दूसरों की मदद न कर सके तो कम-से-कम दूसरों का दिल तो न दुखावे, किसी को अपनी जबान और अपने शरीर से तकलीफ तो न दे। यह भी दया ही है।

आप बालकों को असमर्थ समझ कर उन पर दया कीजिये। अपनी सामर्थ्य भर उनकी इच्छा पूरी कीजिये; उनसे कठोर बात न कहिये। उनको प्यार कीजिये—यह भी दया ही है।

आप मातृहीन, पितृहीन अनाथ बालकों पर यह समझ कर दया कीजिये, कि उन बेचारों ने अपने माता-पिता को देखा ही नहीं। उनको अपने ही बालक समझ कर, उनके भरण-पोषण और शिक्षा प्रभृति का प्रबन्ध कर दीजिये।

आप स्त्रियों पर यह समझ कर दया कीजिये, कि वे अबला हैं। उनमें स्वयं कमाने और पैसा लाने की शक्ति नहीं। वे बेचारी जन्म से ही पराधीन और परमुखापेक्षी हैं. उनको यथासामर्थ्य गहने, कपड़े और अन्य आवश्यक पदार्थ दीजिये। उनकी इच्छापूर्ति के लिये कुछ नकद भी दीजिये। मन में समझ लीजिये, जैसा जी हमारा है वैसा ही उनका भी है। घर की बहुओं पर यह समझ कर दया कीजिये, कि वे

हमारे भरोसे ही अपने माँ-बापों को छोड़ कर चली आई हैं। यदि हम ही इनसे कड़वी बातें कहेंगे; इनका दिल दुखायेंगे, इनकी इच्छाये पूरी न करेंगे तो ये बेचारी क्या करेंगी? अगर आज हम इन्ही की तरह होते, तो हमारी क्या हालत होती? घर की बेवाओ पर सबसे अधिक दया कीजिये, क्योंकि वे पतिहीना है। संसार मे पति ही स्त्री को सब तरह के सुख देने वाला है। आप उनको घर की और औरतो की अपेक्षा उत्तम वस्त्र दीजिये: उनकी उचित इच्छाओ को सबसे पहले पूरी कीजिये, रोग होने पर सबसे पहले उनका इलाज कराइये; भूल कर भी उनसे कठोर वचन न कहिये। यदि उनसे कोई गलती भी हो जाय, तो उनकी नादानी समझ कर क्षमा कर दीजिये; मीठी-मीठी बातो से उन्हें समझा दीजिये, कि वे फिर वैसी गलती न करें। घर की और स्त्रियो से भी कह दीजिये, कि उनको सबसे पहले खिलावे और सबसे उत्तम वस्त्र दें, भूल कर भी उनका दिल न दुखावें। ऐसा कीजिये जिससे उन्हें पति का अभाव बहुत ही कम अखरे। ये सब काम दयालुता के ही हैं। घर की औरतो के बाद बाहर की औरतों का हक़ है। यथासामर्थ्य मन-वच और कर्म से उनके भी दुःख दूर कीजिये।

देश के शासकों पर भी दया कीजिये। उन बेचारों के कन्धो पर बड़ा बोझा है— उन्हे बहुत काम करना पड़ता है। उनको ज़रूरत के समय सहायता दीजिये, ताकि उनकी कठि-

नाइयाँ दूर हों। अगर उनसे भूल हो जाये, तो शीघ्र ही उनकी बदनामी पर कमर न कस लीजिये ! मन में सोचिये-- यदि हम स्वयं इस जगह होते, तो हम से भी ऐसी भूल होती या न होती।

आप पुस्तक-लेखकों पर दया कीजिये। उनकी भूल नजर आते ही, उनकी निन्दा पर कमर न कस लीजिये। उनकी गलतियों या त्रुटियों पर ही नजर गड़ा कर, उनकी गर्दनों पर कलम-कुल्हाड़ी चलाने को तैयार न हो जाइये। मन में जरा इन्साफ़ कीजिये, कि अगर आपकी कृति पर कोई दूसरा कलम-कुल्हाड़ी चलावे या वाग्बाण छोड़े- तो आपकी क्या दशा होगी ? आपका दिल दुखेगा या नहीं ? साथ ही इस बात का भी विचार कीजिये, कि हम से भी भूल और गलतियाँ होती हैं या नहीं, हमारे कामों में भी त्रुटियाँ रहती हैं या नहीं। अगर आपका आत्मा कहे, कि बेशक हम से भी भूलें होती हैं, हमारे काम भी सर्वथा दोषहीन नहीं होते; तब आप ही सोचिये, कि आपको दूसरों की निन्दा करने या धूल उड़ाने का क्या अधिकार है ? अगर आप यह कहें कि, हम से भूलें तो होती हैं, पर औरों से कम, तब मन में समझिये कि ऐसे भी हैं; जिनसे आपसे भी कम भूलें होती हैं। अगर वे आपकी धूल उड़ायें, आपकी गर्दन कलम-कुल्हाड़ी चलायें तो आपको कष्ट होगा कि नहीं। अगर आपका आत्मा कहे कि दुःख तो हमें भी जरूर ही होगा, तब इस

हिसाब से भी आपको दूसरो के दोषो पर हँसी न उड़ानी चाहिए। गोल्डस्मिथ महोदय कहते हैं--"जो परले सिरे के मूर्ख है, वे ही सदा दूसरों की मूर्खता की बातों पर ठट्ठे उड़ाया करते हैं।" लेङ्गविन महाशय कहते हैं—"मूर्ख दूसरों के दोष पकड़ सकते है, पर वे स्वयं उनसे अच्छा काम नहीं कर सकते।" निस्सन्देह जो दुष्टस्वभाव है, जो निष्ठुर हृदय हैं, वे ही दूसरो के ऐब ढूँढ़ा करते हैं और उनकी बदनामी उड़ाने मे अपना सारा जोर लगा देते है। जो सज्जन है, सचमुच ही विद्वान् है, वे अव्वल तो गुणो को देखते है, दोषो पर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं; यदि दोष नजर तले आ भी जाते है; तो वे उनको क्षमा कर देते हैं; क्योंकि महापुरुषों का तो स्वभाव ही होता है, कि वे पराये औगुणो को दबाते और गुणो को प्रकाशित करते हैं। जिनके दिलो में ईर्षा, द्वेष, मत्सर, क्रोध प्रभृति दुर्गुण होते है, वे ही बेचारे लेखकों का दिल दुखाया करते है। वे अपने मन मे जरा इस बात का भी विचार करें, कि आरम्भ मे क्या वे आज जैसे ही थे। हमने अपनी आँखो से देखा है, कि जो लोग आज-दिन अपने तईं साहित्य के बादशाह समझते हैं, उनकी आरम्भ-काल की लिखी पुस्तकें किसी भी काम की नही। जिस तरह लिखते-लिखते वे आज साहित्य के बादशाह बन गये हैं—दूसरे भी, कोशिश करने से, वैसे ही हो जायँगे। हमने देखा, कि एक शख्स प्रत्येक लेखक की-पुस्तको की धूल उड़ाया करता था।

एक दफा उसे भी धूल उड़ाने वाला मिल गया; फिर तो मियाँजी को दिन में तारे दीख गये। आपको अपनी इज्जत बचानी कठिन हो गई। मेरे इतना कागज काला करने का यही मतलब है, कि आप दुष्टों की सी चाल न सीखें—आप सब पर दया करें, क्यों कि ये काम निन्द्य और सज्जनों के स्वभाव के विरुद्ध हैं—ऐसा काम शराफत के बर्ख़िलाफ़ है। जो अपने से नीचे वालों पर दया करता है, वही सच्चा महात्मा है।

पाश्चात्य विद्वानो ने ऐसे लोगों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा है। उसमे से दो-एक विद्वानों के कथन हम अपनी अनुभव की हुई बातों के प्रमाण मे लिख देना अनुचित नहीं समझते; नहीं तो बहुत से महापुरुष यह कहने लगेंगे, कि ये लेखक महाशय अपनी रक्षा के लिये ऐसा कहते हैं। कोलरिज महाशय कहते हैं,—"ग्रन्थों के गुण-दोष-निरीक्षक अक्सर वे लोग हैं, जो कवि, इतिहास-लेखक या जीवनी लिखने वाले होना चाहते थे; पर जब उन्होंने सब तरह से अपनी क्षमता की परीक्षा करली, उन्हे सफलता न हुई, तब परछिद्रान्वेषी बन गये।" उन्होंने सोचा,—अगर यों नाम न हुआ तो इस तरह ही नाम कमाये। शैली महाशय लिखते है—"चन्द लोगों को छोड़ कर, अधिकांश समालोचक आलसी और दुष्ट लोग हैं। जिस तरह चोर जब चोरी करने मे सफल नहीं होता, तब वह चोर पकड़ने वाला हो जाता है,

उसी तरह जिसे ग्रन्थ लिखने में सफलता नहीं होती, वह पर-छिद्रान्वेषी—पराये दोष ढूँढ़ने वाला बन जाता है।"

आपको ग्रन्थ-प्रकाशकों पर भी दया करनी चाहिये। आप नहीं समझते, प्रकाशक कितनी हिम्मत करके, अपने रुपयों को काग़ज़ प्रभृति में लगा देते हैं। बहुत से प्रकाशक ऐसे भी होते हैं, जो पैसा पास न होने पर, जहाँ-तहाँ से माँग-ताँग कर अथवा स्त्री का जेवर गिरवी रख कर किसी पुस्तक को प्रकाशित करने का साहस कर बैठते हैं। यदि वैसे प्रकाशक पर आप हाथ साफ करने लगें, दुर्भाग्य से लोग आपकी बात मान कर बेचारे की पुस्तक न खरीदें, तो उसकी कैसी दुर्गति हो? आपकी लिखी पुस्तक उसने नहीं ली, यही अपराध किया है न? पर भाई! यह तो कोई अपराध नहीं। शायद आपके देने लायक रुपया उसके पास न हो—अथवा और ही कोई वजह हो। पर क्या इसे आप अपने प्रति अपराध समझते हैं? आप बाजार में कोई चीज खरीदने जाँय, दूकानदार के दिखाने और कहने-सुनने पर भी आप उसे न लें, और वह आपको गालियाँ दे तो क्या आप उसकी गालियों का बुरा न मानेंगे? आप उस दूकानदार को अन्यायी नीच, प्रभृति न कहेंगे? वास्तव में दूकानदार को वैसा करने का कोई अधिकार नहीं है। मन में आई चीज ली, मन में आई न ली। बस, यही बात अपने और प्रकाशक के दर्म्यान समझिये। आप उस बेचारे पर दया कीजिये उसकी हानि न कराइये! खुदा न ख्वास्ता!

उसकी किताब रुक गई, रक़म एेड हो गई, तो बेचारे की कैसी बुरी दशा होगी। अगर आप उस प्रकाशक की जगह प्रकाशक होते, और वह अपनी नीचता से आपके साथ वैसा ही सलूक करता, जैसा कि आप कर रहे है, तब आपको दुःख होता कि नहीं; जरा अपनी छाती पर हाथ धर कर अपने अन्तरात्मा से पूछिये तो सही। अगर उसने बुरी पुस्तक प्रकाशित की है, उससे साहित्य गन्दा होता है अथवा पाठक बिगड़ते है; तो कम-से-कम एक-दो बार आप उसे पत्र-द्वारा गुप्त रूप से सावधान तो कर दीजिये। जब भी वह न माने, तभी आप उस पर खड्गहस्त होना। आपकी ऐसी कार्रवाही का उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। वह भविष्य में भूल कर भी वैसा काम न करेगा और साथ ही वह आपकी दया का—आपकी उच्चाशयता का कृतज्ञ होगा। यह भी दया ही है।

आप अपने नौकर से मनुष्यता का बर्त्ताव कीजिये। उसके प्राणों को भी अपने ही प्राणों-जैसा समझिये। उसके और अपने शरीर में भेद न समझिये। उसके भी ठीक आपके से प्राण और शरीर हैं। भेद इतना ही है, कि आपके पास दो पैसे हैं और उसके पास नहीं। आपसे एक पैसा पाने के लिये, उसने आपकी गुलामी की है। अगर उससे कोई काम बिगड़ जाय या कुछ नुकसान हो जाय, तो आप उसे तङ्ग मत कीजिये। आप उससे काम लीजिये, पर गालियाँ देकर उसका दिल न दुखाइये; उस पर प्रहार

मत कीजिये; उसके शरीर में भी दर्द होता है। अगर वह बीमार हो जाय, तो उसका इलाज कराइये। अगर आपसे इतना न हो सके, तो उसे ज़रूरत के माफिक रुखसत ही दीजिये। उसको आपकी तरह शिक्षा लाभ करने और अपनी उन्नति करने के अवसर नहीं मिले—इसीलिये वह आपका गुलाम है और आपकी दया का हक़दार है। सज्जन पुरुष अपने नौकरों पर अत्याचार नहीं करते—उनको अधिक कष्ट नहीं देते—उनको किसी तरह दुःखित नहीं करते—उनके दुःख-सुख को अपने दुःख-सुख के समान समझते हैं—उनकी हितचिन्तना करते हैं। सज्जनों को सब पर दया आती है। "गुलिस्ताँ" मे लिखा है,—

वर बन्द मगीर ख़श्म बिसियार।
जौरश मकुन व् दिलश मयाज़ार॥
ओरा तो बदह दिरम खरीदी।
आख़िर न ब कुदरत आफ़रीदी॥

"अपने खरीदे गुलाम पर जुल्म मत करो—उसका दिल मत दुखाओ। तुमने उसे दस दीनारो में खरीदा जरूर है, पर उसे बनाया नहीं है।" और भी कहा है:—"तेरा यह घमण्ड, गुस्ताखी और गुस्सा कहाँ तक चलेगा? तेरे ऊपर तुझसे भी बडा मालिक है। विचार के दिन बड़ा भारी दुःख होगा, जब कि नेक गुलाम स्वर्ग मे पहुँचाया जायगा और दुष्ट स्वामी नरक में जलाया जायगा।"

दुर्जनों पर भी दया कीजिये, क्यों कि उनका भविष्य अन्धकारमय है। वह दूसरों पर जल-जल कर आप ही खाक हुए जाते हैं। दाहरूप शत्रु उनके पीछे लग रहा है, अतः आप उन पर भी दया कीजिये।

जब आप स्वयं बे-ऐब या निर्दोष नहीं है, तब आप दूसरों के दोष ढूँढ़ने की चेष्टा क्यों करते है? दूसरों के अपराधों, व्यभिचारों पर आपका क्रोध करना वृथा है, इससे आपको क्या फायदा? बुरा तो इस तरह सुधरेगा नहीं, आपकी ही क्षति होगी। अच्छा हो; अगर ऐसों पर दया करें। सम्भव है, आपके मधुर वचनों और दया से उनमें कुछ सुधार हो जाय। क्या मारने-पीटने से सुधरने के बजाय बिगड़ता ही है; मगर प्रेम से—दयापूर्ण व्यवहार से बड़े बड़े दुष्ट सुधरते देखे गये हैं। वाक्य-बाण बड़े बुरे होते है। प्यार किया जाना, प्यार करने से उत्तम है। कठोरता की अपेक्षा, दया के द्वारा बालकों पर अधिक प्रभाव डाला जा सकता है।

एक राजा ने मरण-शय्या पर अपने पुत्र को उपदेश दिया— "बेटा! दीनों को सुखी करना, कमजोरों की जबरदस्तों से रक्षा करना; अपनी प्रभुता पर भटके हुए को राह पर लाना; अगर तुम ऐसा करोगे, तो परमेश्वर तुम से सन्तुष्ट होगा"

लार्ड एव्हगी ने कहा है,—"प्रेम, दया और चित्त की शान्ति के बिना भी मनुष्य धनवान और बलवान हो सकता है, परन्तु इन तीनों के बिना मनुष्य सुखी कदापि नहीं हो सकता।

इनके बिना स्वर्ग भी नरक है'' '' लोग कहते हैं. कि मित्रो को प्यार करो और शत्रुओं से घृणा करो; परन्तु मैं कहता हूँ,— "शत्रुओं पर भी दया करो। जो तुम्हें गाली दे, उसे तुम आशीर्वाद दो। जो तुम से घृणा करे. उसका उपकार करो। जो तुमको दुःख दे, उसके लिये ईश्वर से क्षमा माँगो। फिर देखो, कैसा आनन्द आता है।" कहा है:—

जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल।
तोकूँ फूल के फूल हैं, वाकूँ हैं तिरशूल॥

अपराधी या निरपराधी, धर्मात्मा या पापात्मा सब पर दया करो। दया से सब ही का समान हक़ है। हमारे देश के लोग बहुधा पापियों और अपराधियो से घृणा करते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। सच्चा दयावान् तो वही है, जो सब पर दया करता है। देखिये परमात्मा सब पर दया करता है। चन्द्रमा राजा, तपस्वी, अपराधी, निरपराधी, चोर, बदमाश, चमार और भङ्गी सबके घर मे समान रूप से अपनी चाँदनी छिटकाता है। सूर्य्य अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, बुरे-भले, सबके घर मे रोशनी करता है।

संसार मे ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो पापियों के पाप-कर्मों पर पर्दा डालें, उन पर दया प्रकाशित करें, उनके सुधारने की चेष्टा करें। पापियो को देख कर हँसने वाले और घर-घर उनकी निन्दा करके अपना मुँह काला करने वाले बहुत हैं।

"गुलिस्ताँ" में लिखा है,—"हे भक्त! पापी से तुझे घृणा न करनी चाहिये—चाहिये उस पर दया करनी !"

रोगियों की बकवाद से आप नाराज न हों, बल्कि उनकी अवस्था पर तरस खायँ। आपसे हो सके जितनी उनकी सेवा-शुश्रूषा करें। इस दया का बड़ा पुण्य होता है। महात्मा हावर्ड ने अपना जीवन रोगियों और कैदियों की भलाई में ही बिता दिया। उसने कैदियों के सुख के लिए जेल की भयानक यन्त्रणायें भोगीं और छुतहे रोगियों की सेवा करते हुए अपने प्राण त्यागे। ऐसे ही दयालु महापुरुषों का जीवन धन्य है। महात्मा बुद्ध जब कि राजकुमार थे—एक कोढ़ी को दुःखित देख कर गोद में लेकर बैठ गये। सारथी ने कहा—"राजकुमार! ऐसे रोगियों को कोई भी नहीं छूता—ऐसे रोगियों के संसर्ग से दूसरों को भी रोग हो जाता है। आप राजकुमार हैं, आपको ऐसा हरगिज न करना चाहिये।" आपने कहा,—"क्या राजकुमार और राजघराने वालों को रोग नहीं होता ?" बहुत क्या कहें—आपने संसार के दुःखों से पानी-पानी होकर ही—दयावश, अपना राज्य अपनी स्त्री और अपने शिशु-पुत्र को त्याग कर वन की राह ली!

कबीरदास ने कहा है:—

> भावै जाओ बादगो, भावै जावहु गया।
> कहै "कबीर" सुनो भाई साधो, सब तें बड़ी दया॥

सारांश—किसी का भी दिल न दुखाओ; हो सके तो उपकार करो। इससे बढ़ कर और धर्म नहीं है।

छप्पय।

तजै आशा की घात, और परधन नहिं राखै।
पर-युवती को त्याग, वचन झूँठे नहिं भाषै॥
निज हाथन जुति दान देत, तृष्णा को रोकत।
दया सबन में राख, गुरुन के चरणन ढोकत॥
यह सम्मत है श्रुति स्मृति की, सबको सुख दायक सुभग।
सब विधि दायक कल्यान की, अति उत्तम यह सुगम मग॥२६॥

26. Abstinence from murder and robbery, truthfulness, giving alms at the proper time, silence in the matter of a talk about other people's wives, checking the springs of avarice, respect for elders, sympathy with all, a general knowledge of all the sacred books, an unbroken compliance with religious duties, all these are the ways leading to a man's welfare.

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥२७॥

भावे = चाहे। कबीर = एक महात्मा थे। भाषै = बोले। निज = अपने। चरनन = चरणों में। ढोकत = ढोक देता है। सम्मत = सम्मति = राय। श्रुति = वेद। स्मृति = धर्मशास्त्र। सुगम = सहज। मग = मार्ग = रास्ता।

(संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं:—(१) नीच, (२) मध्यम, और (३) उत्तम । नीच मनुष्य, विघ्न होने के भय से, काम को आरम्भ ही नहीं करते । मध्यम मनुष्य काम को आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच में ही छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम मनुष्य जिस काम को आरम्भ कर देते है, उसे विघ्न-पर-विघ्न होने पर भी, पूरा करके ही छोड़ते हैं।)

उत्तम मनुष्य विचारवान् और धैर्यवान् होते है। वे जिस काम को करना चाहते हैं, पहले उसे सब पहलुओ से विचार लेते हैं। जब खूब अच्छी तरह से समझ लेते है तभी उसमे हाथ डालते हैं और जब हाथ डाल देते हैं—आरम्भ कर देते है, तब वारम्बार विघ्न होने, बारम्बार सफलता न होने पर भी, उसे किये ही जाते हैं और शेष में उसे पूरा करके ही दम लेते है। देवताओं ने अमृत के लिये समुद्र मथना आरम्भ किया, मथते-मथते उसमे से ऐसा हालाहल विष निकला, जिससे सब जलने लगे; पर देवताओ ने धैर्य न त्यागा, विष से घबराये नहीं, मथन-कार्य किये ही गये; उनके दृढ़ अध्यवसाय से उन्हें सिद्धि हो ही गई—अमृत निकल आया और वे उसे पीकर अमर हो गये।

महाराजा भगीरथ ने गङ्गा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने के लिये कठोर तपश्चर्या आरम्भ की। उनकी तपस्या भङ्ग करने के लिये इन्द्र ने वर्षा की, अग्नि प्रज्वलित की, वज्र छोड़ा; उसमे पृथ्वी काँप उठी, दशो दिशाये थर्राने लगीं; पर वे आसन मे न उठे

जरा भी विचलित न हुए । उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा करली, कि चाहे मरण ही क्यों न हो, कार्य सिद्ध करके ही उठेंगे। सुरपति जब डरा कर हार गये, तब, उन्होंने विश्वामित्र का तप भङ्ग करने के लिये जिस तरह अप्सरा भेजी थी; इनका तप भङ्ग करने के लिये भी अप्सरा भेजी, पर महाराज भगीरथ को अप्सरा भी काबू में न कर सकी, तब शङ्कर भगवान् उनकी कठोर तपस्या और दृढ़ अध्यवसाय से परम सन्तुष्ट हुए। आपने महाराज को दर्शन देकर गङ्गा को अपने सिर पर धारण करने का वचन दिया। ब्रह्मा पहले सन्तुष्ट हो ही चुके थे; इसलिये गङ्गाजी स्वर्ग से आईं। महाराज की कामना सिद्ध हुई। असम्भव सम्भव हुआ। अगर महाराज घबराकर बीच में ही तप करना छोड़ देते, तो क्या गङ्गा स्वर्ग से आतीं ? रघुवंशी राजाओं में काम को आरम्भ करके, बिना पूरा किये, अधूरा छोड़ने का स्वभाव नहीं था: इसी से वे ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हो सके थे।। "रघुवंश" में लिखा है:—

सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम् ।
आसमुद्र क्षितीशानामानाक रथवर्त्मनाम् ॥

सूर्य्यवंशी राजा अपने जन्म से ही शुद्ध थे। जब तक उन्हें सफलता नहीं हो जाती थी, तब तक दृढ़ता से काम किये जाते थे। सफलता प्राप्त किये बिना, काम को अधूरा न छोड़ते थे, इसी से ससागरा पृथ्वी के स्वामी थे। और तो क्या, स्वर्ग तक में उनका रथ बेरोक-टोक चलता था।

हमारे राजा अङ्गरेजों में भी यह गुण है। ये भी जिस काम को आरम्भ कर देते है, उसे हजार विघ्न होने पर भी सफल किये बिना विश्राम नहीं लेते। इसी उत्तम गुण की वजह से, बारम्बार हारने पर भी, विश्वव्यापी महा समर में, अन्त मे इनकी ही जीत हुई। इनके इस गुण पर मुग्ध होकर ही, विजय-लक्ष्मी ने, इनके ही गले में विजय माल डाली। इस गुण के कारण ही ये भी रघुवंशियो की तरह ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हैं।

महात्मा विदुर ने कहा है,—"जो मनुष्य खूब सोच-विचार-कर काम को आरम्भ करता है, आरम्भ किये काम को समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता; किसी समय भी काम करने से मुँह नहीं मोड़ता और इन्द्रियो को अपने वश में रखता है, वही "पण्डित" कहलाता है।

✓बीलेण्ड नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है,—"उत्तम पुरुषो की यह रीति है,कि वे किसी काम को अधूरा नहीं छोड़ते।"

✓एलन नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं,—"काम में सफलता न होने से चेष्टा को परित्याग कर देना महा-मूर्खता है। चरित्र-विकास में असफलतायें अद्भुत उपादान-सामग्री हैं।"

✓अल्काट महाशय लिखते हैं,—"सफलता मीठी है; पर यदि सफलता बड़ी-बड़ी तकलीफों और पराजयों के बाद, बडी देर से, प्राप्त की जाय, तो वह और भी मीठी है।"

सारांश यही है, कि मनुष्य जिस काम को आरम्भ करे, उसे बिना पूरा किये न छोड़े। हार-पर-हार, असफलता-पर-असफलता, विघ्न-पर-विघ्न होने पर भी, जो हतोत्साह होकर काम को न छोड़े, वही उत्तम पुरुष है। उसे दृढ़ अध्यवसाय के बल से सफलता होगी ही। संसार में जिन्होने, रेल, तार, हवाई जहाज प्रभृति ईजाद किये हैं अथवा बड़े-बड़े मत फैलाये हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी हैं—बड़े-बड़े विघ्नों का सामना करना पड़ा है। लोगो ने उनकी खूब दिल्लगियाँ की—पर वे तो अपने आरम्भ किये काम को पूरा करके ही उठे। यह उत्तम गुण प्रत्येक सिद्धि-अभिलाषी मनुष्य को ग्रहण करना चाहिये। मध्यम पुरुषो की तरह घबरा कर काम को अधपर छोड़ देना अथवा नीचो की तरह असफलता या विघ्नो के भय से आरम्भ ही न करना अच्छा नहीं। ऐसे पुरुषो के कोई काम सिद्ध नही होते और वे दूसरो का भी कुछ भला नहीं कर सकते।

यूरोप विजयी वीर शिरोमणि फ्रान्स-सम्राट् नेपोलियन "असम्भव" शब्द को नहीं मानते थे। उनका कहना था, कि संसार मे कोई काम असम्भव नही। उनका कहना यथार्थ है। स्वर्ग से गङ्गा को लाने से अधिक क्या असम्भव होगा? एक दृढ़ अध्यवसायी ने वह असम्भव भी सम्भव कर डाला। मनुष्य परमात्मा पर भरोसा करके डटा रहे; कोई भी काम हुए बिना न रहेगा। डाक्टर नारमेन मेकलियड ने कहा है:—

Let the road be rough and dreary,
And its end far out of sight,
Foot it bravely strong or weary,
"Trust in God, and do the right

"राह चाहे जैसी ही खतरनाक और अन्धकारपूर्ण हो, उसका अन्त दूर और दृष्टि से बाहर क्यो न हो, आप मे बल हो और चाहे आप थके हुए हो, आप साहस पूर्वक चले जाइये, परमात्मा का भरोसा रखिये और न्याय से काम करते रहिये।" आपको सफलता होगी और होगी, आप लक्ष्य-स्थान या मंजिल मकसूद पर पहुँच ही जायँगे; आपकी अभीष्ट-सिद्धि हो जायगी।

शेख सादी ने कहा है:—

मुशकिले नेस्त कि आसाँ न शवद।
मर्द बायद कि, परेशाँ न शवद॥

ऐसी कोई मुशकिल नहीं, जो आसान न हो जाय; पर यह जरूरी है कि मर्द घबरावे नहीं। और भी कहा है;— "हिम्मते मर्दां मददे खुदा।" साहसी की मदद खुदा करता है। मतलब यह जो भगवान् पर भरोसा रखकर, बिना घबराये काम किये जाता है, उसको कामयाबी होती ही है।

छप्पय।

करहि न कार्य्यारम्भ, विघ्नभय अधम अनारी।
मध्यम काजहि छेड विघ्नभय देहि बिसारी॥
उत्तम त्यागहि नाहि, करे जो काज अरम्भा।
परे अनेकन विघ्न, तदपि रहे अडिग अथम्भा॥
धन जन वैभव में पाप बिन, रहे ऐसे जन सूर हैं।
ते हैं मूढ़न पै नाव को, फिर जगत न्युन पूर हैं॥२७॥

27. The weak-minded do not begin (a work) for fear of obstacles. Ordinary men, having begun a work, give it up finding obstacles (in the way). But the best men, once they have begun, never give up their work even if they are hindered by obstacles again and again.

असंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरम् ॥
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥२८॥

सत्पुरुष दुष्टों से याचना नहीं करते; थोड़े धन वाले मित्रों से भी कुछ नहीं माँगते; न्याय की जीविका में सन्तुष्ट रहते है, प्राणों पर बन आने पर भी पाप-कर्म नहीं करते, विपद्काल में वे ऊँचे बने रहते हैं; यानी घबराते नहीं और महत् पुरुषों के पद चिन्हों का अनुसरण करते हैं अर्थात् बड़े लोगों की चाल पर चलते है। इस तलवार की धार के समान कठिन व्रत का उपदेश उन्हें किसने दिया? किसी ने नहीं। वे स्वभाव से ही ऐसे होते है। मतलब यह है कि, सत्पुरुषों में उपरोक्त गुण किसी के सिखाने से नहीं आते। उनमे से सब गुण स्वभाव से या पैदायशी होते हैं।

विघ्न भय = विघ्न होने के डर से। अधम = नीच। अनारी = मूर्ख। मध्य = बीच के लोग। काजहिं = काम को। छेड़ = शुरु करके। देहिं बिसारी = भूल जाते हैं। उत्तम = अच्छे लोग। काज = काम। अरम्भा = शुरू। तदपि = तो भी। अडिग = अटल।

प्रथम तो 'याचना" या माँगना शब्द ही बुरा है। याचक के मान तो होता ही नहीं। याचना से भगवान् को भी नीचा होना पड़ा, मनुष्य बेचारा तो कौन चीज है? याचना के बराबर बुरा और नीचा कर्म नहीं। तिनका सबसे हलका है, तिनके से रूई हलकी है, पर माँगने वाला रुई से भी हलका है। हवा रुई को भी उड़ा ले जाती है, पर याचक के पास नहीं आती; हवा डरती है, कि कहीं मुझ से भी कुछ न माँग बैठे। "शुक्र-नीति" मे लिखा है—धनी, गुणी, वैद्य राजा और जल-रहित स्थान में सदा रहना, एक भी कन्या का होना और माता-पिता से भी माँगना—ये सब दुःखदाई हैं। माँगने मे अनेक दोष हैं। माँगना माता-पिता से भी बुरा है। माता-पिता से माँगने मे भी मनुष्य को दुःख होता है, तब दुष्ट और नीचो से माँगना तो कैसा न दुःखदायी होगा? गैर-तो-गैर, दुष्ट-स्वभाव बन्धु-बान्धवों से भी याचना करना, मरण से भी अधिक कष्ट दायक है। यही वजह है, कि सत्पुरुष चाहे भूखे मर जायँ, छोटे-छोटे बालक भी तड़फ-तड़फ कर क्यों न प्राण देदे, पर वे नीचो से कभी कुछ नहीं माँगते। सत्पुरुषों की नजर मे मान का मूल्य सबसे अधिक है। वे मान के आगे स्वर्गराज्य को भी तुच्छ समझते है। जिसने मान-रक्षा नहीं की, उसने किसी की रक्षा नही की। याचना करने या माँगने से मर जाना कही अच्छा है।

वृन्द कवि ने कहा है:—

मानधनी नर नीच पै, जाचे नाहीं जाय।
कबहुँ न माँगै स्यार पै, बरु भूखो मृगराय ॥

मान-धनी पुरुष नीच से जाकर नहीं माँगते। भूखा सिंह स्यार से जाकर कभी खाने को नहीं माँगता।

यदि मनुष्य अपनी मानरक्षा चाहे तो भूखा मर जाय, पर किसी से न माँगे और जिसमे दुष्ट भाई-बन्धुओ से तो किसी हालत मे भी न माँगे— भाई-बन्धुओ से गैर भला। भाई-बन्धु कुछ देते भी नहीं, उल्टी हँसी उड़ाते और दिल मे खुश होते हैं। घर वालो को दया नहीं आती, पर गैरों को रहम आ जाता है।

तुलसीदासजी ने कहा है:—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो ॥
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो ॥
घर मे भूखा पड रहे, दस फाके हो जायँ।
तुलसी भैया-बन्धु के, कबहुँ न माँगन जाय ॥

शेखसादी ने कहा है:—

अगर हिनज़ल खुरी अज़ दस्त खुशरुए।
बह अज़ शीरीनी दस्ते तुर्शरुए ॥

दुष्ट के हाथ से मिठाई खाने की अपेक्षा, सज्जन के हाथ से इन्द्रायण का कड़वा फल खाना अच्छा।

कर=हाथ। कर पर कर करो=हाथ के ऊपर हाथ करो। कर तर कर न करो=हाथ के नीचे हाथ मत करो। जा दिन=जिस दिन। ता दिन=उस दिन। मरण करो=मौत दो।

जो बन्धु-बान्धव या मित्र गरीब है, जिनके पास नाम मात्र को धन है, उनसे कुछ माँगना उन्हे वृथा कष्ट देना और अपने समान दुःखी बनाना है; सो बुद्धिमान कैसे कर सकते है ?

——::०::——

सत्पुरुष न्याय से कमाये धन को पसन्द करते हैं—न्याय्य-जीविका ही उन्हे अच्छी लगती है, यह उचित ही है। जो अन्याय से कमाये धन से सुख भोगना चाहते है, उन्हे सत्पुरुष कौन कहेगा ? सभी शास्त्रों मे न्याययुक्त जीविका ही उत्तम जीविका लिखी है। 'शुक्र-नीति" मे लिखा है:—

"वही जीविका श्रेष्ठ है, जिससे अपने धर्म की हानि न हो और वही देश उत्तम है, जिससे कुटुम्ब का पालन हो।" चाणक्य ने भी कहा है,—'अत्यन्त क्लेश से, धर्म के त्याग से और दुश्मनो के पैरो मे पड़ने से जो धन मिले, वह धन मुझे नहीं चाहिये।" महाभारत मे लिखा है,—"जो मनुष्य पढ़ा-लिखा न होने पर भी घमण्डी हो, दरिद्र होकर भी ऊँची-ऊँची वासनाओं के भोगने की इच्छा करे और बुरे कामो से धन पैदा करना चाहे—वह मूर्ख है। अन्याय-कर्म से कमाया धन वश का नाश कर देता है; किन्तु न्याय से कमाया धन बेटे-पोतो तक स्थिर रहता है; अतः मनुष्य को सुमार्ग से ही धन संग्रह करना चाहिये।" और भी कहा है,—अन्याय का धन दस वर्ष तक ठहरता है—ग्यारहवाँ वर्ष लगने पर समूल नष्ट हो जाता है।

नीच लोग इन बातों का खयाल नहीं करते । वे तो ज्यों-ज्यों धनवान होने में ही अपनी भलाई समझते हैं: पर सज्जन. कण्ठ में प्राण आ जाने पर भी, बुरे काम नही करते और विपद् मे नहीं घबराते तथा बड़ों की राह पर चलते हैं। सज्जनों को ये तलवार की धार के समान कठिन व्रत कोई नहीं सिखाता। इस तरह तलवार की धार पर चलने का उनका स्वभाव ही होता है। संसार में ऐसे ही नररत्न धन्य है।

कुण्डलिया।

माँगैं नाहिं जो दुष्ट सों, लेत मित्र को नाहिं।
प्रीति निबाहत विपद मे, न्याय वृत्ति मन माहि॥
न्याय वृत्ति मन माहिं, उच्च पद प्यारौ जिनको।
प्राणन हूँ के जात, अकृत नहिं भावत तिनको॥
खड्गधारवत् धार, रहें केहूँ नहिं त्यागैं।
सन्तन को यह मंत्र, दियो कौने बिन माँगै॥२८॥

28. They like a livelihood lawfully gained. They dislike doing evil deeds even if it cost them their life. They do not beg from bad men They do not even beg from their true friends, if the latter are poor in wealth. They take a high stand when in distress and follow in the footsteps of great men Oh, who has taught good men to observe this vow which is as sharp as the edge of a sword?

———

अकृत = कुकर्म । भावत = अच्छा लगता । तिनको = उनको ।
खड्गधारवत् = तलवार की धार की तरह । कौने = किसने ।
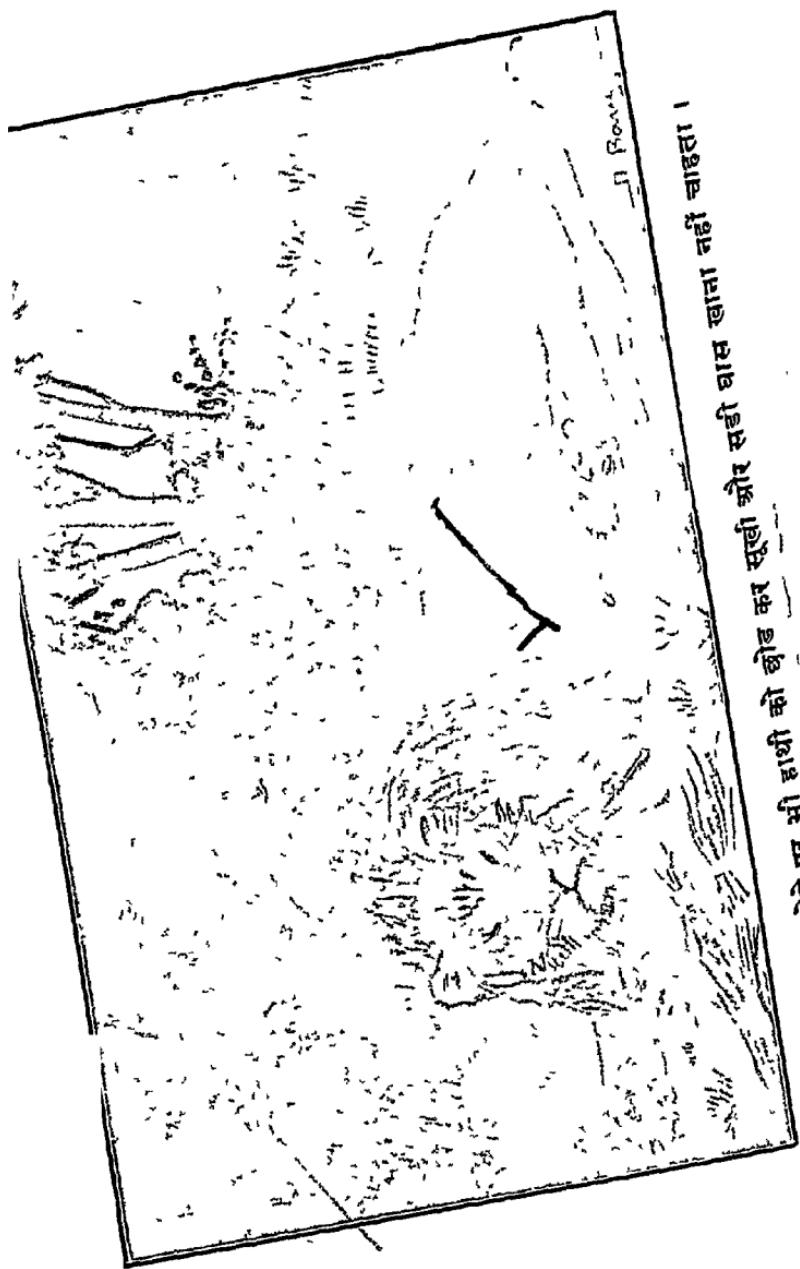
सिंह भूखा होने पर भी हाथी को छोड कर सूखी और सडी घास खाना नहीं चाहता ।

मानशौर्य प्रशंसा ।

क्षुत्क्षामोपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोपि कष्टां दशा-
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषुनश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२६॥

जो सिंह माननीयों में अगुआ है और जो सदा मतवाले हाथियों के विदारे हुए मस्तक के ग्रास का चाहने वाला है, वह चाहे कितना ही भूखा, बुढ़ापे के मारे शिथिल, शक्तिहीन, अत्यन्त दुःखी और तेज हीन क्यों न हो जाय,—पर वह प्राणनाश का समय आने-पर भी, सूखी हुई सडी घास खाने को हरगिज़ तैयार न होगा ॥ २६ ॥

सिंह और आत्माभिमानी पुरुष एक से होते है । सिंह भूखा भले ही मर जाय; पर वह सड़ी घास कदापि न खायगा । इसी तरह मानी पुरुष मर भले ही जाय, पर वह मान और प्रतिष्ठानाशक नीच कर्म हरगिज न करेगा । शेख सादी ने कहा है:—

न खुरद शेर नीम खुरदये सग ।
गर बसख्ती बमीरद अन्दर ग़ार ॥

(शेर भूख के मारे माँद मे ही भले ही मर जाये, पर वह कुत्ते का जूठा हरगिज न खायगा ।)

गिरिधर कविराय ने भी कहा है—

पीवे नीर न सरवरो, बूँद स्वाति की आश।
केहरि तृण नहिं चर सके जो व्रत करे पचाश॥
जो व्रत करे पचाश, विपुल गज-युत्थ विदारे।
सत्पुरुष तजै न धीर, जीव वरु कोऊ मारे॥
कह गिरिधर कविराय जीव जोधक मरि जीवै।
चातक वरु मर जाय, नीर सरवर नहिं पीवै॥

स्वा ' ं की आशा रखने वाला चातक-पपीहा प्यासा ही क्यो न मर जाय, पर वह तालाब का जल नहीं पीता। सिंह जो हाथियों के झुण्डो का फाड़ने वाला है, पचास फाके करने पर भी घास नहीं चर सकता। सत्पुरुष अपना धैर्य्य नहीं त्यागते, चाहे कोई उनके प्राण नाश ही क्यों न करे।

सारांश यही है, कि मनुष्य पर कैसी भी विपद् पड़े, वह कितना ही दुःखित क्यों न हो, पर वह धैर्यच्युत न हो, मत्र क हाथ से न जाने दे, घबरा कर मान और प्रतिष्ठा को नष्ट करने वाले नीच कर्मों पर उद्यत न हो जाय। (सिंह भूखा मर जाता है, पर घास नहीं खाता। पपहिया प्यासा मर जाता है, पर स्वाती-बूँद के सिवा और जलों को नहीं पीता। उत्तम पुरुष को, सिंह और चातक की तरह, अपनी मान रक्षा प्राणों से भी अधिक समझनी चाहिये।)

कुत्ता मासहीन हाड़ का टुकड़ा पाकर भी अत्यन्त प्रसन्न होता है.
किन्तु सिंह गोद में आये स्यार को छोड हाथी को ही मारता है।

[पृष्ठ १६३

कुण्डलिया ।

नाहर भूखो उदर कृश, वृद्ध वयस तन चीन ।
शिथिल प्राण अति कष्ट सों, चलिवे ही मे लीन ॥
चलिवे हां में लीन, तऊ साहस नहि छाँडे ।
मद गज कुम्भ विदार, माँस भक्षण मन आँडे ॥
मृगपति भूखौ, घास पुरानी खात न जाहर ।
अभिमानिन में मुख्यशिरोमणि, सोहत नाहर ॥२९॥

29. Will the lion, first in the list of honourable creatures and desirous of eating monthfuls of flesh off the broken trunk of a mad elephant, be contented with the eating of rotten grass, even if he is wea with hunger, old age and loss of vigour and confronted by distress acute agony and even death itself ?

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जंबुकमंकमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्
सर्वःकृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥३०॥

कुत्ता, गाय प्रभृति पशु का जरा सा पित्त और चरबी लगा हुआ मलिन और माँस हीन छोटा सा हाड़ का टुकड़ा पाकर— जिससे उसकी क्षुधा शान्त नहीं हो सकती—अत्यन्त प्रसन्न होता है, लेकिन सिंह गोद मे आये हुये स्यार को भी त्याग कर हाथी के मारने को दौड़ता है ।

इससे सिद्ध होता है, कि लोग कैसे भी दुःखित क्यों न हों, पर वे अपने पुरुषार्थ के अनुसार ही फल की आकाँक्षा करते हैं ॥३०॥

वृन्द कवि ने कहा है:—

बड़े कष्ट हू जे बड़े, करैं उचित ही काज ।
स्यार निकट तजि खोज के, सिंह हने गजराज ॥

नीच मनुष्य कुत्ते के समान और बड़े लोग सिंह के समान होते हैं। नीच लोग बुरी-से-बुरी चीज पर नीयत डिगा देते है; पर बड़े लोग, घोर विपद्ग्रस्त होने पर भी, अपने पुरुषार्थ के अनुसार जीविका करते हैं। वे मर भले ही जायँ, पर वे नीच काम नहीं करते। हंस या तो मोती ही चुगते हैं, नहीं तो लंघन कर के मर जाते है। सिंह या तो गजराजों को मार कर ही खाते है, नहीं तो भूखों ही मर जाते हैं ।

कुण्डलिया ।

कूकर सूखे हाड़ सों, मानत है मन मोद ।
सिंह चलावत हाथ नहिं, गीदड़ आये गोद ॥
गीदड़ आये गोद, आँखहू नाहिं उघारे ।
महामत्त गज देख, दौर के कुम्भ विदारे ॥
ऐसे ही नर खरे, बड़ी कृत करत दुहूँकर ।
करैं नीचता नीच, क्रूर कुत्सित ज्यो कूकर ।

30. A dog is delighted if he finds a small, dirty bone of beef consisting only of a little fatty matter inside and without any flesh, although it can in no

way satisfy his hunger, while a lion unheeding a jackal fallen into his arms, goes to kill an elephant (This proves that) every one desiresfor a fruit in accordance with his spirit, on matter if it be hard to attain.

लांगूलचालनमधश्चरणावपातम्
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ॥
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते ॥३१॥

कुत्ते को देखिये, कि वह अपने रोटी देने वाले के सामने पूँछ हिलाता है, उसके चरणों में गिरता है, जमीन पर लेट कर उसे अपना मुँह और पेट दिखाता है, उधर श्रेष्ठ गज को देखिये, कि वह अपने खिलाने वाले की तरफ धीरता से देखता है और सैकड़ों तरह की खुशामदें करा के ही खाता है ॥३१॥

राजर्षि भर्तृहरि नीच की नीचता और महाजन की उच्चता कुत्ते और हाथी के दृष्टान्त से दिखाते हैं।(कुत्ता इतना नीच है, कि एक टुकड़े के लिये रोटी देने वाले की सौ-सौ खुशामदें करता है और हाथी इतना उच्च है, कि अपने रोटी देने वाले के सामने जरा भी दीनता नहीं करता; उलटी सैकड़ों खुशामदें कराता है, तब खाता है।)

मनुष्यों में भी कुत्ते और हाथी के समान मनुष्य हैं। दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जो अपना पेट भरने के लिये अथवा कुछ द्रव्य

प्राप्त करके विषय-विष भोगने के लिये, महाभिमानी नीच धनियों को अपना पेट दिखाते हैं, उनके पैर पकड़ते हैं, सैकड़ों तरह की झूठी खुशामदें करते हैं, किसी दशा में भी न करने योग्य निन्द्य कर्म करते हैं, उनकी खोटी-खरी सुनते हैं, उच्च जाति होकर उनके बच्चों का मल-मूत्र तक साफ कर देते है, समय पर उनकी धोतियाँ तक धो डालते हैं—और तो क्या—उनकी स्त्री तक की बुरी-से-बुरी लल्लो चप्पो करते है; भगवान् को भूल कर हरदम बाई जी-बाई जी की रटना लगाये रहते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो अपने घरों से नहीं निकलते, लोग स्वयं उनके घर जाकर उनकी पूजा और खुशामद करते हैं, पर वे लोग भूखे मरने पर किसी की खुशामद नहीं करते; क्योंकि वे पराई खुशामद करके स्वर्ग-सुख भोगने को नरक के दुःखों से भी बुरा समझते हैं। अगर घर में खाने को भी नहीं होता, तो पेट को बाँध कर या दबा कर सो जाते हैं; किसी की खुशामद से खाना और कपड़ा पाने की अपेक्षा, निराहार रहना और राह के चीथड़े लपेट कर लज्जा निवारण करना कहीं बेहतर समझते हैं; क्योंकि किसी की खुशामद-बरामद करके जो चीज़ ली जाती है, उससे काया को तो लाभ होता है, पर आत्मा की हानि होती है। बड़े लोगों ने कहा है,—"मान-सहित मरना,—अपमान-सहित जीने से भला है।"

"गुलिस्ताँ" में लिखा है:—

नानम अफ़ज़ूदो आ बरूयम कास्त।

बेनवाई बह अज़ मज़िल्लते ख्वास्त॥

(जिस रोजी से इज्जत घटे, उस 'रोजी' से गरीबी भली।)

दोहा।

स्वान लेत लोयो लपक, दीन मान करि दूर।

सौ कों दे भक्षण करत, धीर वीर गजपूर॥३१॥

31. A dog wags his tail before his bread-giver, falls at his feet and lies down on the ground to show his mouth and belly, but the noble elephant looks (on his *mahout*) composedly and only eats his meal when he is flattered a hundred times.

स जातो येन जातेन जाति वंशः समुन्नतिम्।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥३२॥

इस परिवर्त्तनशील जगत् में मर कर कौन नहीं जन्म लेता? जन्म लेना उसी का सार्थक है, जिसके जन्म से वंश की गौरव-वृद्धि या उन्नति हो॥३२॥

जिस तरह सूर्य्य, चाँद, शुक्र, शनि प्रभृति घूमने वाले ग्रह हैं; उसी तरह हमारी यह पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह भी सदा ग्रहो की तरह घूमती रहती है। इस घूमने वाली पृथ्वी पर सदा परिवर्त्तन होते रहते हैं। संसार एक अवस्था में नहीं रहता। जो आज जिन्दा है, कल वही फिर मुर्दा हो

जायगा; जो मर जायगा, वही फिर जन्म लेगा यानी इस संसार मे जीना और मरना लगा ही रहता है—रोज़ परिवर्त्तन होते ही रहते है। इस परिवर्त्तनशील जगत् मे मर कर जन्म लेना उसी का सार्थक या सफल है, जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो,—वश का नाम ऊँचा हो। जो जन्म लेकर अपना पेट भरते हैं और उम्र पूरी करके मर जाते हैं, पर उनसे वंश की गौरव-वृद्धि नही होती, उनका जन्म लेना वृथा ही है। वैसे लोग वृथा पृथ्वी-माता को बोझों मारने को पैदा होते है। यदि वैसे लोग पैदा ही न होते तो भला था, बेचारी पृथ्वी तो बोझो न मरती।

" पञ्चतन्त्र " मे लिखा है:—

> किं तेन जातु जातेन, मातुर्यौवनहारिणां।
>
> आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा॥

माता की जवानी नष्ट करने वाले उस पुरुष के जन्म से क्या, जो अपने वश मे ध्वजा के अगले भाग की तरह स्थित नही होता ?

और भी कहा है:—

> जातस्य नदी तीरे, तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम्।
>
> यत् सलिलमज्जनाकुल जन हस्तावलम्बनं भवति॥

(नदी के किनारे पैदा हुए उस तिनके का भी जन्म सफल है जो जल में डूबने से घबराये हुए का अवलम्ब होता है।)

दानी, परोपकारी, शूरवीर, तपस्वी, विद्वान् और धर्मात्माओं के जन्म लेने से निश्चय ही कुल की गौरव-गरिमा बढ़ती है। महाराजा रघु, दिलीप, राम प्रभृति महापुरुषों से उनके कुल का नाम हुआ। अभी कई सौ साल पहले इटली के एक साधारण गृहस्थ के घर में जन्म लेकर महावीर नेपोलियन ने अपने कुल को उजागर किया। आप अपनी अपूर्व शूरता दृढ़ अध्यवसाय एवं लोकप्रियता प्रभृति गुणों से फ्रांस के अद्वितीय सम्राट् हुए। महाराज भगीरथ ने श्री गंगाजी को स्वर्ग से लाकर रघुवंश का नाम सदा को अमर कर दिया। ऐसों की ही जननी जननी है और ऐसों ही का जन्म लेना जन्म लेना है। जिनके जन्म लेने से संसार का उपकार न हुआ, वंश का नाम न हुआ—उनकी जननी वन्ध्या और उनका जन्म लेना जन्म लेना नहीं।

दोहा

जन्म-मरण जगचक्र में, ये दो बात महान।
करै जु उन्नति वंश की जन्म्यौ सो ही जान ॥३२॥

32. Who is not born after having died in this everchanging universe? But he is really born by whose birth his family gets prosperity.

कुसुमस्तवकस्येव द्वे गतीस्तो मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥३३॥

फूलों के गुच्छे की तरह महापुरुषों की गति दो प्रकार की होती है—या तो वे सब लोगों के सिर पर ही विराजते हैं अथवा वन में पैदा होकर वन में ही मुर्झा जाते हैं। ३३॥

आत्मसम्मान चाहने वाले पुरुष फूलों की तरह होते हैं। फूल या तो देवताओं के सिर पर ही चढ़ते हैं अथवा वन-के-वन में ही नष्ट हो जाते हैं। मनस्वी पुरुष भी या तो सब लोगों के ऊपर ही रहते हैं या जहाँ पैदा होते हैं वहीं चुपचाप जीवन बिता कर शेष हो जाते हैं। हिन्दु-कुल सूर्य्य महाराणा प्रताप ने, सब राजाओं के अकबरी अधीनता स्वीकार कर लेने पर भी, स्वयं अधीनता स्वीकार न की। उनके बच्चे रोटी के टुकड़ों के लिये तरसे, उन्होंने क्षण-भर भी चैन न पाया; पर अकबर के चरण-सेवक होने की अपेक्षा उन्होंने ये सब कष्ट अच्छे समझे। महापुरुषों का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे जीवन से मान को बड़ा समझते है।

वृन्द कवि ने कहा है—

द्वै ही गति हैं बडन की, कुसुम मालती भाय।
कै सब के सिर पर रहैं, कै वन माँहि बिलायँ॥

दोहा।

पहुपगुच्छ सिर पै रहै, कै सूखै बन माँहि।
मान और सत्पुरुष रहि,कै सुख दुख धन माँहि ॥३३॥

33. Like a bunch of flowers there are only two alternatives for a self-respecting man. He will either find a place at the head of all men or

संत्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः संभाविताः पंचषा—
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः ॥३४॥

आकाश में बृहस्पति प्रभृति और भी पाँच छः ग्रह श्रेष्ठ हैं, पर असाधारण पराक्रम दिखाने की इच्छा रखनेवाला राहु इन ग्रहों से बैर नहीं करता। यद्यपि दानवपति का सिर मात्र अवशेष रह गया है, तो भी वह अमावस्या और पूर्णिमा को दिनेश्वर—सूर्य और निशानाथ—चन्द्रमा को ही ग्रसता है ॥३४॥

महापुरुषों का स्वभाव होता है, कि वे छोटों से बैर भाव नहीं करते; क्योंकि छोटों से जीतने में नेकनामी नहीं मिलती, पर हार जाने में बदनामी होती है—छोटों से जीतने में भी हार और हारने में भी हार। महापुरुष, इसलिये, अपने समान या अधिक बलवानों से ही युद्ध करते हैं।

कहा है—

निबल जान कीजै नहीं, कबहूँ बैर विवाद।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दावाद ॥
कै सम सों कै अधिक सों, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भाँति सवाद ॥

"पञ्चतन्त्र" मे लिखा है—

> तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो
> मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः ।
> समुच्छ्रितानेव तरून्प्रबाधते
> महान्महत्येव करोति विक्रमम् ॥

सब तरह से नीचे को झुके हुए कोमल तिनके को पवन नहीं उखाड़ता; खूब ऊँचे वृक्ष को ही उखाड़ता है। इससे प्रत्यक्ष है कि, बड़ा पुरुष बड़े पर ही अपना बल-विक्रम प्रकाशित करता है।

"भामिनी विलास" में लिखा है—

> ये संड गंड कर्डात पाण्डित्य परिपन्थिना ।
> हरिणा हरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः ॥

हाथियो के मस्तको की खुजली मिटाने वाला सिंह हिरणो में अपने किस पराक्रम का वर्णन करे ?

हाथियो के मस्तक में जो मद-जल होता है. उसके लिये भौरे उनके पास जाते है और उन पर चरण-प्रहार करते है, पर महाबली हाथी उनको तुच्छ समझ कर उन पर क्रोध नहीं करते, इससे भी यही सिद्ध होता है, कि बलवान् बराबर वाले से ही बैर करते है, पर नीच लोग अपने से कमजोरों पर ही अपनी बल परीक्षा किया करते है, वे दुर्बलो को ही सताते हैं। नीच इस बात को नहीं समझते, कि दबे को दबाने और मरे को

मारने मे कोई वीरता नही है । वे उस हवा की तरह है, जो बलवान आग को तो जगाती है,पर निर्बल दीपक को बुझाती है। नीचो का स्वभाव ऐसा होता है और महापुरुषो का स्वभाव वैसा ही होता है।

कुण्डलिया।

राजा निश अरु दिवस को, रवि शशि तेज निधान।
पाँचौ ग्रह इन सम नहीं, ताते तजै निदान॥
ताते तजै निदान, आन इनहीं सो अकड़त।
रह्यो शीश को राहु, चाहकर जब तब पकड़त॥
ऐसे ही नरधीर, मरत हूँ करत सुकाजा।
गिरत परत रणमाँहि, सुभट पहुँचत जहँ राजा॥ ३४॥

34. There are five other well-known planets such as Jupiter etc; but against these this Rahu, the lover of specially heroic deeds, professes no enmity Look, O brother, it is only the two great luminaries, the sun and the moon, that this lordly Rakshasa catches hold of at the time of an eclipse, although head is the only part of its body that is now left

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां।
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते॥
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः॥३५॥

शेषनाग चौदह भुवनों की श्रेणी को अपने फण पर धारण करता है, उस शेषनाग को कच्छपराज ने अपनी पीठ के मध्य भाग पर धारण कर रक्खा है, किन्तु समुद्र ने इन कच्छपराज को भी हलकी सी चीज समझ कर अपनी गोद में रख छोड़ा है। इससे प्रत्यक्ष है, कि बड़ों के चरित्र की विभूति की कोई सामा नहीं है ॥३५॥

चौदह लोको को अपने फण पर धारण करने मे शेषजी को बोझा नहीं लगता, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है! इससे भी अधिक विस्मय की यह बात है, कि कच्छपराज ने चौदहो लोक समेत शेषनाग ॐ को भी अपनी पीठ पर धारण कर रक्खा है और उन्हें भार नहीं लगता! जब यह देखते हैं, कि समुद्र ने चौदहों लोक, शेषनाग और कच्छप इन सबको मामूली सी—अत्यन्त हल्की सी—चीज समझ कर, अनादर से, अपनी गोद मे रख रक्खा है, तब तो आश्चर्य्य की सीमा ही नही रहती!! तात्पर्य्य यह कि, बड़ो की सामर्थ्य की हद नहीं वे जो करें वही थोड़ा है।

ॐ हमारे पुराणों में लिखा हुआ है कि पृथ्वी शेषनाग के फणों पर ठहरी हुई है। शेषनाग कच्छपराज की पीठ पर स्थिति हैं, कच्छपराज बैल के सींग पर हैं इत्यादि। पर असल में यह बात नहीं है, पृथ्वी सूर्य्य की आकर्षण-शक्ति से ठहरी हुई है। ऊपर की बात बड़ों की महिमा दिखाने के लिये कही गई है।

वृन्द ने बड़ों की महिमा के सम्बन्ध मे खूब कहा है—

बडे जो चाहैं सो करैं, करन मतो उर धारि।
बड़े भार ले निरवहैं, तजत न खेद बिचारि ॥
बड़े भार ले निरवहे, तजत न खेदा बिचार।
शेष धरा धरि धर धरै, अब लौं देत न डार ॥

छप्पय।

धरयो धराकों शीश, शेष अति करयो पराक्रम।
शेष सहित सब भूमि, कमठ धर रह्यो बिना श्रम ॥
कमठ शेष अरुभूमिभार वाराह रह्यौ धर।
इन सबहिन कौ भार, एक जल के आश्रित कर ॥
इक इक सों विक्रम अधिक ही, करत बड़े अद्भुत सुकृति।
तिनके चरित्र सीमा रहित, अति विचित्र राखत सुवृति ॥३५॥

05. The Shesha (serpent) lifts the fourteen worlds on its hood It is (in its turn) borne by the great tortoise on the middle part of its back. The tortoise again is subjected to a dependent position to the Great Boar by the Ocean through malice Oh, how endless are the forms of behaviour displayed by the great !

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभि ॥
तुषाराद्रे स्सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ संपातः पयसि पयसां पत्युरुचितः॥३६॥

हिमालय-पुत्र मैनाक ने पिता को संकट में छोड़ कर, अपनी रक्षा के लिये, समुद्र की शरण ली—यह काम उसने अच्छा नहीं किया। इससे तो यही अच्छा होता, कि मैनाक स्वयं भी मदोन्मत्त इन्द्र के अग्निज्वाला उगलने वाले वज्र मे अपने भी पंख कटवा लेता ॥२६॥

हिमालय की स्त्री का नाम मेनका था। उसके एक पुत्र हुआ, उसका नाम मैनाक रक्खा गया। उस जमाने में पहाड़ों के पंख होते थे। उन पंखों से पहाड़ उड़ते फिरते थे और बिना किसी विचार के चाहे जहाँ पड़ कर मनुष्यों का संहार करते थे। इससे पृथ्वी-निवासी अतीव भयभीत हुए, तब इन्द्र ने मनुष्यों की रक्षा के लिये पर्वतो के पंख काटने को अपना वज्र छोड़ा। उस समय मैनाक अपने पिता हिमालय को सङ्कट में छोड़ कर समुद्र से मैत्री करके उसमें जा छिपा और इस तरह अपने तई इन्द्रवज्र के कष्ट से बचा लिया। वहाँ जाकर उसने नागकन्याओं से शादी करली।

> असूत सा नागवधूपभोग्यं
> मैनाकमम्भोनिधिबद्ध सख्यम् ।
> क्रुद्धेपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रा—
> ववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥("कुमार सम्भव" प्र० सर्ग)

मेनका ने नागवधुओं को ब्याहने वाले, समुद्र के साथ सख्य-सूत्र मे अबद्ध एवं पंख काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर भी वज्रप्रहार जनित वेदना अनुभव से-विहीन मैनाक को जना।
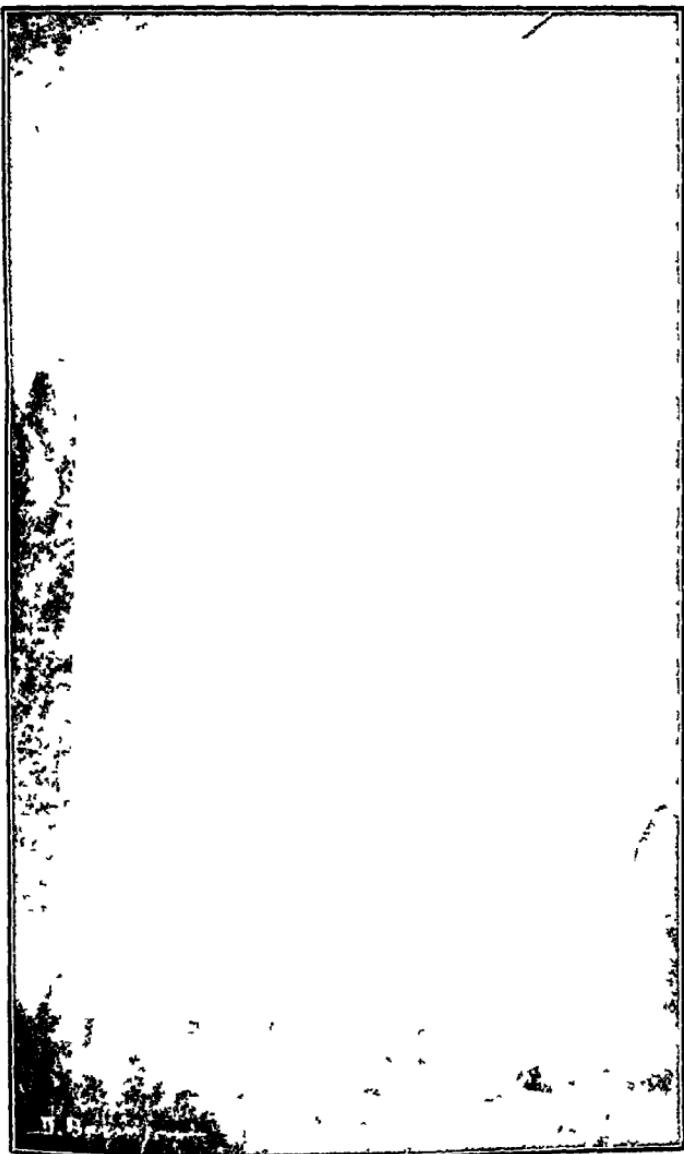
मैनाक ने इन्द्र के वज्र से भीत होकर पिता को संकट में छोड़ समुद्र की शरण ली। मैनाक ने यह अच्छा नहीं किया। [पृष्ठ १७६

पिता को कष्ट मे छोड़ कर अपनी प्राण रक्षा के लिये मैनाक का समुद्र में जा छिपना और वहाँ आनन्द करना अच्छा काम नहीं हुआ। जो माता-पिता जन्म दें, जो पुत्र के पालन पोषन में असीम कष्ट सहन करे, उन्हे विपद् के मुख मे छोड़ कर अन्यत्र भाग जाना बड़ी बुरी बात है। ऐसे लोगों की संसार निन्दा करता है। यह काम मानियो के योग्य नहीं।

सुख और दु:ख दोनो मे मनुष्य को अपनो के साथ रहना चाहिये। जो सम्पद् मे साथ रहते है और विपद् मे किनारा कस जाते है, वे नीच है।

कुण्डलिया।

हिमगिरि सिर धुनकै कहै, कहा कियौ मैनाक।
सहिवौ हो निज शीस पै, इन्द्रवज्र परिपाक॥
इन्द्रवज्र परिपाक, अग्निज्वाला में जरिवौ।
नीकौ हो सब भाँति, जहाँ सन्मुख ह्वै मरिवौ॥
दुरयो सिन्धु के माँहि, कहौ कौलौं ह्वै है थिर।
निलज लजायो मोहि, पिता नहिं जान्यो हिमगिर॥३६॥

36. It would have been better for the Mainaka mountain if its wings had been chopped off by the hard blow given by the excited god Indra with his thunderbolt like so many hideous sparks of blazing fire. But its action of falling into the water of the Ocean (saving itself from danger).

taking on heed of its father, the Himalaya, while the latter was in the grip of distress, was rather disgraceful.

यदचेतनोऽपि पादैःस्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकांतः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ? ॥३७॥

जब चेतना-रहित सूर्यकान्त-मणि भी सूर्य-किरण-रूप पैरों के लगने से जल उठती है, तब चेतना-सहित तेजस्वी पुरुष पर का किया अपमान कैसे सह सकते हैं ? ॥ ३७ ॥

सूर्य कान्त मणि बेजान चीज है, पर वह भी सूर्य के किरण-रूपी पैरों के लगने से अपने तईं अपमानित समझ कर मारे क्रोध के जल उठती है, तब जानदार तेजस्वी पुरुष दूसरों के किये अपमान को कैसे सह सकते है ? अर्थात् नहीं सह सकते । मानियों को अपमान से क्रोध आये बिना नही रह सकता । उन्हे अपमान मृत्यु-यन्त्रणा से भी अधिक भयङ्कर यन्त्रणादायक बोध होता है । चन्दन का स्वभाव शीतल है पर घिसने से उसमे भी आग निकल आती है ।

दोहा ।

बचन बाणसम श्रवण सुन, सहत कौन गिन त्याग ? ।
सूरजपद-परिहार ते, पाहन उगलत आग ॥३७॥

37. The Suryakanta stone, although lifeless, spits forth fire, it is touched by the rays of the Sun as (it were touched) by his feet. Then how can a respectable man bear an indignity inflicted by others ?
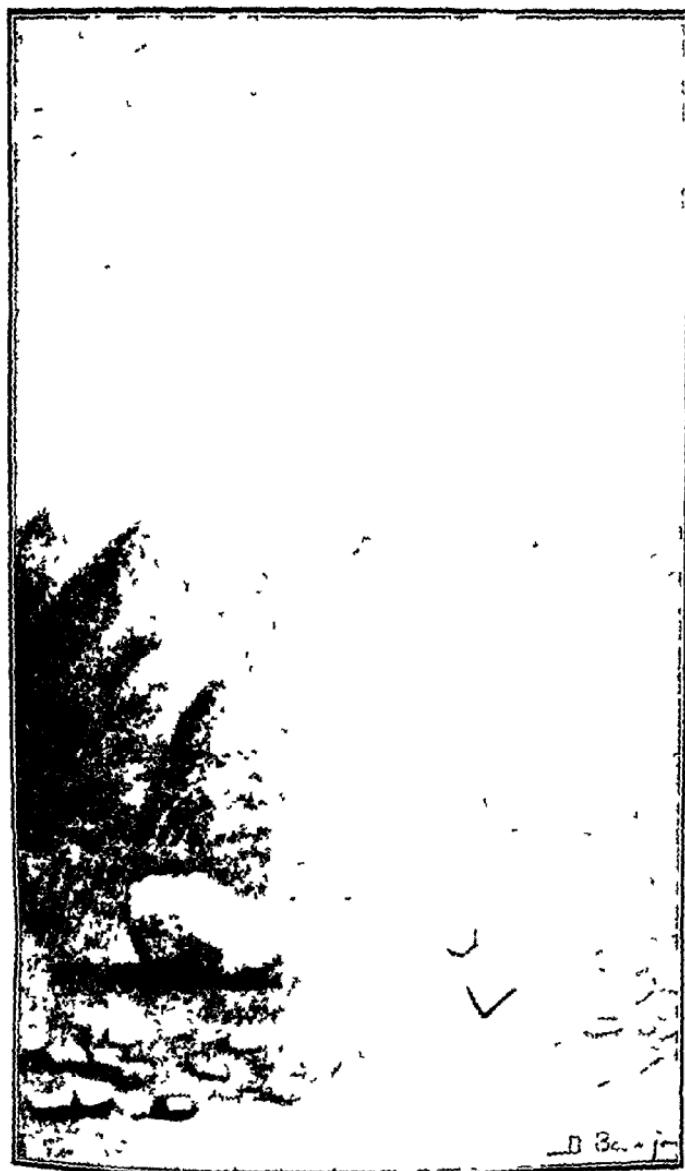
चेतना रहित सूर्य्यकान्तमणि, सूर्य्य किरणरूप पैरों के लगने से जल उठती है। मानियों का स्वभाव ऐसा ही होता है। [पृष्ठ १७८]

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥३८॥

सिंह चाहे छोटा बालक भी हो, तो भी वह मद से मलीन कपोलो वाले उत्तम गज के मस्तक पर ही चोट करता है। यह तेजस्वियों का स्वभाव ही है। निस्सन्देह अवस्था तेज का कारण नहीं होती ॥३८॥

सिंह का बच्चा, नितान्त छोटा होने पर भी, मदोन्मत्त हाथी के गण्डस्थलों पर ही चोट करता है; यह उसका स्वभाव है।

अवस्था से तेज नहीं होता। शकुन्तला-पुत्र महाराज भरत, बाल्यावस्था मे ही, हिमालय पर, सिंह के कान पकड़ कर उसके साथ खेला करते थे। स्वयं उसके पिता दुष्यन्त को बालक को देख कर बड़ा विस्मय हुआ था। उन्होंने कहा था—"यह निश्चय ही किसी महातेजस्वी सौभाग्यवान का पुत्र-रत्न है।" जब उन्हे मालूम हुआ कि, यह उनका ही पुत्र है, तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। तेजस्वियों मे शूरवीरता स्वभाव से ही होती है। कृष्णचन्द्र ने शिशु अवस्था में ही पूतना जैसी विकराल राक्षसी के प्राणनाश किये। सात-आठ साल की उम्र में तो उन्होंने अनेक महाबली राक्षसो का निधन किया। कंस-जैसे महाबलशाली को भी उन्होंने लड़कपन में ही हँसते-हँसते मार दिया। महात्मा बुद्ध ने ऐश-आराम मे पलने और अतीव कोमल होने पर भी

ऐसे नटखट घोड़े को अपने काबू में कर लिया, जो बड़े-बड़े शहसवारो को अपनी पीठ से गेंद की तरह उछाल-उछाल कर नीचे फैक देता था। सिकन्दर आजम ने भी बालकपन में ऐसे ही एक घोड़े को अपने वश में कर लिया था, जिसे राज्य के नामी-नामी चाबुकसवार काबू मे न कर सके थे। उनके पिता फिलिप को पुत्र के इस अपूर्व कौशल से बड़ी प्रसन्नता हुई। कहाँ तक बतायें, ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। अभिमन्यु कोई बड़ी उम्र के न थे, पर उन्होने वह पराक्रम दिखाया कि सात-सात महारथियो के दाँतो पसीने आगये। निस्सन्देह तेजस्वियो में शूरवीरता स्वभाव से ही होती है इसमे अवस्था को हेतु मानना भूल है।

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है—

> बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्।
> तेजसा सहजातानां, वयः कुत्रोपयुज्यते॥

बालसूर्य की किरणें पर्वतों पर गिरती है। तेज के साथ पैदा होने वालो की अवस्था नही देखी जाती।

हाथी इतना बड़ा जानवर है कि, पहाड़-सा दिखता है। उसमें बल की भी कमी नहीं, पर वह जरा से अंकुश के वश मे हो जाता है। क्या अंकुश हाथी के बराबर होता है? वज्र की चोट से पर्वत गिर पड़ते हैं; क्या वज्र पर्वत के समान है? दीपक के जलने से घोर अन्धकार नष्ट हो जाता

है; पर क्या दीपक अन्धकार के बराबर है? जिसमे तेज है वही बलवान है। शरीर की मुटाई और अवस्था से कुछ नहीं होता।

दोहा।

टूट सिंह शिशु करि निकर, विचलावै छण माहिं।
तेजवान की प्रकृति यह, तेज हेतु बय नाहिं ॥३८॥

38. Even the cub of a lion falls on the elephants, the upper parts of whose trunks are besmeared with *mada* (fluid) It is the nature of the high-spirited and not their age that is the cause of their boldness and courage

---

धन-महिमा।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधोगच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाःसमस्ता इमे ॥३९॥

यदि जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से भी नीचे चले जायें, शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि मे जल कर भस्म हो जाँय और वैरिन शूरता पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारा धन नष्ट

त्याग देते हैं ; उसकी आपदाये बढ़ जाती हैं। अच्छे कुल मे पैदा हुई भार्य्या भी उसे प्यार नही करती और नीति-मार्ग से पुरुषकार द्वारा प्राप्त हुए मित्र भी उसके पास नहीं जाते।

निर्धनता शरीर धारियो को परम दुःख दायिनि और उनका क़दम-क़दम पर अपमान कराने वाली है। निर्धनता की वजह से, निर्धन मनुष्य के बन्धु बान्धव निर्धन को जीवितावस्था में ही मृतक समझते हैं। जिसके पास कौड़ी नहीं होती, उससे उसके निकट-सम्बन्धी भी लजाते हैं और उससे अपना सम्बन्ध रिश्ता छिपाते हैं। बहुत क्या, जिसके पास कौड़ी नहीं होती, उसके गाढ़े मित्र भी उसके शत्रु हो जाते है।

शरीरधारियो की निर्धनता दरिद्र की मूर्ति और आफतो का घर है। सच तो यह "मरण" का ही दूसरा नाम "निर्धनता" है।

दरिद्र मनुष्य यदि कुछ देने की इच्छा से भी किसी धनी के घर जाता है, तो धनी और उसके घर वाले मन मे यही समझते हैं कि, यह कुछ मॉगने आया है; इसलिये उससे बैठने को भी नहीं कहते; अतः निर्धनता को धिक्कार है।

जिस तरह काक-जौ और बन-तिल निकम्मे समझे जाते हैं ; उसी तरह धनहीन भी निकम्मा समझा जाता है।

बिना दाढ़ का साँप और बिना मद का हाथी जिस तरह निकम्मा होता है; उसी तरह बिना धन का पुरुष भी निकम्मा होता है।

जिसके पुत्र और सुमित्र नहीं उसका घर सूना है; मूर्ख की सब दिशाएँ सूनी हैं और दरिद्र का तो सभी सूना है।

ऐसा कोई काम नहीं, जो धन से सिद्ध न होता हो; धन से स्वर्ग मे भी सीढ़ी लग जाती है। निर्गुण धनी गुणी समझा जाता है; नीच धनी उत्तमवंशज समझा जाता है; दुश्चरित्र धनी सच्चरित्र समझा जाता है; महाकायर धनी बड़ा भारी शूरवीर समझा जाता है, इसी से कहने वाला कहता है— जात पाँत रसातल को चली जाय; गुण रसातल से भी नीचे चले जायँ; सुशीलता पर्वत से गिर कर चूर चूर हो जाय; स्वजन अग्नि में भस्म हो जायँ और शूरता पर वज्र गिरे तो हर्ज नहीं; केवल हमारा धन नाश न हो, उसके आने की राहें खुली रहे।

सारांश—संसार मे धन ही सर्वोपरि और दूसरा परमेश्वर है। धनहीन मनुष्य प्राणहीन है।

छप्पय।

जाति रसातल जाहु, जाहु गुण ताहू के तर।
परो शील पर शैल, अग्नि में जरौ सुपरि कर॥
शूरतन के शीश, वज्र वैरिन को बरसहु।
एक द्रव्य बहु भाँति, रैन दिन धन ज्यों सरसहु॥

जिहि बिन सब गुण हैं तृणहिं सम, कछु कारज नहिं कर सकहिं।
कञ्चन अधीन सब लोग सुख, बिन कञ्चन अकबक बकहिं ॥३६॥

39. Let (the superiority of) caste go to the devil; let a host of good qualities find even a worse fate, let good manners fall down from a mountain (and meet an unnatural death); let kins men be burnt (down) by fire; let a thunderbolt soon fall over (the head of) chivalry, ours are riches alone, without which all these good things are no better than a bit of straw.

तानीन्द्रियाणी सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहिताः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

सारी इन्द्रियाँ वे की वे ही हैं, काम भी सब वैसे ही हैं: परन्तु एक धन की गरमी बिना वही पुरुष और-का-और हो जाता है, निस्सन्देह यह एक विचित्र बात है ॥४०॥

मनुष्य नहीं बदल जाते, केवल अवस्था बदल जाती है; अवस्था के बदल जाने से ही मनुष्य और-का-और हो जाता है। धनावस्था में जिस मनुष्य के कर्म, बुद्धि और वचन-शक्ति की लोग भरि-भरि प्रशंसा करते हैं; निर्धनावस्था होते ही उसी

मनुष्य के उन्हीं कर्म, बुद्धि और वचन शक्ति की लोग घोर निन्दा करने लगते है।

धनावस्था मे मनुष्य के नाक, कान, नेत्र प्रभृति जो इन्द्रियाँ होती है, निर्धनावस्था मे भी वे सब ज्यो-की-त्यो, जहाँ-की-तहाँ और जैसी-की-तैसी बनी रहती हैं। धनावस्था मे वह जैसी बाते करता है,वैसी ही निर्धनावस्था मे भी करता है;धनावस्था मे वह जैसे कर्म करता है, वैसे ही कर्म वह निर्धनावस्था मे भी करता है;-धनावस्था मे वह जैसी अक्ल की तेजी दिखाता है, वैसी ही तेजी वह निर्धनावस्था मे भी दिखाता है; अर्थात् निर्धनावस्था मे उसी मनुष्य की वे ही सब शक्तियाँ—विचार-शक्ति, वचनचातुरी और काम करने की शक्ति कम नहीं हो जाती है—ज्यो की त्यो रहती हैं, पर लोगो को निर्धनावस्था मे वही मनुष्य इन सबसे हीन मालूम होता है, यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। बात यह है कि मनुष्य के पास से धन का निकल जाना वैसा ही है, जैसा कि शरीर से प्राण का निकल जाना। प्राणहीन देह को जिस तरह मनुष्य निकम्मी समझते हैं, उसी तरह धनहीन मनुष्य को भी निकम्मा समझते है।

कहा है—

दौर्गत्यं देहिनां, दुःखमस्मानकर परम्।
येन स्वैरपि मन्यते, जीवन्तोऽपि मृता इव ॥

निर्धनता मनुष्य का घोर दुःख और अपमान कराने वाली है। निर्धन के भाई-बन्धु निर्धन को जीवित अवस्था में ही मुर्दे की तरह समझते है।

दोहा।

वै इन्द्री वै कर्म है, वही बुद्धि वही ठौर।
धनविहीन नर छणहि में, होत और तें और ॥४०॥

40. All his senses remain the same, the same are his actions, his unfaltering reason as well as his speech, even the individual is the same, but it is strange that, destitute of the pride of wealth, in a moment he looks like another man.

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥४१॥

जिसके पास धन है, वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है। इससे सिद्ध हुआ कि, सारे गुण धन में ही हैं ॥४१॥

जिसके पास धन है, वह अकुलीन होने पर भी कुलीन, अपण्डित होने पर भी पण्डित, अशास्त्रज्ञ होने पर भी शास्त्रज्ञ, बोलना न जानने पर भी सुवक्ता और कुरूप होने पर भी देखने-योग्य खूबसूरत है।

कहा है --

> यस्यार्थास्तस्य मित्राणि
> यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
> यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके
> यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥

—:•:—

> शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी
> शस्त्राणि शास्त्राणि विदां करोति ।
> अर्थं विना नैव यशश्च मान
> प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके ॥

जिसके पास धन है उसके मित्र हैं; जिसके पास धन है, उसी के बन्धु-बान्धव है; जिसके पास धन है, संसार मे वही पुरुष है; जिसके पास धन है, वही पण्डित है।

शूरवीर, रूपवान्, सुन्दर, वाचाल, शस्त्र विद्या और शास्त्र-विद्या जानने वाला मनुष्य भी, इस लोक मे धन बिना यश और मान नहीं पाता; अर्थात धनहीन मे इन गुणो का होना न होने के ही समान है।

और भी कहा है—

> पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
> वन्द्यते यदवन्द्योपि, स प्रभावो धनस्य च ॥

धनवान यदि पूजा करने-योग्य नही होता, तो भी लोग उसकी पूजा करते हैं; धनवान यदि पास जाने लायक भी नही

होता, तो भी लोग उसके पासजाते है और धनवान यदि प्रमाण करने योग्य नही होता, तो भी लोग उसे प्रणाम करते हैं। यह सब धन की माया है।

भोजन से जिस तरह इन्द्रियो में सामर्थ्य आती है, उसके बल से वे सब कामो मे समर्थ होती हैं; उसी तरह धनसे संसार के सब काम होते हैं। संसार मे पैसा ही हर्ता, कर्ता और विधाता है—पैसा ही माता, पिता और मित्र है, बहुत क्या पैसा ही परमात्मा है। लूथर महाशय कहते है—

The God of this world is riches, pleasure, and pride.

इस संसार का खुदा धन, सुख और गरूर है।

सचमुच, धन मे ही सारे गुण है। धन से ही मनुष्य मनुष्य है; धन बिना मनुष्य मृतक है। धन हीन का मरजाना या बनमे रहना भला, क्योंकि धन हीन का कोई आदर नही करता। और तो क्या, सगे माँ-बाप और स्त्री तक धन हीन को नफरत की नजर से देखते है। इसलिये समझदार लोग जब उद्योग करने पर भी धन को प्राप्त नही कर सकते—सब कुछ करके थक जाते हैं, तब अपमान के भय से बन मे चले जाते है।

कहा है: —

वर बन व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम्।

द्रुमालयः पक्व फलाम्बु भोजनम्॥

तृणानि शय्या परिधान वल्कलम् ।
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

सिंह व्याघ्रादि वाले वन मे पेड़ के नीचे बसना, पके-पके फल खाना, जल पीना और घास की शय्या पर सोना भला; पर भाई-बन्धुओं के बीच मे निर्धन होकर रहना भला नहीं ।

और भी कहा है—

यत्र देशेऽथवा स्थाने भोगान्भुक्त्वा स्ववीर्य्यतः ।
तस्मिन् विभवहीनो यो वसेत्स पुरुषाधमः ॥

जिस देश या जिस स्थान मे अपने पराक्रम से अनेक भोग भोगे हो, उसी स्थान में जो धनैश्वर्य्यहीन होकर रहता है, वह नीच है।

धन से ही मनुष्य में मान, दर्प, विज्ञान, विलास और बुद्धि प्रभृति होते हैं और धन के साथ ही ये सब नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि प्रभृति रहे कहाँ से ? कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता इन सबको नष्ट कर देती है। धन के नाश होने पर निश्चय ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसे रात-दिन घी, तेल, नमक, चाँवल, कपड़े और ईंधन की चिन्ता लगी रहती है। जब बुद्धि ही नष्ट हो गई, तब मनुष्य में रहा ही क्या ? वह तो बिना पतवार की नाव हो गई। इसलिये जीवन का बेड़ा पार करने के लिये मनुष्य को धन

अवश्य ही संग्रह करना चाहिये। धन बिना धर्म भी नहीं होता। धर्म और अर्थ आपस में एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। अर्थ—धन द्वारा धर्म अर्जित होता है। धन प्राप्त होने पर या इन्द्रियो के तृप्त होने पर जो सुख मिलता है, उसे 'काम' कहते है। मनुष्य सुखसेव्य द्रव्य के भोगने से जिस प्रसन्नता को प्राप्त होते है, वही काम का फल है। उसके उपयोग से वञ्चित होने पर मानव जन्म निष्फल हो जाता है। अर्थ और काम के त्रिवर्ग मे परिगणित होने से—धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिवर्ग के प्रति समान यत्न करना पड़ता है। मनुष्य को दिन के पहले भाग मे धर्माचरण, दूसरे भाग मे अर्थ-सञ्चय और तीसरे भाग में कामानुशीलन करना चाहिये। जो यथासमय त्रिवर्ग-साधन करते हैं, वे धर्मतत्व के जानने वाले पण्डित हैं। धन बिना धर्म और काम की प्राप्ति में बाधा पड़ती है; इसलिये धनोपार्जन अवश्य ही करना चाहिये और साथ ही सञ्चित धन की रक्षा करनी चाहिये* । धन मे स्वयं सुख भोगना चाहिये और उसे सत्पात्रो को देकर पुण्य-संचय करना चाहिये। धन की गर्मी मनुष्य के तेज को बढ़ाती है और यदि उसका भोग और त्याग हो, तब तो कहना ही क्या ?

---

* लक्ष्मी कैसे आती है, किनके पास आती है और लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये—ये सब बातें हमने विस्तार-पूर्वक इसी पुस्तक के ८८ वें श्लोक के नीचे लिखी हैं।

दोहा

सोइ पण्डित वक्ता गुणी, दर्शन योग कुलीन।
जाके ढिंग लक्ष्मी अहे, सब गुण तिहिं आधीन ॥४१॥

41. The man is nobly born and he is wise as well as qualified and is to be considered a good speaker as well as personage fit to be seen, who has wealth. All the good qualities rest in the possession of gold

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ॥
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मैत्री
चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमदाद्धनम् ॥४२॥

दुष्ट मन्त्री से राजा, संसारियों की संगति से संन्यासी, लाड से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, खल की सेवा से शील, मदिरा पीने से लज्जा, देख-भाल न करने से खेती, विदेश मे रहने से स्नेह, प्रीति न करने से मित्रता, अनीति से सम्पत्ति और अन्धाधुन्ध खर्च करने से धन नष्ट हो जाता है।

जो मन्त्री दिल से राजा का भला चाहता है, समय पर राजा को उचित सलाह देता है; राजा के धन को स्वयं नहीं हड़पता, रिश्वत नहीं खाता, व्यसन और व्यभिचार से परहेज करता है, प्रजा को सन्तुष्ट करके राजा का धन बढ़ाता है; स्वार्थसाधन के लिये राजा को कुपथ पर नहीं चलाता; बल्कि

राजा कुपथ पर चलता है, तो निर्भय होकर राजा और राज्य की भलाई के लिये राजा को रोकता है, वही मन्त्री अच्छा होता है, उससे राजा का राज नष्ट नहीं होता, किन्तु यदि मन्त्री विपरीत गुणों वाला होता है, अपना उल्लू सीधा करने के लिये राजा के व्यभिचारादि निन्द्य कर्मों का समर्थन करता है, वह राजा का बैरी होता है। वैसे मन्त्री को कुमन्त्री कहते हैं। कुमन्त्री की कुमन्त्रणाओं से, राजा अवश्य ही नष्ट हो हो जाता है।

कहा है—

> लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री।
> नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः॥
> विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं।
> राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य॥

लोभी का यश, चुगली की मित्रता, नष्ट-क्रिया वाले का कुल, लोभी का धर्म, कामासक्त का विद्याफल, कृपण का सुख और खराब मन्त्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है। राजा और राज्य एक ही बात है। राज्य नष्ट होगा तो राजा नष्ट होगा और राजा नष्ट होगा तो राज्य नष्ट होगा। शकुनि की मन्त्रणा से दुर्योधन नष्ट हुआ और दुर्योधन के नष्ट होने से कौरवों का राज्य ही नष्ट हो गया। शकटार ने अपने अन्न-दाता राजा को खोटी-खोटी सलाहे देकर राजा और राज्य का

विनाश करा दिया। वह ऊपर से राजा से मीठी-मीठी बातें करता और जो सलाह देता वह राजा के विनाश की, क्यों कि भीतर से वह दुष्ट राजा के वैरी चाणक्य से मिला रहता था।

संन्यासी—संसार-त्यागी वैरागी गृहस्थो की और विशेष कर स्त्रियो की सङ्गति से नष्ट हो जाता है, इसमे जरा भी सन्देह नही। "गुलिस्ताँ" में एक कहानी है—"दमस्कस शहर के निकट के एक वन मे एक फकीर रहता था। वह पेड़ो के पत्ते खाकर जीवन-निर्वाह करता था। एक रोज वहाँ का बादशाह उसके दर्शन करने गया और उसे बहुत कुछ कह-सुन कर अपने शहर मे ले आया। अपने निज के बाग में उसका डेरा करा दिया और चन्द अव्वल दर्जे की खूबसूरत दासियाँ उसकी सेवा में नियुक्त कर दी। चन्द रोज बाद ही वह फकीर उत्तमोत्तम भोजन करने और भाँति-भाँति की बढ़िया पोशाके पहनने तथा कुँवारी स्त्रियो और उनकी सहेलियों को सुहबत का आनन्द लूटने लगा। बहुत लिखना वृथा है, वह पूरा अमीर और ऐयाश बन गया। महापुरुषों ने कहा है कि, सुन्दरी युवती की ज़ुल्फे विचार शक्ति के पैरों की बेड़ियाँ और अक्ल की चिड़िया का फन्दा है—यह बात सोलह आने ठीक हुई।

"एक दिन बादशाह फिर उस फकीर से मिलने गया। उसने देखा कि फकीर का रङ्ग-रूप ही बदल गया है। वह खूब मोटा-ताजा हो गया है और शरीर का रङ्ग गुलाब सा

हो गया है। वह एक रेशमी मसनद के सहारे लेटा हुआ है और एक परीजाद-सा उसके पीछे खड़ा मोरछल कर रहा है। कुछ बात चीत के बाद बादशाह ने कहा—"मुझे विद्वान् और एकान्त वासी संन्यासी अच्छे लगते हैं।" एक अनुभवी और समझदार मन्त्री ने कहा,—"हुजूर ! आप विद्वानों को धन दें, जिससे और लोग भी विद्वान बनें और संसार त्यागी संन्यासियों को कुछ भी न दें, जिस से उन की विरक्ति बनी रहे।" बादशाह बुद्धिमान मन्त्री की बात से खुश हुआ और अपने किये पर पछताया।

उन अमीरों को जो साधुओं को बुला कर मखमली गद्दे-तकियों पर बिठाते है, उन्हे उत्तमोत्तम षट्रस भोजन कराते हैं, मोटरों और बग्गियों में हवा खिलाते हैं, युवतियों को उनकी सेवा में नियुक्त करते हैं—इस कहानी से सबक सीखना चाहिये और वैरागियो को तो इससे खूब ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उन्हें खूब खयाल करना चाहिये कि, इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल है। ये सदा मनुष्य को विषयों की ओर खींच कर ले जाने की चेष्टा किया करती हैं। विश्वामित्र जैसे तपस्वी मेनका के रूपजाल मे फँस कर तप भङ्ग कर बैठे शङ्कर जैसे योगीश्वर मोहिनी की रूपच्छटा पर मुग्ध होकर अपनी अक्ल खो बैठे और पाराशर नाव मे ही नाविक की कन्या पर लट्टू हो गये। जब ऐसे-ऐसे जितेन्द्रियो के दिल मोहिनियों की मोह-पाश मे फँस गये,

तब साधारण साधु-संन्यासी किस बाड़ी के बथुए हैं? कहा है: —

तीव्र तपस में लीन, नहिं कर इन्द्रिय विश्वास।
विश्वामित्र जु मेनका कण्ठ लगाइ हुलास॥

गिरधर कविराय भी कहते हैं.—

रहनो सदा एकान्त को, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन श्रवण अद्वैत को, यही मतो है सन्त॥
यही मतो है सन्त, तत्व को चितवन करनो।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो॥
कह गिरधर कविराय, वचन दुर्जन को सहनो।
तज के जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो॥

बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग न लागे कोय॥
दाग न लागै कोय, जगत में रहै अकेला।
राग द्वेष पुन प्रेत, न चित्त को करे विछेदा॥
कह गिरधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होइ न कहुँ आसक्त, यथा गङ्गा जल बहता॥

लाड़ या दुलार से पुत्र निस्सन्देह खराब हो जाता है। अनेक लोग बचपन में अपने लड़कों का इतना लाड़ करते हैं, कि उसकी हद नहीं। लड़के नीचों की सङ्गति में रहने लगते हैं, तो उन्हें मना नहीं करते। वे जूआ खेलते, सिगरेट-तम्बाकू पीते,

वैश्याओं मे जाते है, तो भी चुप्पी साध जाते हैं। पीछे वही लड़के जब बड़े हो जाते हैं; तब माता-पिता का कलेजा जलाते हैं। उस वक्त क्या हो सकता है? बड़े होने पर, वे एक नही सुनते। बाजे-बाजे तो अपनी जनक-जननी पर ही हाथ तक उठाने लगते हैं। विद्वानो ने कहा है—"मिट्टी के कच्चे घड़े पर जैसे निशान बनाइये, बन जायँगे; पर पक्के घड़े पर निशान नहीं हो सकते। हरी लकड़ी को चाहे जितना मोड़ लीजिये, वह मुड़ जायगी; सूखने पर वह नही मुड़ सकती।" जिसका बचपन मे लाड़ किया जाता है—सत् शिक्षा नहीं दी जाती, वह बड़ा होने पर गुणवान् और शीलवान् नहीं होता। इसलिये कहा है:—

लालने बहुवो दोषः, ताड़ने बहुवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रंच शिष्यंच, ताडयेत् न तु लालयेत्॥

'लाड़ करने मे बहुत से दोष हैं; ताड़ना करने मे बहुत गुण है; इसीलिये पुत्र और शिष्य को ताड़ना देनी चाहिये, लाड़ न करना चाहिये। "गुलिस्ताँ" मे भी कहा है—

वर सरे लौह ओ नविश्तः बजर।
जोरे उस्ताद बह, जे मेहरे पिदर॥

यह बात सोने के अक्षरो मे लिखी जाने योग्य है; कि माँ-बाप के लाड़ से शिक्षक की ताड़ना अच्छी है; पर ताड़ना का यह मतलब नहीं, कि लड़के डण्डों से पीटे जावे। मारने

पीटने से लड़के अक्सर खराब होते देखे जाते है। आँखो से जो काम होता है, वह डण्डे से नही होता।

ब्राह्मण का सबसे पहला काम ब्रह्मचर्य्य व्रत रख कर विद्या पढ़ना है, जो ब्राह्मण विद्याऽध्यन नहीं करता, वह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। पर आज कल अधिकांश ब्राह्मण-सन्तान रोटियाँ पकाने, पानी भरने, दरबानी करने या अन्यान्य सेवा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करने मे ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझते है। आज कल बहुत से ब्राह्मण अपने मन मे इस बात को समझ बैठे हैं, कि हम मन्वादिक स्मृतिकारो की आज्ञा पालन करे चाहे न करे, हम वेदो का पठन-पाठन और यज्ञ-हवनादि कर्म करे चाहे न करे, हमे हमारे ब्राह्मणत्व-पद से कोई उतार नही सकता। हम चाहे परले सिरे के अज्ञानी, कुकर्मी, जूआ-चोर और व्यभिचारी ही क्यो न हों—है हम ब्राह्मण के ब्राह्मण। पहले वेद के न जानने वाले ब्राह्मण को लोग श्राद्ध तक मे निमन्त्रण न देते थे, अपढ़ ब्राह्मण से कोई कर्मकाण्ड न कराते थे, क्योकि शास्त्रकारो ने वेद न जाननेवाले का कराया हुआ श्राद्ध मृतकवत् कहा है; इसीलिये ब्राह्मण लोग, कम-से-कम अपनी उपजीविका के ख्याल से, अवश्य ही वेदपाठी होते थे। आजकल अधिकांश द्विवेदी त्रिवेदियो की सन्तान जमादारी करती, रसोईगीरी करती या बसूला चलाती हैं। बहुसंख्यक चतुर्वेदियों ने तो माँगना-खाना ही अपना काम समझ लिया है। हम यह नही कहते कि, सभी ब्राह्मण

विद्वान् नही, विद्वान् भी होते हैं; पर जिन्हे विद्वान् कहना चाहिये, जिन्हें वेद के पूर्ण ज्ञाता कहना चाहिये, बड़ी कठिनता से, खोजने पर मिलते हैं। गुरुओ का अधःपतन होने से शिष्यो का भी अधःपतन हो रहा है। हमने ये पंक्तियाँ अपने गुरुओं की निन्दा या हसी करने की गरज से नहीं लिखी है। हमारे अन्तरात्मा मे वेदना होती है, हमे गुरुओं का अधःपतन खटकता है, इसी से लिखी हैं।

प्राचीन समय में ब्राह्मण आदि चारो वर्ण समझते थे, कि जाति—गुण और कर्म से है—जन्म से नहीं; इसी से वे गुण सम्पादन करने की फिक्र करते थे और धर्मशास्त्र पर चलते थे। प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म करता था। जब से यह डर मिटा; लोग समझने लगे कि, हम चाहे मिस्त्रीगीरी करें अथवा बावर्चीगीरी करें—रहेंगे वही जो हैं; अर्थात् ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय की सन्तान क्षत्रिय और वैश्य की संतान वैश्य ही कहलायेगी। संसार में भय से ही काम होता है। दण्ड-भय से ही जगत् मे शान्ति है। अगर दण्ड-भय न हो, तो एक मनुष्य दूसरे की चटनी कर खाय।

शुक्राचार्य महाराज लिखते हैं—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥
ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वेते किं नु ब्राह्मणः।
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्मयं तेजः प्रपद्यते॥

ज्ञान-कर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः॥
इज्याध्ययन दानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम्।
प्रतिग्रहो ध्यापनं च याजनं ब्राह्मणेधिकम्॥
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायतेहि स्वकर्मणा॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और म्लेच्छ—ये सब जन्म से नहीं होते, किन्तु गुण और कर्म से होते हैं।

यों तो सभी जीव ब्रह्मा से ही पैदा हुये हैं। क्या वे सभी ब्राह्मण हो सकते हैं? कभी नहीं। वर्ण और विद्या से ब्रह्मतेज की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जो मनुष्य ज्ञान और कर्म से देवताओं की उपासना-आराधना में लगा रहता है एवं शान्त, जितेन्द्रिय और दयालु होता है,—वही ब्राह्मण होता है।

यज्ञ करना, पढ़ाना और दान देना,—ये द्विजातियों यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के कर्म हैं। दान लेना; यज्ञ करना और पढ़ाना—ये तीन कर्म ब्राह्मण के लिये अधिक है।

ब्राह्मण अपने कर्म के कारण से ही सबसे अधिक माना जाता है।

अब अगर हम इन सब बातों की विस्तृत आलोचना करें, तो पचासों पृष्ठ इस एक ही विषय से काले हो जायँ। इस ग्रन्थ में इन बातों को इतना भी लिखना उचित नहीं,

और भी विस्तृत रूप से लिखना हो तो और भी अनुचित होगा। पाठक स्वयं ऊपर की महात्मा शुक्राचार्य्य की कही हुई बातों पर विचार करें। इशारा हमने कर दिया है। कितने ब्राह्मण शान्त, जितेन्द्रिय और दयालुचित आपको नजर आते हैं? कितने अपने कर्त्तव्य-कर्मों पर आरूढ़ दिखाई देते हैं? विचार करे कि क्रोध, अजितेन्द्रियता और अशान्तता का ठेका आजकल, किसने ले रखा है? जिन भूदेवों से पहले बड़े-बड़े महीपाल थरथर काँपते थे, उनके स्वागत के लिये नगर द्वार तक जाते थे, उनकी आज की हालत देख कर हमारी काठ की कलम भी रोती है, इसी से हमने ये पंक्तियाँ लिखी हैं। अगर यही दशा और सौ-पचास वर्ष रही. तो क्या ब्राह्मण—वास्तविक ब्राह्मण—अमेरिका के रेड इण्डियनों की तरह दुष्प्राप्य और दुर्लभ न हो जायँगे? और जब गुरु न रहेंगे—उपदेशों का अभाव हो जायगा, तब हम शिष्यों की और भी अधोगति न हो जायगी? हमारा तो यही कहना है—हमारे गुरु योगिराज भर्तृहरि के "विप्रोऽनध्ययनात् नश्यति" ब्राह्मण विद्या न पढ़ने से नष्ट हो जाते हैं—इस महोपदेश पर ध्यान धरें: तभी भारत का मंगल होगा। ब्राह्मण जाति ही भारत की उन्नति और अवनति की मूल-कारण है।

कपूत से कुल नष्ट हो जाता है,—इस बात को प्रायः सभी जानते हैं; तो भी दस-पाँच पंक्तियाँ लिखने में हर्ज नहीं।

कपूत से न माता-पिता को सुख मिलता है, न बन्धु-बान्धवों का भला होता है। कपूत चोरी, अन्याय, व्यभिचार, पर स्त्री-हरण, गुण्डागीरी प्रभृति ऐसे-ऐसे कुकर्म करता है, जिनसे उसे स्वयं पिटना पड़ता और जेल की हवा खानी पड़ती है; इससे माता-पिता का हृदय जलता और कुल मे कालिमा लगती है। सपूत कुल को ऊँचा उठाता है और कपूत कुल को रसातल मे पहुँचाता है। कौरवकुल को एक कपूत दुर्योधन ने नष्ट ही कर दिया। कहा है—

एकेन शुष्क वृक्षेण, दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वनंसर्वं, कुपुत्रेण कुलं यथा॥

आग से जलता हुआ एक ही सूखा वृक्ष सारे वन को नष्ट कर देता है; उसी तरह एक कपूत से कुल नाश हो जाता है।

शेख सादी ने कहा—

ज़नाने बारदार ऐ मर्द हुशियार।
अगर वक्त विलाहत मार ज़ायेंद॥
अज़ां बेहतर के नज़दीके ख़िरदमन्द।
के फ़र्ज़न्दाने ना हमवार ज़ायेन्द॥

कपूत जनने की अपेक्षा अगर जननी सर्प जने, तो बुद्धिमान उसको अच्छा समझता है।

हमारे यहाँ भी कहा है—

वरं गर्भस्रावो, वरम् ऋतुषु नैवाभिगमनं ।
वरं जात प्रेतो, वरमपि च कन्यैवजनिता ॥
वरं वन्ध्या भार्य्या, वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न ।
चाविद्वान् रूपद्रविण गुण युक्तोपि तनयः ।

गर्भ गिर जाना भला, ऋतुस्नान के बाद स्त्री के पास न जाना अच्छा, पैदा होते ही मर जाना भला, कन्या पैदा होना भला, स्त्री का बाँझ रहना भला, गर्भ मे रहना ही भला; परन्तु रूप-धन सम्पन्न मूर्ख—कपूत—का पैदा होना भला नहीं।

दुष्ट की संगति से सुशीलता नाश हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं। इस विषय मे पहले कई बार लिख आये हैं। एक बार लिखी बात को बारम्बार लिखने से कोई लाभ नहीं। दुश्चरित्र कोई भी हो, चाहे स्वामी हो, चाहे सेवक हो, चाहे मित्र हो चाहे पड़ोसी—दुश्चरित्र की संगति से सच्चरित्र भी नष्ट हो जायगा।

मदिरा-पान करने की चाल प्राचीन काल से ही चली आती है। शास्त्रो में लिखा है, मदिरा के परिमित रूप से या मात्रा से पीने से बुद्धि फुरती है, श्रेष्ठता, धीरता और चित्त के निश्चय का विस्तार होता है एवं स्वास्थ्य-लाभ और शोक नाश होता है। वैद्यक-ग्रन्थो मे लिखा है कि, मदिरा से बढ़कर शोकनाशक पदार्थ

और है ही नही; पर बुद्धिमानो को इससे सर्वथा दूर ही रहना चाहिये। थोडी-थोड़ी पीने से यह बढ़ जाती है और अत्यन्त पीने से बुद्धि का लोप और विनाश होता है। इससे सब अनर्थों के मूल काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है। विकलता, पृथ्वी पर गिरना, मर्न में आवे सो बकना प्रभृति जो लक्षण सन्निपात मे होते हैं, वही सब मद्य मे होते है। मनुष्य के हाथ काँपने लगते है, कपड़े-लत्तो की सुध नही रहती, नंगे हो जाने से भी लाज नहीं आती। पश्चिम दिशा मे सूर्य्य के अस्त होते समय तेजहानि और रागता प्रभृति जो दशा सूर्य्य की होती है, वही दशा शराबी की होती है। क्रोध और निर्लज्जता इसके सब से बड़े दुर्गुण हैं। शराबी माता पिता, बहन और बेटी तक के सामने ऐसी बेशरमी करता है, जिसके लिखने में काठ की कलम भी लजाती है। कहा है—

> एकतश्चतुरो वेदा, ब्रह्मचर्यं तथैकतः।
> एकतः सर्वं पापानि, मद्यपान तथैकतः॥

एक ओर चारो वेद, एक ओर ब्रह्मचर्य, एक तरफ सारे पाप और एक तरफ मद्यपान।

किसी कवि ने कहा है—

> मद्यव्यसन सो मत्त नर, करै न निश्चर काम।
> मद्य पीय यादव गये, तुरत प्रहस्त यमधाम॥

मद्य पीने से ही यादव-कुल नष्ट हो गया। मद्य पीकर यादवगण इतने निलज्ज हो गये थे, कि उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् की भी कान न की।

विदेश मे रहने से स्नेह निश्चय ही घट जाता है। प्रीति से प्रीति बढ़ती है और अप्रीति से प्रीति घटती है। कठोर वचन से कौन मित्र रह सकता है ? कहा है—

> तीक्ष्ण वाक्यात् मित्रमपि, तत्कालं याति शत्रुताम्।
> वक्रोक्ति शल्यमुद्धर्तुं तु, न शक्यं मानसंयत: ॥

कठोर वचन से मित्र भी तत्काल शत्रु हो जाता है; क्योंकि कठोर वचन के शल्य को मन से कोई नहीं निकाल सकता। नम्रता और मधुर-भाषण से ही संसारी लोग प्रसन्न होते हैं; सभी इनसे वश में हो जाते है; तब मित्र की तो बात ही क्या ? मित्र का गुप्त भेद प्रकाशित करना, माँगना, निष्ठुरता करना, क्रोध करना, झूठ बोलना और चित्त को चंचल रखना- ये मित्रता के दूषण हैं। इनके होने से मित्रता नहीं रहती। इन दुर्गुणों को त्यागकर, मित्र से निष्कपट प्रीति करो, हर बात मे अनुराग दिखाओ, मित्रता हरगिज़ न टूटेगी। मीठा बोलने और नम्र व्यवहार करने से वन में भी श्रीरामचन्द्रजी के लाखों-करोड़ो वानर और रीछ मित्र हो गये, तब मनुष्य का तो कहना ही क्या ?

अनीति से ऐश्वर्य्य का निश्चय ही नाश हो जाता है। जिन्होने अनीति की, उनका धन-वैभव नाश ही हुआ। दुर्योधन की अनीतियो से कौरव कुल की श्री नष्ट हो गई। वालि ने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बनाने की अनीति की। रावण ने वल के मद से अन्धे होकर देवताओ और ब्राह्मणों पर अत्याचार किये, जगज्जननी सीता को काम के वश होकर चुरा ले गया, भगवद् भक्तों को अनेक प्रकार के कष्ट दिये और गरीबो का धन हरण किया—नतीजा यह हुआ, कि वालि और रावण दोनो का धनैश्वर्य्य नाश हुआ। मुग़ल सम्राट् औरङ्गजेब ने पूज्यपाद पिता शाहजहाँ को कैद किया, भाइयों को बड़ी दुर्गति से क़त्ल कराया, हिन्दुओ का धर्म-नाश करके जबर्दस्ती मुसलमान बनाया और जज़िया वगैरः टैक्स लगा कर अनेकानेक अन्याय और अत्याचार किये। परिणाम यह हुआ कि, मुग़लिया सलतनत की नींव हिल गई। उसके बाद जो दो-चार वादशाह हुए, वे नाम मात्र के ही बादशाह हुए। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'—कहलाने वाले खान्दान की श्री समूल नष्ट हो गई। आज उस खान्दान के अनेक लोग पराधीन होकर अपना जीवन बिता रहे हैं। सुनते हैं, कोई-कोई मजदूरी तक करके पेट पाल रहे हैं। अनीति से भगवान् को चिढ़ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है:—

निडर अनय कर अनकुशल: वीन याहु रम होय।

निःशंक होकर अनीति करने वाला यदि बीस भुजा वाला रावण के समान ही क्यों न हो, उसकी कुशल नहीं।

धन को समझ-बूझ कर खर्च करना चाहिये। जो बिना समझे अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं, वे एक दिन अवश्य ही कङ्गाल हो जाते हैं। हिमालय के समान धन भी लगातार खर्च करने से एक न एक दिन चुक ही जाता है। जिस कूए मे पानी का सोता न हो, उससे अगर कोई जल निकाले ही जाय, तो एक दिन वह रीता हो जायगा। जिसके अस्सी की आमदनी और चौरासी का खर्च होता है, उसका एक न एक दिन दिवाला अवश्य ही निकल जाता है। कहा है—

> क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया।
> परिक्षीयते एवासौ धनी वैश्रवणोपमः॥
> अति दानेन दारिद्रयं, तिरस्कारोति लोभतः।
> अत्याग्रहान्नरस्यैव, मौर्ख्यं संजायते खलु॥

शीघ्र ही आमदनी को न देख कर, अपनी इच्छानुसार खर्च करने से कुबेर के समान धनवान भी दरिद्र हो जाता है।

अत्यन्त दान से दरिद्रता, अत्यन्त लोभ से तिरस्कार और अत्यन्त आग्रह से मनुष्य की निश्चय ही मूर्खता होती है।

छप्पय ।

कुत्सित मन्त्री भूप, सन्त विनसत कुसङ्ग तें ।
लाड़ लडाये पूत, गोत कन्या कुडङ्ग तें ॥
बिन विद्या तें विप्र, शील खल सङ्ग लिये तें ।
होत प्रीति को नाश, वास परदेश किये तें ॥
बनिता बिनता मदहास सों, खेती त्रिन देखे दृगन ।
सुख जात अनय अनुराग तें, अति प्रमाद तें जात धन ॥४२॥

42. A king is ruined by bad counsel, a celibate by (bad) company, a son by (too much) foundling, a Brahman by absence of study, a family by (the birth of) a bad daughter, (one's) character by the society of profligate persons, modesty by wine, agriculture by want of care, love by living abroad, friendship by arrogant behaviour, prosperity by unfair dealing and wealth dy (too much) expense and la rishness

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥४३॥

दान, भोग, और नाश—धन की यही तीन गति है। जिसने न दिया और न भोगा, उसके धन की तीसरी गति होती है।

जो अपने कमाये हुए धन को न आप भोगता है और न किसी को देता है, उसका धन नाश हो जाता है, या तो उसे चोर ले जाते है या राजा छीन लेता है। "गुलिस्ताँ" से

लिखा है—"धन द्वारा दीन-दुखियो की सहायता करने से आफत टलती है। जो दुखियो को धन नही देते, उनका धन अन्याचारी जबर्दस्ती छीन लेते हैं। मनुष्य को चाहिये, कि अच्छे दिनो मे अपने धन-माल को दुखियों के दुःख दूर करने मे लगावे; जिससे इस लोक और परलोक मे भला हो। जो न स्वयं भोगते और न दूसरों को देते हैं, उनका धन नाश हो जाता है और दूसरे लोग उन कंजूसों के धन को बड़ी बेदर्दी से खर्च करते हैं। मैंने एक बुद्धिमान से पूछा—"कौन भाग्यवान और कौन अभागा है?" उसने कहा—जिसने खाया और भोगा वह भाग्यवान है; किन्तु जिसने भोगा नहीं, लेकिन छोड़ कर मर गया, वह भाग्य हीन या अभागा है।"

कहा है—

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धन याति वह्नितस्कर पार्थिवैः॥

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते
बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मनायो न जितेन्द्रियो भवेत्।

कंजूस अपने धन को न देवता के काम में खर्च करता है। न ब्राह्मण को देता है, न भाई-बन्धुओ को देता है और न अपने काम में लाता है। कंजूस का धन या तो आग मे जल जाता है या चोर ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है।

उस धन से क्या, जो न दान किया गया न भोगा गया ? उस बल से क्या, जिससे शत्रु न दबाया गया ? शास्त्र सुनने से क्या, यदि उसका आचरण न किया गया ? उस आत्मा से क्या, जो जितेन्द्रिय न हुआ ?

वृन्द ने भी कहा है:—

खाय न खर्चे सूम धन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधु मच्छिका, हाथ मले पछताय॥

गिरिधर कविराय ने भी कहा है:—

खायो जाय जो खायरे, दियो जाय सो देह।
इन दोनों से जो बचै, सो तुम जानो खेह॥
सो तुम जानो खेह, सिके पुनि काम न आवे।
सर्व शोक को बीज, पुनः पुनि तुम्है रुलावे॥
कह गिरिधर कविराय, चरण त्रै धन के गायो।
दान भोग बिन नाश होत, जो दियो न खायो॥

सोरठा।

दान भोग अरु नाश, तीन होत गति द्रव्य को।
नाहिन द्वै को बास, तहाँ तीसरो बसत है॥४३॥

43. There are three ends to riches, i. e giving away in charity, enjoyment (of pleasures) and destruction. The wealth of a man who neither spends it on charity nor on his enjoyments has only the third course (i. e., it is destroyed)

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना
तनिम्ना शोभंते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥४४॥

सान पर खराड़ी हुई मणि, हथियारों से घायल विजयी योद्धा, मदक्षीण हाथी, शरद ऋतु की सूखे किनारों और अल्प-जलवाली नदी, कलाहीन दूज का चन्द्रमा, सुरत के मर्दन चुम्बन आदि से थकी हुई नवयुवती और अपना सारा ही धन दान करके दरिद्र हुए सज्जन पुरुष—ये सब अपनी हानि या दुर्बलता से ही शोभा पाते हैं।

हीरा प्रभृति रत्न सान पर रखकर घिसे जाते हैं, तो पहले से अधिक सुन्दर हो जाते है, उनका कुछ अंश क्षय होने से उनकी खूबसूरती और भी बढ़ जाती है। हथियारों से सजा हुआ विजयी योद्धा अच्छा जान पड़ता है, पर जिस विजयी के शरीर में शस्त्रों के घाव हो रहे हों, उसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। जाड़े के मौसम में नदी के किनारों से जल हटकर बीच में रह जाता है, वह जल यद्यपि थोड़ा होता है, पर बड़ा ही साफ होता है, उस समय जल के घटने से वह सूखे किनारों वाली और थोड़े जल वाली नदी बड़ी सुन्दर मालूम होती है। चन्द्रमा ऐसे ही मनोहर है, पर जब द्वितीया को वह घटी हुई कलाओं से क्षीणावस्था में उदय होता है, तब

उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। नवयुवती षोड़शी बाला स्त्री ऐसे ही सुन्दरी होती है, पर आलिङ्गन चुम्बन आदि से जब उसका बल कुछ क्षीण हो जाता है, तब वह और भी अधिक सुन्दरी जान पड़ती है। इसी तरह दानी पुरुष जब अपना सारा ही माल-खजाना याचको को लुटाकर दरिद्र हो जाते हैं, तब उनकी शोभा बहुत ही बढ़ जाती है। तात्पर्य यह है कि, मणि और योद्धा प्रभृति की शोभा क्षीणता से उल्टी बढ़ जाती है। विशेष करके वह दानी जो अपने दान के कारण दरिद्र हो जाता है, सबसे अधिक शोभायमान लगता है। उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय थोड़ी है। महाराज हरिचन्द्र और राजा बलि ने अपना सर्वस्व दान करके जो शोभा और अक्षय कीर्त्ति सम्पादन की है, वह प्रलय-काल तक स्थिर रहेगी।

कुण्डलिया।

छोटो हू नीको लगे, मणि खरषाण चढ़ीसु।
बीर अंग कटि शस्त्रसो, शोभा सरस बढ़ीसु॥
शोभा सरस बढ़ीसु, अंग गज मदकर छीनहि।
द्वैज कला शशि सोह, शरदि सरिता जिमि हीनहि॥
सुरत दलमली नार, लहत सुन्दरता मोटी।
अर्थिन को धन देत, घटी सो नाहिन छोटी॥४४॥

44. The following look even more beautiful in their loss—A precious stone after being polished on a grinding-stone, a victorious warrior after being wounded in a battle, an elephant

after having exhausted its *mada* (restiveness), a stream after its sandbanks have been left dry in winter, a new moon (after she has lost all her brightness), a young woman after she has been exhausted by cohabitation and a king after he has spent all his treasury in charity to medicants.

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये ।
स पश्चात्संपूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ॥४५॥

जब मनुष्य दरिद्री होता है, तब तो एक पसे जौ की भूसी की इच्छा करता है; पर वही मनुष्य जब धनवान हो जाता है, तब सारी पृथ्वी को तिनके के समान समझने लगता है । इससे स्पष्ट है, कि मनुष्य की विशेष अवस्थायें ही पदार्थ में अपनी लघुता या गुरुता के कारण भिन्नता पैदा करती हैं; कभी उन्हीं वस्तुओं को फैलाती और कभी सुकेड़ती हैं; अर्थात् धनावस्था और दरिद्रावस्था ही मनुष्य को बड़ा और छोटा बनाती है ।

सारांश यह है कि, पदार्थ का कोई मूल्य नहीं, अवस्था ही उसे बड़ा बना देती है और अवस्था ही उसे छोटा बना देती है । जो आज छोटा है, वही धनैश्वर्य्य से कल बड़ा हो जाता है और जो आज बड़ा है वही दरिद्रावस्था होने से कल छोटा हो जाता है ।

जब मनुष्य निर्धन होता है—उसकी दीनावस्था होती है, तब वह दो-चार पैसे या पेट भर रोटी को ही बहुत समझता है, सबसे नम्र व्यवहार करता है, अपने को सबसे छोटा समझता है; किन्तु जब वही मनुष्य धनवान हो जाता है, तब वह संसार अपने सामने तुच्छ समझता है, जगत् को अपने से नीचा और अपने तईं सबसे ऊँचा समझता है। मनुष्य से यह सब कौन कराता है ? चञ्चल अवस्थायें—ग़रीबी और अमीरी। ग़रीबी उसे नम्र और सन्तोषी बनाती है और अमीरी उसे अभिमानी और असन्तोषी बना देती है। सारांश यह कि, अवस्था ही मनुष्य को छोटा और बड़ा करती है; मनुष्य तो वह का वही रहता है।

छप्पय ।

होत वहै धनहीन, तबै अंजलि जौ माँगत।
धन पाये बौराय, ताहि महि तृणसम लागत ॥
दशा यही द्वै चपल, नरहि लघु दीर्घ बनावैं।
करहिं नीच को ऊँच, ऊँच को नीच जनावैं ॥
जग यह विलोकि सज्जन पुरुष, सदा रहैं समता धरे।
ते पूर्ण रहैं अम्भोधि जनु, प्रेम ईश बश मे करे ।।४५।।

45 A man overtaken by poverty wishes for a small quantity of barley, but afterwards when he has got wealth, he reckons the whole world as a straw. Therefore it is the particular conditions of a man that owing to their greatness or Small-

ness create a variety in his objects of life, now expanding and then contracting the same things.

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥४६॥

हे राजा ! यदि तुम पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो, तो प्रजा रूपी बछड़े का पालन-पोषण करो। यदि तुम प्रजा रूपी बछड़े का अच्छी तरह पोषण करोगे, तो पृथ्वी स्वर्गीय कल्पलता की तरह, आपको नाना प्रकार के फल देगी। -

जो राजा प्रजा का पालन खूब अच्छी तरह करता है, उसके सारे मनोरथ पूरे होते है। राजा के धन-वैभव की वृद्धि प्रजा से होती है। अगर राजा अत्याचारी या अन्यायी होता है—प्रजा के पालन-पोषण की फिक्र नहीं रखता, उस राजा की प्रजा निश्चय ही नाश हो जाती है। प्रजा के नष्ट होने या दरिद्र होने से राजा भी नष्ट हो जाता है। उसके भाण्डार धन-धान्य-शून्य पड़े रहते हैं और खजानो में चूहे दण्ड पेलते हैं। जो राजा अपनी समृद्धि की वृद्धि करना चाहे, वे प्रजा-पालन मे दत्तचित्त हो और प्रजा पालन को ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझे। "शुक्र नीति" मे लिखा है—

सदानुरक्त प्रकृतिः प्रजापालन-तत्परः।
विनीतात्माहि नृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते ॥

जो राजा प्रजा से अनुराग रखता है, प्रजा-पालन में तत्पर रहता है और विनीत होता है, वह राजा लक्ष्मी को खूब भोगता है।

राजा प्रजा का स्वामी नहीं—सेवक है। प्रजा ने ही अपनी भलाई के लिये उसे राजा बना रक्खा है, पर राज्य की लगाम हाथ मे आते ही राजा लोग इस बात को भूल जाते हैं। वे अपने तईं स्वामी और प्रजा को अपना सेवक समझ कर उसका सर्वस्व हरण करने और आनन्द मनाने मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते है। राजा का काम पिता की तरह प्रजा को पालना और उसकी समृद्धि बढ़ाना है। रघुवंश में महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के सम्बन्ध से जो लिखा है, उसे पढ़कर मन में अनेक तरह की तरंगे उठती है। अहा! वह समय कैसा होगा, जिस समय वैसे राजा इस पृथ्वी की शोभा बढ़ाते होंगे? लीजिये, दो श्लोक आप भी पढ़िये और अब का और तब का मिलान कीजिये:—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥
प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

महाराजा दिलीप धन जमा करने के लिये कर न लेते थे। जो धन लेते थे, वे उसे अपने काम मे न लाते थे; पर उसे प्रजा की

भलाई मे खर्च कर देते थे। इस काम मे वे अपने पूर्वपुरुष सूर्य्य का अनुकरण करते थे। सूर्य्य जिस तरह पृथ्वी से रस लेता है, पर उसे वृष्टि के रूप में हजार गुणा करके वापिस दे देता है, उसी तरह वे भी करते थे।

वे प्रजा के पिताओ का काम करते थे। जन्म से ही शिक्षा का भार अपने हाथ मे रखते थे। विपद् से रक्षा करने का कर्त्तव्य भी उन्ही का था, और वे ही पालन-पोषण करते थे। असल में वे ही प्रजा के पिता थे। पिता केवल जन्मदाता थे, इतनी ही विशेषता थी।

कहिये पाठक! ऐसे राजा आपकी नजरों मे कहाँ-कहाँ और कितने हैं? कितने राजा आजकल एक गुणा लेकर सहस्र गुणा प्रदान करते हैं? कितने राजा पिता की तरह प्रजा रूपी पुत्र का पालन-पोषण और फिक्र करते है? सच कहने मे भय नहीं; समाचार-पत्रो मे जो पढ़ते और कानों से सुनते हैं; अगर वह सच हो, तो यही कहना पड़ता है, कि हमारे भाइयो से विदेशी अङ्गरेज लाखो दर्जे भले हैं; औरो की अपेक्षा ये अपनी प्रजा का पालन अच्छा ही करते है। प्रजा से जो लेते हैं, उसे यदि सम्पूर्ण रूप से लौटा नहीं देते, तो भी बहुत कुछ हमारी ही भलाइयो में लगा देते हैं। जितनी फिक्र प्रजा की ये रखते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं रखते। जितनी जल्दी दीन दुखियों की पुकार ये सुनते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नही सुनते। देशी राज्यों की प्रजा जब अत्या-

चारियो से पीड़ित होती है, बारम्बार पुकारती है, अर्जियो-पर-अर्जियाँ देती है, पर हमारे भाइयों के कानों पर जूं नही रेंगती। इस राज्य मे आप उन वाइसराय से—जिनके मुकाबले मे सारे राजा भी कोई चीज नहीं—पुकार कीजिये, फौरन सुनाई होगी—शीघ्र ही रक्षा होगी। ये बात हमने सुन कर नही लिखी है, वरन् स्वयं देख कर लिखी हैं। इसकी सत्यता में राई के दाने बराबर भी मिथ्या नहीं; यह झूठी खुशामद नही, सच्ची तारीफ है। हमने तो इतनी उम्र मे जो कुछ देखा, सुना, समझा और विचार किया है, उसका निचोड़ यही है कि, लाख-लाख दोष और त्रुटियाँ होने पर भी हमारे अङ्गरेज शासक हमसे बहुत अच्छे है; जो सुख स्वाधीनता हम इस राज्य मे भोग रहे हैं, वह हमारे अपने राज्य मे भी—जब तक हम लोगो की बुद्धि आजकल की सी ही रहे—हमे नही मिल सकती। किसी से असन्तुष्ट होकर उसके औगुणो का ही बखान करना, गुणो का नाम न लेना—सज्जनता नहीं। सुनते है, देखा नही, कोई-कोई देशी नरेश अपनी प्रजा के पालन मे अच्छा ध्यान देते हैं; पर वैसे दो-चारो से क्या हो सकता है? जब तक हम लोगो मे पहले किसी धर्मपरायणता, न्यायवुद्धि और स्वार्थत्याग प्रभृति उत्तमोत्तम गुणो का समावेश न हो जाय, अङ्गरेज महाराज हमारे सिर पर अपनी सुशीतल शान्तिप्रदायिनी छाया बनाये रखे! लोग हमें गालियाँ देंगे; पर अपना मत प्रकाशित करने का एक

कुली को भी अधिकार है। उसी अधिकार से हम यह कहने को बाध्य हैं। हमारी आत्मा हम से कहलवाती है और यह लिखने को मजबूर करती है कि, अङ्गरेजो का इस देश से अभी विदा होना हरगिज भला नहीं—हरगिज भला नहीं।

दोहा।

धेनु-धरा कौ चहत पय, प्रजा वत्स करि मान।
याकौ परिपोषण किये, कल्पवृक्ष सम जान ॥४६॥

46 O king, if thou wouldst milk this cow of thy kingdom, it behoves thee now to nourish thy subjects who are like (that cow's) calf. If thou wilt take proper care of them unceasingly, thy land will bear thee various (kinds of) fruit like the heavenly creeper.

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥४७॥

राजनीति वेश्या की नाईं अनेक रूपिणी होती है। कहीं यह सत्यवादिनी और कहीं असत्यवादिनी, कहीं कटुभाषिणी और कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसा करने वाली और कहीं दयालु, कहीं लोभी और कहीं उदार, कहीं अपव्यय करने वाली और कहीं धन सञ्चय करने वाली होती है ॥४७॥

राजा सदा एक नीति पर नहीं चलते। उनकी नीति वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कहीं राजा सत्य बोलता है, तो कहीं मिथ्या बोलता है; कहीं कठोर भाषण करता है, तो कहीं मधुर भाषण करता है; कहीं निष्ठुरता करता है तो कहीं दयालुता दिखाता है; कहीं लोभी का-सा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अन्धाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करता है।

राजाओं का काम एक नीति से चल भी नहीं सकता। कूटनीति बिना राज्य का काम चलना कठिनहै और कूटनीति में केवल सत्य, दया, उदारता,प्रभृति,सद्गुणों से ही काम नहीं चल सकता, मौके-मौके पर रङ्ग बदलना ही कूटनीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजा की रक्षा करे, किस तरह दुष्टों का दलन करे और किस तरह शत्रुओं को परास्त करे ? राजा के अति दयालु होने से भी बड़ी भारी हानि है। नीति में कहा है—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जानने वाला ये सब त्यागने योग्य हैं।" बिना उपद्रव किये कोई बड़े-से बड़े को नहीं मानता। देखिये मनुष्य सर्पों को पूजते हैं; पर सर्प को खा जाने वाले गरुड़ को नहीं पूजते;क्योंकि सर्प उपद्रवी है और गरुड़ उपद्रवी नहीं। "गुलिस्ताँ" में भी लिखा है—"तीन चीज़ें तीन चीज़ों के बिना क़ायम नहीं रहतीं—

"दौलत बिना सौदागरी के, इल्म बिना बहस के और बादशाहत बिना दहशत के।" बहुत लिखने से क्या, जो राजा वेश्या की तरह अनेक रूप बदलते हैं, वेश्यारूपिणी नीति को बर्तते हैं, उनका ही राज्य रहता और बढ़ता है। हमारे वर्तमान राजा अँगरेज़ भी इसी तरह की नीति पर चलते हैं, कहीं सत्य बोलते हैं और कहीं मिथ्या; कहीं प्रतिज्ञा पालन करते हैं और कहीं प्रतिज्ञा भंग। हमारे परम योगेश्वर भगवान् कृष्ण प्रथम श्रेणी के कूटनीतिज्ञ थे। नीति मे लिखा है—

न राम सदृशो राजा पृथिव्या नीतिमान्भूत्।
न कूटनीतिरभवत श्रीकृष्ण सदृशो नृपः॥

इसी पृथ्वी पर रामचन्द्र के समान नीतिमान् और श्रीकृष्ण के समान कूटनीतिज्ञ राजा नही हुआ। रामचन्द्रजी ने अपनी नीति के बल से बानरो को अपने वश मे कर लिया और श्रीकृष्ण ने अपनी ही बहिन सुभद्रा छल से अर्जुन को ब्याह दी।

छप्पय।

साँची है सब भाँति, सदा सब बातनि झूठी।
कबहुँ रोससों भरी, कबहुँ प्रिय बनै अनूठी॥
हिंसा को डर नाहिं, दयाहू प्रकट दिखावत।
धन लेवे की बान, खर्चहू धन को भावत॥
राखत जु भीर बहु नरनकी, सदा सँवारत रहत गृह।
इह भाँति रूप नाना रचति, गनिकासम नृपनीति यह॥४७॥

47. The policy of a king like that of a prostitute is manifold. It is truthful as well as false, heartless as well as sweet-tongued destructive as well as merciful, avaricious as well as charitable and ever prodigal as well as ever economical.

विद्या कीर्त्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

जिन पुरुषों मे विद्या, कीर्त्ति, ब्राह्मणों का पालन दान, भोग और मित्रों की रक्षा—ये छै गुण नहीं हुए, उनकी राज-सेवा वृथा है ॥ ४८ ॥

तात्पर्य यह है, जिनका हुक्म चलता हो, जिनकी नेक-नामी हो, जिनके द्वारा ब्राह्मणों का पालन होता हो, जो सत्पात्रों को धन दान करते हो, स्वयं सुख भोगते हो और अपने बन्धु-बान्धवों की रक्षा करते हो—उनका ही राजा की सेवा करना सफल है—जिनमें ये गुण न हो, उनकी राज-सेवा निरर्थक है ।

दोहा ।

विद्या यश द्विज पालना, दान भोग सन्मान ।
नृप-सेवा इन छः बिना, निष्फल जान सुजान ॥४८॥

48. What is the use of those that have influence at a king's court if they do not possess these six qualities—knowledge, fame, procuring livelihood for Brahmans, charity, enjoyment of pleasures and protection of friends.

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥४९॥

थोड़ा या बहुत—जितना धन विधाता ने तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है, उतना तुम्हें निश्चय ही मरुस्थल में भी मिल जायगा; उससे ज़ियादा तुमको सुमेरु पर भी नहीं मिल सकता; इसलिये सन्तोष करो, धनियों के सामने वृथा दीनता से याचना न करो; क्योंकि, देखो, घड़ा समुद्र और कूएँ से समान जल ही ग्रहण करता है ॥ ४९ ॥

इसका खुलासा यह है जितना धन भाग्य में लिखा है उतना हर कहीं मिल जाता है। भाग्य में लिखे से अधिक धन सोने के सुमेरु पर्वत पर भी नहीं मिलता। घड़े को चाहे समुद्र में डालिये, चाहे कूएँ में डालिये, दोनों जगहों से वह समान जल ही ग्रहण करता है; अर्थात् जितना जल उसमें समा सकता है, उतना ही उसमें आता है—कूएँ में से कम नहीं आता और समुद्र में से अधिक नहीं आ जाता।

जितना धन विधाता ने भाग्य में लिख दिया है उतना सर्वत्र मिल जायगा, उससे अधिक नहीं। देखो, घडा कुए और समुद्र से समान जल ही ग्रहण करता है।

मनुष्य को इस बात को समझ कर सदा सन्तोष करना चाहिये। धनियो की खुशामद और दीनता करके अपना मान न गँवाना चाहिये। भाग्य मे जो नही है, उसे लाख-लाख खुशामद और दीनता करने से भी कोई न देगा। शास्त्र मे लिखा है—

> आयुः कर्म च वित्तं च विद्या दिधनमेव च।
> पञ्चेतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों प्राणी के भाग्य मे उसी समय लिख दिये जाते हैं, जबकि वह गर्भाशय के भीतर ही होता है। जितना विधाता लिख देता है, उतना अवश्य मिलता है और जो नहीं लिखता वह कैसे मिल सकता है? इसलिये भटकना और दीनता करके मान खोना वृथा है।

"पञ्चतन्त्र" मे लिखा है—

> न हि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्य विनापि यत्नेन्।
> करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ॥

जो होनहार नहीं है वह नहीं होता और जो होनहार है वह बिना उपाय किये ही हो जाता है। जो हमारे भाग्य में नहीं है, वह हाथ मे आकर भी नष्ट हो जाता है।

मनुष्य ने जितना पूर्वजन्म में बोया है, उतना वह अवश्य ही काटेगा। सारा संसार प्रारब्ध और पुरुषार्थ मे ही

विद्यमान है। पूर्वजन्म के कर्म को प्रारब्ध और इस जन्म के कर्म को पुरुषार्थ कहते हैं। एक ही कर्म के दो नाम हैं। फलों की प्राप्ति का हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता। फलों की प्राप्ति पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही होती है। देखते हैं कोई-कोई बिना जरा-सा भी उद्योग और परिश्रम किये अतुल सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है और कोई दिन-रात घोर परिश्रम करने पर भी पेट-भर अन्न नहीं पाता। किये हुए कर्म का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। जिस तरह बछड़ा अपनी माँ को हज़ारो गायो मे से पहचान लेता है; उसी तरह पूर्वजन्म का कर्म अपने कर्त्ता को चट पहचान लेता है। किया हुआ कर्म सोते के साथ सोता है, चलते के साथ चलता है; बहुत क्या पूर्व कृत कर्म आत्मा के साथ रहता है। छाया और धूप का आपस मे जो सम्बन्ध है, कर्त्ता और कर्म का भी वही सम्बन्ध है।

सारांश यही है, कि जितना दिया है, उतना इस जन्म मे अवश्य मिलेगा; उससे अधिक कही और कभी भी न मिलेगा। "गुलिस्ताँ" में लिखा है—"संसार मे दो बातें असम्भव हैं—(१) भाग्य में जितना लिखा है उससे अधिक खाना, और (२) नियत समय से पहले मरना।" जितना भाग्य मे लिखा है, उतना हर जगह बिना उद्योग और परिश्रम के भी मिल जायगा और जो भाग्य में नहीं लिखा है, वह कुबेर की खुशामद और चाकरी से भी न मिलेगा। जब तक मृत्यु का

समय नहीं आया है, मनुष्य सिंह के मुँह में जाकर भी बच जायगा और मृत्यु-समय आ जाने पर, वह कहीं भी और किसी भी उपाय से न बचेगा।

मित्रों! इन बातों को समझो और इन पर विश्वास करके बेफिक्र रहो। वृथा मारे-मारे न फिरो। अपनी प्रतिष्ठा और मान को न खोओ। कहा है—

असेवितेश्वरद्वारमदृष्ट विरहव्यथम्।
अनुक्तक्लीव वचनं, धन्य कस्यापि जीवनम्॥

जिसने धनवान का द्वार न सेया, विरह की पीर न सही और नामर्दी की बात न कही—उसका जीवन धन्य है। ऐसा कौन है?

दोहा।

भाल लिखौ जू विरंचि वह, घटै बढ़ै कछु नाहिं।
सुरधर कंचन मेरु-सम, जान लेहु मनमाहिं॥४६॥

49. Whatever wealth, great or small, the god Brahma has ordained to be the lot of a man, is got by him without fail even in a desert On the golden (Meru) mountain he cannot get any more. Then be contented and do not show a suppliant attitude towards rich people uselessly. See, a pitcher takes in an equal quantity of water in a well as well as in the ocean.

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते॥५०॥

हे श्रेष्ठ मेघ ! तुम्हीं हम पपहियों के एक मात्र आधार हो, इस बात को कौन नहीं जानता ? हमारे दीन वचनों की प्रतीक्षा क्यों करते हो ?

चातक कहता है—"हे मेघ ! संसार मे नद नदी और सरोवर आदि अनेक जलाशय है; हम प्यासे ही क्यो न मर जायँ, पर तुम्हारे सिवा हम किसी का जल नहीं पीते। तुम्हारे जल के सिवा गङ्गा, जमुना, सरस्वती और सिन्धु प्रभृति हमारे लिये धूल हैं। हम लोगों को तुम्हारा ही आश्रय है। इस दशा मे तुम्हें उचित नहीं है, कि तुम हम से बार-बार दीनता कराओ।"

सज्जनों को अपने आश्रितो की दीनता की प्रतीक्षा न करनी चाहिये। उनकी अनुनय-विनय और दीन वाणी के बिना ही उनकी आशा पूरी करनी चाहिये। जो अपने आश्रित को बिना दीनता कराये दे, उसके समान कौन दाता है ?

दोहा।

मेघ तुम्हे जाने जगत, पपिहा-प्राण-अधार।
दीन वचन चाहत सुन्यौ, यह नहिं उचित विचारि ॥५०॥

50. Who does not know, O cloud, that thou art the only refuge of Chataka birds (a kind of skylark)? Then why, Oh, dost, thou wait for our entreaties ? (The above is spoken by a Chataka bird which, it is said, tastes no water except that from falling drops of rain.)

रे रे चातक सावधान मनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशाः ॥
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा
यंयं पश्यसि तस्यतस्य पुरतोमा ब्रूहि दीनं वचः ॥५१॥

रे रे चातक! सावधान होकर जरा हमारी बात सुन' आकाश में बहुत से मेघ हैं, पर सब एक से नहीं। कितने ही तो ऐसे हैं, जो पृथ्वी पर जल ही जल कर देते हैं और कितने ही ऐसे हैं, जो वृथा ही गरज कर चले जाते हैं; इसलिये हे मित्र! तुम जिसको देखो उसी के सामने दीनता मत करो।

मनुष्य को चाहिये कि जिस-तिसके सामने दीनता न करे। इस जगत् मे सभी उदार दाता नहीं। कितने ही बाते तो लम्बी-चौड़ी बनाते हैं, पर देते एक पैसा नहीं। ऐसे सज्जन बहुत थोड़े हैं, जो बिना कहे ही अपने आश्रितो के मनोरथ पूरे कर दें। नीच-स्वभाव वालो के सामने अपनी दुःख कहानी कहने और उनसे कुछ माँगने से दुःख के सिवा और कुछ नहीं मिलता। "गुलिस्ताँ" मे कहा है—"दुष्टो के आगे अपने अभावो का रोना न रोओ; क्योंकि उनके दुष्ट स्वभाव के कारण तुम्हे दुःखित होना पड़ेगा। अगर तुम अपने दिल का दुःख किसी मनुष्य के आगे कहो, तो ऐसे के सामने कहो, कि जिसके प्रसन्न मुख के देखने से तुम्हे निश्चय

हो जाय कि, वह अवश्य देगा । दुष्ट से माँगना भला नहीं; वह देता कुछ नहीं, उल्टा मान और ले लेता है। जो थोथे है वे गरजते हैं, पर बरसते नहीं। जो पूरे हैं, वे चुपचाप बिना माँगे ही इच्छा पूरी कर देते है। सूरज बिना कहे ही रोशनी करता है; उससे कहने कौन जाता है ? दुष्ट कहने से भी किसी का भला नहीं करते।

कुण्डलिया ।

चातक ! सुन मेरे वचन, सावधान मन होय ।
मेघ बहुत आकाश में, प्रकृति जुदी पन होय ॥
प्रकृतिजुदी पन होय, कोय बरसे महि भारी ।
कोई बूँद न देहिं, गरज कर उपल-प्रहारी ॥
ताहीं सों मैं कहत, लेय मत यह सिर पातक ।
देखै जो ही मेघ, ताहि मत माँगे चातक ॥५१॥

51. O Chataka ! listen for a moment with an attentive mind (to what I say). There are numerous clouds in the sky and all of them are not of the same kind. Some of them wet the earth with rain, while others only thunder in vain. Hence do not utter thy humble request before whichsoever thou lookest upon

दुर्जनों की निन्दा ।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा ॥
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

किसी पर दया न करना, बिना वजह लड़ाई-झगड़ा करना, परधन और पर-स्त्री पर मन चलाना सज्जनों और अपने रिश्तेदारों की उन्नति पर कुढ़ना—ये छहों अवगुण दुष्टों में स्वभाव से ही होते हैं।

दुर्जनों में ठीक ये छहों अवगुण होते हैं। कौरव-कुल कलङ्क दुर्योधन में ये सभी औगुण थे। दया का उसमें नाम ही नहीं था। हृदय में दया होती, तो पाण्डवों को वह इतने कष्ट क्यों देता? उन्हें लाक्षागृह में सोते हुए क्यों जलवाता? द्रौपदी को भरी सभा में नंगी करने की चेष्टा क्यों करता? असल में; दुर्जन पराई वृद्धि को नहीं देख सकते। दुर्योधन राजसूय यज्ञ में पाण्डवों की अतुल सम्पत्ति देख कर ही जल गया था और इसलिये उसने अकारण ही रार मोल ली। कपट-छूत से उनकी सम्पत्ति और स्त्री तक को छीन लेने का उसने उद्योग किया। सम्पत्ति तो ले ही ली, केवल द्रौपदी अपने बुद्धिबल से स्वाधीन हो गई।

रोज़ ही आँखो से देखा करते हैं, दुष्ट लोग गरीब और कमजोरो को सताते हैं, परस्त्रियों को छेड़ते हैं और मौक़ा पाने से उन अबलाओ का जीवन सदा के लिये खराब कर देते है, रात-दिन पराई सम्पत्ति हड़पने की चेष्टा मे लगे रहते हैं, जिसे जरा भी खुशहाल और खाता-पीता देखते है उसके पीछे पड़ जाते हैं; उसकी बदनामी करने और उसका सर्वस्व स्वाहा करने में कोई बात उठा नही रखते। दुर्जनो के सिर पर कलगी नहीं होती; जिनमे ये छहो दुर्गुण हों, उन्हे ही दुर्जन समझना चाहिये। ऐसे दुर्जन इस जगत् मे बहुत हैं। "पराई सम्पत्ति या वैभव को देख कर जलना" इन दुष्टो की मुख्य पहचान है। ये सब बाते इनमे स्वभाव से ही होती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है:—

पर-सुख-सम्पति देखि-सुनि, जरहिं मूढ बिन आग।
तुलसी तिनके भाग ते, चलै भलाई भाग॥
सुजन-गुनन सों खल जर्यौ, पुनि-पुनि वैर कराय।
पूर्ण चन्द्र-गुण सों जर्यो, ग्रसै राहु जिमि आय॥

दोहा।

दयाहीन बिन काज रिपु, तस्करता पर पुष्ट।
सहि न सकत सुख बन्धु को, यह स्वभाव सों दुष्ट॥५२॥

52 Want of pity, quarrelling without any cause, cherishing desire for other people's money

and womenfolk, intolerance towards the virtuous and towards their own relatives are the natural characteristics of evil men.

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन् ।
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥५३॥

दुर्जन विद्वान् हो तो भी उसे त्याग देना ही उचित है, क्योंकि मणि से भूषित सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता ?

(जिस तरह मणि के धारण करने से सर्प की भयङ्करता नष्ट नहीं हो जाती; उसी तरह विद्या अध्ययन कर लेने से दुर्जनो की स्वाभाविक दुष्टता चली नही जाती ।)

"पञ्चतन्त्र" मे लिखा है—

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥

धर्मशास्त्र के पढ़ने या वेदाध्ययन करने से दुष्टात्मा साधु-स्वभाव नही हो जाता; जिसका जो स्वभाव है, वही प्रबल है, गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है ।

वृन्द कवि ने कहा है—

खल विद्या-भूषित तऊ, नहि भरोस को मूल ।
ज्यों मणि-भूपित भुजग जग नीच मीच सम तूल ॥

नहिं इलाज देख्यौ-सुन्यौ, जासों मिटत स्वभाव।
मधुपुट कांटिक देत तउ, विष न तजत विष-भाव॥

किसी का भी जन्म-स्वभाव नहीं बदलता। विद्या उत्तम चीज है, पर स्वभाव बदलने की शक्ति उसमें भी नहीं। विद्या से मनुष्य मे बुद्धिमत्ता आती है, पर मूर्ख की मूर्खता और भी बढ़ती है। जिन्होने यूरोपियन डाकू, चोर और बदमाशो के सम्बन्ध की पुस्तके पढ़ी होगी अथवा जिन्होने बायस्कोप के तमाशे देखे होंगे, उन्हे मालूम होगा, कि चोर और बदमाश इस देश मे भी भयङ्कर होते है, पर यूरोप के पढ़े-लिखे बदमाशो की लीलाये देख कर तो दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। विद्या से दुष्टो को एक प्रकार का बल और मिल जाता है। विद्याबल से उनकी दुष्टतायें और भी भीषण रूप धारण कर लेती हैं। स्वाति की बूँद सीप में पड़ कर मोती का रूप धारण करती है और सर्प के मुख मे पड़ कर भयङ्कर विष हो जाती है। मेह सर्वत्र यकसाँ ही बरसता है, पर बागों में गुललाला होते हैं और ऊसर जमीन मे घास होती है। जो अयोग्य और नालायक होता है, जिसकी असलियत ही खराब होती है, उसे कैसी भी उत्तम शिक्षा दी जाय और वह कैसी भी अच्छी संगत में रक्खा जाय, वह हरगिज उत्तम न होगा; जैसा का तैसा रहेगा। निकम्मे लोहे पर चाहे जितनी पालिश की जाय, वह हरगिज चिकना और चमकदार न होगा। पानी को कितना ही

गरम कीजिये, थोड़ी देर बाद ही वह शीतल हो जायगा; यानी अपने असली स्वभाव पर आ जायगा। लहसुन और हींग कस्तूरी के हजारों पुट दिये जाने पर भी अपने स्वभाव को नहीं त्यागते; उनकी असली गन्ध बनी ही रहती है। जीभ पर कितनी ही चिकनाई लगेसी जाय, पर वह चिकनी न होगी। नीम में कितना ही गुड़ घी सींचा जाय, पर वह मीठा न होगा, जैसा उसका स्वभाव है, वैसा ही रहेगा। विष में चाहे जितना मधु मिलाइये, पर वह अपना विष भाव न तजेगा। बहुत कहने से क्या, असली स्वभाव किसी भी उपाय से मिट नहीं सकता।

जो लोग समझते है, कि दुर्जन विद्या के प्रभाव से सज्जन हो जाते हैं,—उनकी स्वाभाविक दुष्टता नष्ट हो जाती है, उन्हीं के लिये योगिराज भर्तृहरि ने मणिधारी सर्प का दृष्टान्त देकर समझाया है, कि आप ऐसा भूल कर भी न समझें! अगर ऐसा समझ कर दुर्जनों का सङ्ग करेंगे, उनके साथ रहेंगे, उनसे बात-चीत करेंगे, तो आपको भयानक विपद् में फँसना होगा। रावण कम विद्वान् नहीं था, पर विद्वान होने से क्या उसकी दुष्टता चली गई थी?

इन बातों को हृदयङ्गम करके, अपना भला चाहने वालों को अपढ़—निरक्षर दुष्टों से तो बचना ही चाहिये, पर पढ़े-लिखे या विद्वान् दुर्जनों से और भी अधिक दूर रहना चाहिये। निरक्षर दुर्जनों से साक्षर या विद्वान् दुर्जन अधिक भयङ्कर होते हैं।

इस बात को तो सभी जानते है, कि विद्वान् होते ही उनमे सो दुर्गुणो का एक दुर्गुण अभिमान आ जाता है। जिसमें अभिमान आ जाता है, उस मे कौनसा दुर्गुण नही आ जाता ? "करेला और नीम चढ़ा" वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है।

हमारा विद्वान् दुर्जनों से बहुत काम पड़ा है। हमने योगिराज के इस उपदेश को लड़कपन मे पढ़ कर भी अनक बार धोखे खाये है। हमारे दिल में भी सदा यही खयाल जमा रहता था, कि जो विद्वान् होते है, वे दुष्टात्मा नहीं होते, पर अब संसार मे ठोकरे खाकर, हम इस नतीजे पर पहुँचे है, कि विद्वान-दुर्जनो के समान और दुरात्मा नही होते। ये अकारण ही लोगो से तकरार और झगड़े करने है और परले सिरे के स्वार्थी और कृतघ्न होते है। एक बार एक भले आदमी वृथा ही झगड़ा करने लगे अगर वह झगड़ा चलता, अगर दोनो पक्ष अदालत मे जाते, तो हजारों रुपये स्वाहा हो जाते। हमने उन्हे लिखा-"भाई ! इन बातों मे कोई लाभ नहीं; धर्मतः मेरे दिल मे आप से जरा भी वैर-भाव नही। आप ऐसा न कीजिये। इससे आपको और मुझको दोनो को तकलीफ होगी और नतीजा कुछ निकलेगा नहीं। अधिक क्या लिखूँ. आप गणेश है, गणेश को बुद्धि कौन दे ?" बस. इस आखरी फिकरे ने तो अग्नि में घी का काम ही किया। पाठक ! विचारें, हमने क्या बुरी बात लिख दी ?

और भी लीजिये—एक बार हम एक भले आदमी से मिलने गये। आफिस मे वे तो हमे न मिले, पर एक दूसरे नामी ग्रामी पढ़े-लिखे भले आदमी वहाँ कुरसी पर विराजमान थे। चन्द मिनट तो हम खड़े रहे, उन्होने हमारी ओर देखा भी नहीं। खैर, बेहयाई से हम और हमारे मित्र वहाँ पड़ी हुई दो चौकियो पर बैठ गये। कुछ देर बाद आपकी नजर हम पर पड़ी। आपने हमारा नाम-धाम पूछा। इसके बाद आपने और सब छोड़ यह पूछा—" मुझे आपके यहाँ का अमुक माल बेचने के लिये चाहिये। पेमेण्ट किस तरह करना होगा ?" हमारे यहाँ उधार का नियम नहीं है। इसलिये हमने मीठा-सा उत्तर दे दिया, कि इस बात का जवाब हम सोच कर देंगे। एक रोज वह मित्र जिनसे हम मिलने गये थे, हमारे डेरे पर ही तशरीफ ले आये। बातो-ही-बातो मे जिक्र आ गया, कि कल हम आपके आफिस में गये थे। एक सज्जन जी वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने हमसे ये सवाल किये। दु:ख है, कि हम उधार माल किसी को भी नही देते; फिर भी अगर आप कहे तो सौ दो सौ का दे दें। आपको हम जानते हैं, उनको नहीं जानते हैं, उस समय वहाँ एक और विद्वान कहाने वाले महाशय तशरीफ रखते थे। उन्होने उनसे जाकर कह दिया कि, अमुक आदमी आप इतने बड़े कारोबारी का एतबार नहीं करता और आपके मातहत का एतबार करता है। बस अब क्या

था ? वह भले आदमी तत्ते तेल के वैगन हो गये। कहने लगे—"हमारा विश्वास नहीं; हमारे नौकर का विश्वास ! आपने हमारे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया है। याद रक्खो, आपने यह अच्छा काम नहीं किया। हम आपको इसके लिये बुरे फल चखायेंगे।" गौर कीजिये पाठक ! हमने क्या अपराध किया ? अपना माल उधार दिया और न दिया, किसी की जबर्दस्ती है ? अधिक कागज काला करके आपका अमूल्य समय नष्ट करना नहीं चाहते। उन्होंने हमारे सर्वनाश के लिये कोई बात न उठा न रक्खी, पर "जाको राखे साँइयाँ मार सके नहिं कोय" वाली बात हुई। उनका नैतिक पतन हो गया। हमे मानसिक कष्ट अवश्य हुआ पर और हमारा बाल भी बाँका न हुआ। कहाँ तक लिखे, ऐसे-ऐसे विद्वान् दुर्जन हमने बहुत देखे हैं। इनके दिल मे न दया है न धर्म; दूसरो को वृथा कष्ट देना ही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह बात उस भेड़िये की तरह जो नीचे स्थान से पानी पीने वाले मेमने से विवाद कर बैठा—वृथा लड़ाई मोल लिया करते है। इन बातो के बिना इनकी रोटी ही हजम नहीं होती। अच्छा हो, ये शान्ति से अपना काम करे, दूसरों की शान्ति को भङ्ग न करें, दीन-दुःखियों को न सतावें, पराय धन पर मन न चलावे, पर ये अपने स्वभाव से लाचार है। भगवान् ने इनका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। ये आप दुःख पाते है और दूसरो को कष्ट

देते हैं। ये दूसरों के छिद्र देखने में ही अपनी उम्र बिता देते हैं। किसी की उन्नति से ये खुश नहीं होते। वे ही भाग्यवान हैं, जिनका ऐसों से पाला नहीं पड़ता। इस बात को याद रखो:—

कैसे हू छूटत नहीं, जामें परी कुबानि।
काग न कोयल ह्वै सके,जो विधि सिखवै आनि॥

सोरठा।

विद्यायुत हू होय, तदपि दुष्ट तज दीजिये।
सर्पजु मणिधर होय भयकारी तेहुँ जानिये॥५३॥

53 An evil person should be shunned even if he is adorned with knowledge. Is a serpent, although adorned with a precious gem, not fearful ?

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥५४॥

लज्जावानों को मूर्ख, व्रत उपवास करने वालों को ठग, पवित्रता से रहने वालों को धूर्त, शूरवीरों को निर्दयी, चुप रहने वालों को निर्बुद्धि मधुर भाषियों को दीन, तेजस्वियों को अहंकारी, वक्ताओं को बकवादी और शान्त पुरुषों को असमर्थ कह कर, दुष्टों ने गुणियों के कौन से गुण को कलङ्कित नहीं किया।

दुर्जनों को सज्जनों से स्वाभाविक वैर होता है। जिस तरह मूर्ख पण्डितो से, दरिद्री धनियों से, व्यभिचारिणी कुल-स्त्रियों से और विधवा सधवाओं से सदा जलती रहती हैं; उसी तरह दुर्जन सज्जनो से जला करते हैं। वे सब चाहा करते हैं — जैसे हम हैं, वैसे ही सभी हो। जब इनसे कुछ भी बन नहीं पड़ता, तब ये गुणियो के गुणो की ही निन्दा किया करते हैं।

बुरे कामो से लजाना मनुष्य मे उत्तम गुण है; इस गुण के होने से मनुष्य बुरे कामो से बचता है। व्रत-उपवास करने से मन और आत्मा शुद्ध हो जाते हैं तथा काया का मल नाश हो जाता है। शूरवीरता से निर्बलो की रक्षा होती है। मधुर भाषण से मनुष्य मात्र की आत्मा सन्तुष्ट रहती है; पर दुर्जनों की नजर मे ये सब अनुकरणीय गुण भी औगुण हैं। और कहाँ तक कहें ये लोग उस वक्ता को भी वाचालता के दोष से दूषित करते हैं, जिसके बोलने से श्रोता मूक हो जाते हैं, उनके मन स्थिर हो जाते हैं और नेत्रों से टपाटप आँसू गिरने लगते हैं, जो आप किसी की ओर नहीं देखता, पर सब की दृष्टि अपनी ओर खींच लेता है, आप सिर नहीं हिलाता, पर सबके सिर हिलवा देता है और जिसका भाषण श्रोताओ के हृदय मे अमृत का काम करता है। असल में दुर्जनों को सज्जन और गुणवान बुरे लगते हैं; इसलिये वे सदा उन्हें अपने जैसा करने के लिये कोई कोशिश उठा

नहीं रखते और उन्हें बदनाम करने के लिये अपना एड़ी से चोटी तक का जोर लगाने मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। जिनके हृदय मलिन हैं, वे इन्हीं कुकर्मों में अपने दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन को बर्बाद करते है। कहा है—

दोष लगावन गुनिन कों, जाको हृदय मलीन।
धरमी को दम्भी कहे, छमियन को बलहीन॥
दुर्जन गुनगन सुजन के, छिन महँ करत मलीन।
विमल बसन कों करत जिमि, धूम श्याम रङ्गमीन॥

दुष्ट लोग भले आदमियों को अकारण इतना तङ्ग करते हैं, कि मनुष्य को यह संसार बहुत ही बुरा मालूम होता है। ऐसों ही से दुःखित होकर महाकवि ग़ालिब ने कहा है—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो॥

संसार रहने की जगह नहीं, यहाँ ईर्ष्या-द्वेष का बाजार गर्म है। जी में आता है ऐसी जगह चल कर रहिये, जहाँ कोई न हो। हमारी बात कोई न समझे और न हम किसी की समझें। मकान भी ऐसा ही हो जिसमे न दर हो न दीवार अर्थात शुद्ध जङ्गल हो, न कोई साथी हो न पड़ोसी।

इसी तरह एक अंग्रेजी विद्वान् ने भी दुष्टों से दुःखित होकर कहा है—

The better I know men the more I admire dogs.

जितना ही मै मनुष्यों को जानता जाता हूँ, उतना ही मै कुत्तो की प्रशंसा करता हूं।

बस; यही हालत हमारी भी है। दुष्टोंसे दुःख पाकर हमारी भी तबियत ऐसी हो गई है, कि इस संसार से जंगल भला मालूम होता है। मनुष्यों के संग से पशुओं का संग भला मालूम होता है। पर मजबूरी से, दूसरो के कारण से, हम इच्छा करके भी, यहाँ से अभी सरक नहीं सकते। हम तो यही कहेंगे, जो मनुष्यो की बस्ती से दूर रहते हैं, वे ही सुखी है, उन्हें ही सुख-शान्ति मिलती होगी; हमें तो किसी तरह का अभाव न होने पर भी, यहाँ सुख नहीं दीखता।

जो लोग इनमे ही रहना चाहें अथवा इच्छा न होने पर भी रहे बिना न सरें, उनको इन दुष्टो की बातो पर कान न देना चाहिये। मन में समझना चाहिये, हम तो कौन चीज हैं, ये बड़े-बड़ो की निन्दा करते हैं। इनकी निन्दा से हमारा क्या बिगड़ जायगा? तुलसीदासजी ने कहा है—

> द्वारे टाट न दे सकहिं, तुलसी जे नर नीच।
> निदरहिं बल हरिचन्द कहँ, कहु का करण दधीच॥
> भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद।
> तुलसी गाँवर जानि जिय करब न हर्ष विषाद॥

तुलसी देवल राम के, लागे लाख करोर ।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भयउ न थोर ॥

नीच लोग दरवाजे पर तो टाट भी नहीं लगा सकते, पर बलि और हरिश्चन्द्र जैसे महादानियों की भी निन्दा करते हैं, कर्ण और दधीच तो इनकी नजरों में कोई चीज ही नहीं।

बिना जाने प्रशंसा करे अथवा निन्दा; गँवार समझ कर इनकी बात पर न हर्ष ही करना चाहिये और न शोक ही करना चाहिये।

रामचन्द्रजी के लाखों-करोड़ों की लागत से बने मन्दिर पर अगर अभागा काग हग भरता है, तो क्या मन्दिर की महिमा कम हो जाती है ?

बस, दुष्टों में रहकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताने का इससे उत्तम और इलाज नहीं। यों तो दुष्टों का पड़ोस और गाँव छोड़ कर—उनसे हजार कोस दूर रहने में भी सुख शान्ति नहीं— हाँ, गोस्वामीजी के उपदेश से मन को कुछ शान्ति अवश्य मिलती है।

छप्पय ।

लज्जायुत जो होय, ताहि मूरख ठहरावत ।
धर्मवृत्ति मन माँहि, ताहि दम्भी कहि गावत ॥
अति पवित्र जो होय ताहि कपटी कहि बोलत ।
धरै शूरता अंग, ताहि पापी कहि तोलत ॥

विक्रमी मत्त प्रिय वचन रत, तेजवान लम्पट कहत ।
पण्डित लबार कहै, दुष्ट जन, गुण को तज औगुण गहत ।।५४।।

51 What good qualities of the meritorious are not misrepresented by evil men ? The modest are called by them fools, those true to other vows are named hypocrites, the pure in heart are nicknamed cheats, the brave are misrepresented as tyrants, the philosphers are spoken of as whimsical, the sweettoungad are depicted as servile, the self respecting are called self-conceited, good speakers are said to be talkative and the patients are proclaimed as inactive

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

यदि लोभ है तो और औगुणों की जरूरत ? यदि परनिन्दा या चुगलखोरी हैं, तो और पापों की क्या आवश्यकता ? यदि सत्य है, तो तपस्या से क्या प्रयोजन ? यदि मन शुद्ध है, तो तीर्थों से क्या लाभ ? यदि सज्जनता है तो और गुणों की क्या जरूरत ? यदि कीर्ति है, तो आभूषणों की क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम विद्या है, तो धन का क्या प्रयोजन ? यदि अपयश है, तो मृत्यु से और क्या होगा ? ॥५५॥

लोभ से ही काम, क्रोध और मोह की उत्पत्ति होती है और मोह से मनुष्य का नाश होता है। लोभ ही पापों का कारण है । लोभ से बुद्धि चंचल हो जाती है । लोभ से तृष्णा होती है । तृष्णार्त्त को दोनो लोकों में सुख नहीं । धन के लोभी को, असन्तोषी को, चञ्चल मन वाले को और अजितेन्द्रिय को सर्वत्र आफत है । लोभ सचमुच ही सब औगुणो की खान है। लोभ होते ही और सब औगुण आप-से-आप चले आते हैं। दुष्टों के मन में पहले लोभ ही होता है; इसके बाद वे परनिन्दा, परपीड़न और हत्या प्रभृति कुकर्म करते हैं । रावण को पहले सीता पर लोभ ही हुआ था । दुर्योधन को पहले पाण्डवों की सम्पत्ति पर लोभ ही हुआ था । इसलिये मनुष्य को लोभ-शत्रु से बिलकुल ही दूर रहना चाहिये । जिस में लोभ नहीं, वह सच्चा विद्वान् और पण्डित है। निर्लोभ को जगत् में आपदा कहाँ? अगर विद्वान् के मन में लोभ है, तो वह विद्वान नहीं मूर्ख ही है। कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान ।
का पण्डित का मूरखे, दोनों एक समान ॥ तुलसी ॥

परनिन्दक से बढ़ कर पापी कोई नहीं। जिनका हृदय काला होता है, जिनका दिल मैला होता है, वे ही पराई निन्दा किया करते हैं। पराई निन्दा यदि सच्ची हो, तो भी लाभ

नहीं और यदि झूठी हो तब तो कहना ही क्या ? अपनी जबान गन्दी करने से कोई फायदा नहीं। लेवेटर नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—'अगर तुम्हे किसी के दोप का ठीक पता न हो, तो तुम उसकी निन्दा मत करो; और अगर तुमको उसके दोप का ठीक पता हो, तो अपने दिल से पूछो, कि तुम्हे निन्दा करने से क्या लाभ ?" आपका अन्तरात्मा यही कहेगा कि, कोई लाभ नहीं। जब लाभ नहीं, तब परनिन्दा क्यो की जाय ? अच्छे आदमी परनिन्दा से लाभ होने पर भी परनिन्दा नहीं करते। परनिन्दा से जो लाभ हो, उसकी अपेक्षा उस लाभ बिना रहना भला। पर संसार मे कुछ लोग ऐसे होते है, जो दूसरो से परनिन्दा सुनकर खुश हुआ करते है और इस तरह वे निन्दको को उनके काम मे उत्साहित करते हैं। अगर लोग इतना समझे कि, जो आज दूसरे की बुराई हमारे सामने करता है, वह एक दिन हमारी भी दूसरे के सामने करेगा, तो कभी ऐसो को मुँह न लगावें। परनिन्दा करने और सुनने मे समान पाप लगता है। जो पराई निन्दा करे, उन्हे सोचना चाहिये कि, क्या उनमें कोई दोष या खामी नहीं है। अगर उनमे भी दोष या खामियाँ हो, तब उन्हें दूसरों की निन्दा करने का क्या अधिकार है ? असल बात यह है, जिनमे स्वयं दोप होते हैं, वे ही दूसरो की निन्दा किया करते है। गोथे नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—

"He that would reproach an author for obscurity should look into his own mind to see whether it is quite clear there. In the dusk the plainest writing is illegible"

जो मनुष्य अस्पष्टता के कारण किसी ग्रन्थकर्त्ता की निन्दा करे, वह अपने ही चित्त में, विचार कर देखे, कि क्या वहाँ बिल्कुल स्वच्छता है। धुँधलके में स्पष्ट-से-स्पष्ट लेख अपाठ्य होता है। जिनका दिल स्वच्छ नहीं होता, उनको ही पराया काम सदोष दीखता है। किसी ने कहा है—

"It is easy to criticise an author, but it is difficult to appreciate it"

किसी ग्रन्थकार के ग्रन्थ की कड़ी आलोचना करना आसान है, पर उसकी प्रशंसा करना या क़द्र करना कठिन है. अर्थात् किसी की निन्दा करना सहज है, पर उसकी तारीफ करना कठिन है। इस काम के लिये बड़े दिल की जरूरत है। निन्दक संकीर्ण-हृदय होते है। वे लोग पराई निन्दा करके ही प्रसिद्धि लाभ करना चाहते है; पर यह महापाप है, इससे पराई आत्मा को कष्ट होता है। पराया दिल दुखाना ही संसार में सबसे बड़ा पाप माना गया है। परनिन्दक और स्वार्थी, इस बात को जानते हुए भी, अपनी आदत से लाचार है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

तुलसी निज कीरति चहै, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुख मसि लागि है, मिटे न मरि है धोय॥

कबीरदास ने भी कहा है—

निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलैं हजार।
एक निन्दक के सीस पर, हजार पाप को भार॥

सत्य की महिमा २६ वे श्लोक मे लिख आये है। सत्य के सामने तप कुछ नहीं। सत्यवादी स्वयं बड़ा भारी तपस्वी है। जो सदा सत्य बोलता है, स्वप्न मे भी मिथ्या नहीं बोलता, उसकी बराबरी कौन कर कर सकता है?

यदि मन शुद्ध है, तो निश्चय ही तीर्थ यात्रा की कोई जरूरत नही। सारा दारमदार मन की शुद्धि पर है। कहते है—"मन चगा तो कठौती मे गगा।" जिसका मन शुद्ध नही, जिसके हृदय में पाप है, वही दुष्ट है। वह सौ बार तीर्थ स्नान करने से भी शुद्ध नही हो सकता। क्या मदिरा का पात्र जलाने से शुद्ध हो जाता है? जिनके मन में काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ प्रभृति का निवास नहीं है—उनका ही मन शुद्ध है, उनका ही मन रोग-रहित है जिनका मन विशुद्ध है, उन्हें तीर्थों से क्या लाभ? अगर मन शुद्ध रहे और एक ही रंग में रँगा रहे—तो बस फिर सारा काम ही बन जाय—स्वयं जगदीश ही न मिल जायँ। कहा है—

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रक।
जो यह मन हर सों मिले, तो हरि मिलै निःशंक॥

सज्जन पुरुष सदा पराया भला करते हैं, बुरा वे किसी का मन से भी नहीं चाहते, सभी का काम बनाते है, बिगाड़ते

किसी का भी नही। वे न किसी पर क्रोध करते है, न किसी वस्तु पर मन चलाते है, परस्त्रियो को अपनी माता के समान समझते हैं, प्राणिमात्र को अपना कुटुम्बी समझते हैं, सब के कष्ट को अपना कष्ट समझते है और किसी को भूल कर भी दुःख नही देते। झूठ बोलना और पराई निन्दा या चुगली-चपाती करना तो उनके स्वभाव मे ही नहीं। वे पराये औगुणों को छिपाते और गुणो को प्रकाश करते है। वे ऐसे मधुरभाषी होते है, कि जिससे जरा भी बात करते है, वही उनका हो जाता है। उनके इन गुणो के कारण ही सभी उनके हो जाते है, इसी से कहा है, कि अगर सज्जनता है, तो स्वजनो की क्या जरूरत ?

निस्सन्देह, विद्या स्वयं धन है। जिसके पास विद्या है, उसे क्या अभाव है? प्रथम तो वास्तविक विद्वान् धन की इच्छा ही नहीं रखते, वे जानते है, कि धन ही सारे अनर्थों की जड़ है। धन बड़े कष्ट से कमाया जाता है, बड़ी-बड़ी तकलीफो से सञ्चित होता है, विपत्ति मे सन्ताप और सम्पद् मे मोह करता है, इससे अभिमान हुए बिना नहीं रहता। धनवान को क्षण-भर भी चैन नही। जिस तरह आकाश मे मांस को खाने वाले पक्षी है, जल मे मछलियाँ और पृथ्वी पर सिंह व्याघ्र आदि हैं; उसी तरह धनी को खाने वाले सर्वत्र है। जिस तरह प्राणधारियो को सदा मृत्यु से भय रहता है, उसी तरह धनी को राजा, अग्नि, जल, चोर और भाई-

बन्धुओं से सदा भय रहता है। कुटुम्बी सदा धनवान की मरण-कामना करते रहते हैं। प्रथम तो मनुष्य-जन्म ही दुःखों से भरा हुआ है। फिर; धन होते ही तृष्णा बढ़ती है और ज्यों-ज्यों धन अधिक होता है, त्यों-त्यों तृष्णा और भी अधिक होती है। इच्छानुसार सम्पत्ति किसी के भी नहीं होती। जो धन पास होता है, उसके चले जाने का भय सदा सिर पर सवार रहता है; क्योंकि लक्ष्मी स्वभाव से ही चञ्चल है, किसी एक के यहाँ नहीं ठहरती, अपने चञ्चल स्वभाव के वश, एक को छोड़ दूसरे के यहाँ चली जाती है। उसके चले जाने पर जो सन्ताप मन में होता है, उसे भुक्तभोगी ही जानता है। पास का धन नष्ट हो जाने से मृत्यु-समय की सी वेदना होती है। बहुत क्या—धनवान को कभी सुख नहीं मिलता। बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—

Money never made a man happy yet. nor will it There is nothing in its nature to produce happiness The more man has, the more he wants."

"रुपये ने आज तक किसी को सुखी किया भी नहीं और करेगा भी नहीं। इसके स्वभाव में ऐसी कोई बात ही नहीं, जिससे वह सुख उत्पन्न करे। जितना ही मनुष्य के पास होता है, उतना ही वह और चाहता है।" लूथर महाशय कहते हैं—

"Our Lord God commonly gives riches to foolish people. to whom He gives nothing else

"हमारा स्वामी—परमेश्वर मूर्खों को धन देता है। जिन्हें वह धन देता है, उन्हें वह सिवा धन के और कुछ नहीं देता।" इन दुःखो के सिवा धन से एक और भी दुःख है। वह यह कि मरण-समय भी यह कष्ट देता है। जिस गधे पर हल्का बोझ होता है, वह आसानी से चला जाता है; उसी तरह जो ग़रीब होते हैं जिनके हाथी घोड़े महल मकान बाग़-बगीचे, वड़ा परिवार और अनेक प्रकार के हीरा पन्ना आदि रत्न नहीं होते, वे सहज में देह त्याग कर जाते है, उन्हें प्राणान्त के समय भयङ्कर वेदना नहीं होती—इन सब दुःखो के कारण से ही विद्वान् लोग धन को पसन्द नही करते। वे विद्या रूपी धन को सब धनो की अपेक्षा उत्तम धन समझते हैं; क्योंकि उसके नाश का कभी भय नही और वह सदा-सर्वदा मनुष्य का कल्याण ही करता है। अगर वे इस धन को परोपकार प्रभृति पुण्य कार्यों के लिये चाहे, तो इसका उन्हे कभी अभाव न हो—लक्ष्मी उनके क़दमों मे लोटे; पर वे उस अक्षय धन के मुक़ाबले मे, इस नाशमान् और क्षण-क्षण दुःखदायी धन को पसन्द ही क्यो करने लगे?

मनुष्य में यदि सुयश है, तो उसे आभूषणों की जरूरत नहीं। आभूषणों से तो शरीर की शोभा होती है और वह भी सदा नही; किन्तु सुयश या सुनाम से आत्मा की शोभा होती है और वह चिरकाल रहती है। सुयश स्त्री-पुरुषों की आत्माओं का सच्चा आभूषण है। मनुष्य की देह नाश

हो जाती है, पर सुकीर्ति शरीर के नाश हो जाने पर भी बनी रहती है।

अपयश मनुष्य का मरण है। जिसकी अपकीर्ति है, वह जीता हुआ ही मरा है। सज्जनों के दिलो मे बदनामी से जैसी मर्मान्तक वेदना होती है, वैसी शायद मृत्यु से भी नहीं होती। बदनामी के डर से ही भगवान् रामचन्द्र ने सच्ची सती प्राणाधिका सीता को, निर्दोष जान कर भी, वन में भेज दी और स्वयं उसकी विरहाग्नि में जल-जल कर खाक हुए। बहुत क्या? मनुष्य को कोई भी काम ऐसा न करना चाहिये, जिससे उसका अपयश हो। जिसका अपयश है, वह जिन्दा होने पर भी मुर्दा है।

छप्पय।

भयौ लोभ मन मांहि, कहा तब अवगुण चहिये?
निन्दा सबकी करत, तहाँ सब पातक लहिये॥
सत्य वचन तप जान, शुद्ध मन तीरथ जानहु।
होत सुजनता जहाँ, तहाँ गुण प्रकट प्रमानहु॥
यश जहाँ, कहा भूषण चहै, सद्विद्या जहँ धन कहा?
अपयश जु छयौ या जगत में, तिन्हें मृत्यु ही है महा॥५५॥

55. If there is avarice, there is no need of seeking for other bad qualities. If there is perversity of heart, no other sin is required. If there is truth, other penances are useless. If the heart is pure, one need not visit the holy places. If a man is

good-natured, no other strength in needful. If there is inborn merit, no other ornaments are necessary. If there is knowledge, wealth is a secondary consideration. If there is disgrace, death is no worse.

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी ।
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो ।
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

दिन का मलिन चन्द्रमा, यौवन हीन कामिनी, कमल हीन सरोवर, निरक्षर रूपवान, कंजूस स्वामी या राजा, सज्जन दरिद्री और राज-सभा में दुष्टों का होना—ये सातों हमारे दिल में काँटे की तरह चुभते हैं ॥५६॥

चन्द्रमा अपनी प्रभा से ही शोभायमान लगता है। सूर्य के प्रकाश में उसकी प्रभा नष्ट हो जाती है, इसलिये खूबसूरती-पसन्दों के दिल में वह, प्रभा हीन होने पर, काँटे की तरह खटकता है। स्त्री की शोभा यौवन से ही है। जिस स्त्री की तरुणाई और लुनाई नष्ट हो जाती है, चित्ताकर्षक सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है; वह बुरी मालूम होती है। सरोवर की शोभा कमलों से है। कमल-हीन-सरोवर, अच्छे-से-अच्छा होने पर भी, सौन्दर्य्य हीन और सूना सा लगता है। रूपवान् मनुष्य विद्या हीन होने पर, ढाक के फूलों की तरह बेकाम

होता है। यदि रूपवान् विद्वान् भी होता है, तो उसकी खूबसूरती दुबाला हो जाती है। राजा या धनी की शोभा उदारता से है। कृपण राजा या धनी नपुंसक के समान होते हैं। बिना धन त्याग किये, राज राज शब्द से कोई लाभ नहीं। निधियों की रक्षा करने वाले कुवेर को पण्डित लोग महेश्वर नहीं कहते। दाता अगर थोड़े धन वाला भी हो तो भी अच्छा; किन्तु समृद्धिवान कृपण किसी काम का नहीं; समुद्र की अपेक्षा लोग कुएँ को पसन्द करते है। धनी होने पर जो उदार नही होता, वह मन में खटकता ही है। इसी तरह सज्जनों का दरिद्री होना और राजसभा में दुष्टो का होना खटकता है।

परमात्मा ने अपने सभी कामो मे कुछ-न-कुछ दोष रख दिये हैं और वे ही दोष चतुरो के दिलों में खटकते हैं। अगर चन्द्रमा दिन में भी प्रभाहीन न होता, स्त्री का यौवन सदा रहता, सरोवर कभी कमल-शून्य न होता, रूपवान् विद्वान् होते, धनी। उदार होते, सज्जन धनवान होते और राजसभा मे दुष्टों की पहुँच न होती—तो कैसी आनन्द की बात होती? परमात्मा की लीला ही अजब है। वह सज्जनों को बहुधा निर्धन रखता है।

एमर्सन महोदय ने कहा है—

'The greatest man in history was the poorest'

इतिहास में सब से बड़ा आदमी सब से जियादा निर्धन था। लिवी महोदय कहते हैं—

"Men are seldom blessed with good fortune and good sense at the same time."

धन और सुबुद्धि एक साथ किसी ही भाग्यवान् को मिलते हैं। जो धनवान हैं, वे बुद्धिमान् नहीं और जो बुद्धिमान है, वे धनवान नहीं।

कवियों ने कहा है और ठीक ही कहा है—

भले बुरे विधिना रचे, पै सदोष सब कौन।
कामधेनु पशु, कठिन मनि, दधि खारो शशि छीन॥
कहीं कहीं विधि की अविधि, भूले परम प्रवीन।
मूरख को सम्पत दई, पण्डित सम्पतहीन॥

और भी कहा है:—

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनी भूपति दीर्घजीवी
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत॥

सोने में सुगन्ध, ऊख में फल, चन्दन में फल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया, इससे स्पष्ट है, कि विधाता को कोई अक्ल देने वाला न था।

कुण्डलिया ।

फीको है शशि दिवस में, कामिन यौवन हीन ।
सुन्दर मुख अच्छर बिना, सरवर पंकज हीन ॥
सरवर पंकज हीन,होत प्रभु लोभी को धन कौ ।
सज्जन कपटी होत,नृपति ढिंग बास खलन कौ ॥
सातौं हैं शल्य परम, छेदत या जीको ।
ब्रजनिधि इनको देख, होत मेरो मन फीको ॥५६॥

56. These seven prick my heart like a thorn. The moon seen in the day-time destitute of her brightness, a beautiful woman past her youth, a lake without lotus-flowers a handsome person possessing no literary talents, a miserly king, a good man stricken with poverty and a tale-bearing person having influence in a king's court.

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

प्रचण्ड क्रोधी राजाओं का कोई प्यारा नहीं । जिस तरह हवन करने वाले को भी अग्नि छूते ही जला देती है, उसी तरह राजा भी किसी के नहीं ।

क्रोधी राजा का भूल कर भी विश्वास न करना चाहिये । उसके नाते-रिश्तेदार और मित्रो को भी उससे डरना चाहिये । आग जिस तरह हवन करने वाले का भी मुलाहिजा नहीं

करती. उसी तरह राजा अपने बन्धु-बान्धवों का भी लिहाज नहीं रखते। राजा और अग्नि से कुछ दूर रहना और डरते रहना ही भला है। जो इनसे बिलकुल दूर रहते हैं, उन्हें इनसे फल नहीं मिलता और जो इनके बहुत निकट जाते हैं—इनसे निर्भय रहते हैं—इनकी प्रीति का विश्वास करते हैं, वे मारे जाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है—

राजा जोगी अगिन जल, इनकी उल्टी रीति।
डरते रहिये परसराम, ये थोड़ी पालें प्रीति॥

"पंचतंत्र" में लिखा है—

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा॥

कव्वे में पवित्रता, जुआरी में सत्य, सर्प में सहनशीलता, स्त्री में कामशान्ति, नामर्द में धीरज, शराबी में तत्वचिन्ता और राजा में मैत्री किसने देखी या सुनी है?

दुर्जनगम्या नार्यः प्रायेणास्नेहवान्भवति राजा।
कृपणानुसारि च धनं, मेघो गिरिदुर्गवर्षी च॥

नारी अपने शत्रुओं से भी मिल सकती है, राजा में स्नेह नहीं होता, कृपण के पास रहता है और मेह पर्वतों की चोटियों पर बरसता है।

"गुलिस्ताँ" में भी लिखा है—राजाओं की मैत्री और लड़कों की मीठी-मीठी बातों पर भरोसा न करना चाहिये; क्योंकि राजाओं की मैत्री ज़रा से शक पर टूट जाती है और लड़कों की प्यारी-प्यारी बातें रात-भर में बदल जाती हैं।

दोहा।

जे अति पापी भूप ते, काहूसौं न कृपाल।
होम करत हूँ द्विजन कौ, दहत अग्नि की ज्वाल ॥५७॥

57. As for kings who are subject to strong passions, nobody is their own. Fire never fails to burn a man if it is touched by him, while offering his oblations to it.

मानौन्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुको जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ॥
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

नौकर यदि चुप रहता है, तो मालिक उसे गूँगा कहता है, यदि बोलता है, तो उसे बकवादी कहता है; यदि पास रहता है, तो ढीठ कहता है; यदि दूर रहता है, तो उसे मूर्ख कहता है; यदि खोटी-खरी सह लेता है, तो उसे डरपोक कहता है। और यदि नहीं सहता है, तो उसे नीच कुल का कहता है। मतलब यह कि, सेवा धर्म—पराई चाकरी बड़ी ही कठिन है; योगियों के लिये भी अगम्य है ॥५८॥

संसार में जितने कठिन काम हैं, उनमें पराई चाकरी सबसे कठिन है। योगिजन सब तरह के कष्ट सहने के अभ्यासी होते हैं, उन्हें कोई कष्ट—कष्ट और कोई दुःख—दुःख नहीं मालूम होता; पर, पर-सेवा उनके लिये भी महा कठिन है। नौकर को किसी तरह भी चैन नहीं। प्रसिद्ध विद्वान् और महाकवि होमर ने जो कहा है, वह बहुत ही ठीक कहा है कि मनुष्य के आधे गुण तो उसी समय विदा हो जाते है, जब वह दूसरे का दासत्व स्वीकार करता है।

पहले तो मनुष्य का जन्म ही दुःख भोगने के लिये होता है। फिर, यह दरिद्रता हो और पराई चाकरी से पेट भरना पड़े, तब तो दुःख की परम्परा ही है। सेवा करने वाले बड़े ही मूर्ख होते हैं, जो अपने शरीर की स्वतंत्रता को भी खो देते हैं—अपनी आजादी से भी हाथ धो बैठते हैं। सेवक भूख लगने पर खा नहीं सकता, नींद आने पर सो नहीं सकता, नींद खुलने पर जाग नहीं सकता और निःशंक हो कर कुछ कह नहीं सकता। क्या ऐसे सेवक को भी जिन्दा कह सकते है? लोग जो सेवावृत्ति को कुत्ते की वृत्ति कहते हैं, बड़ी गलती करते हैं। कुत्ते में और सेवक मे तो बड़ा फर्क है। सेवक से कुत्ता भला है; क्यों कि कुत्ता आजाद होता है और सेवक आजाद नहीं होता। कुत्ता अपनी मौज से फिरता है; पर नौकर तो प्रभू की आज्ञा से फिरता है। सेवक सारे ही काम यति के समान करता है। सेवक

जमीन पर सोता है और यति भी जमीन पर सोता है; सेवक ब्रह्मचर्य रखता है और यति भी ब्रह्मचर्य रखता है। सेवक थोड़ा सा भोजन करता है और यति भी थोड़ा सा भोजन करता है; पर सेवक और यति मे बड़ा भेद है; क्योंकि सेवक के सब काम पाप के लिये और यति के धर्म के लिये होते हैं। सेवा से जो गोल-गोल और बड़े-बड़े मनोहर लड्डू मिलते हैं, वे तुच्छ हैं। उनकी अपेक्षा जङ्गल का साग-पात खाकर पेट भरना और स्वतन्त्र रहना भला। झोंपड़ी मे रहना अच्छा, पर गुलामी करके महलों में रहना भला नहीं। स्वर्ग मे सेवा करने से नरक में राज्य करना भला। कहा है:—

वरं वनं वरं भैक्ष्यं, वरं भारोपजीवनम्।
वरं व्याधिर्मनुष्याणां, नाधिकारेण सम्पदः ॥

वन में रहना अच्छा, भीख माँग कर खाना अच्छा, बोझा उठा कर जीना अच्छा, रोगी रहना अच्छा, पर सेवा करके धन प्राप्त करना अच्छा नही।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, स्वर्गवासी सरस्वती-सम्पादक, श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी महोदय कहते हैं:—

चाहे कुटी अति घने वन में बनावे,
चाहे बिना निमक कुत्सित अन्न खावे।

चाहे कभी नर नये पद भी न पावे,
सेवा प्रभो पर न तू पर की करावे ॥

दोहा ।

चुप गूँगो वाचर वचन, निकट ढीठ जड दूर ।
क्षमाहीन परिहास खल, सेवा कष्टहि पूर ॥५८॥

58 If a servant is silent, he is said to be dumb, if he is clever of speech, he is dubbed as a talkative prattler, if he lives near, he is called disrespectful, if he keeps himself at a distance he is considered a skulker, if he pardons, he is a coward and if he does not, he is put down as vulgar. The duty of serving (others) is very difficult to perform. Even the Yogis can hardly understand it

उद्भासिताखिलखलस्य विशृंखलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ॥
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५९॥

जो दुष्टों का सिरताज है, जो निरंकुश या मर्यादा-रहित है, जो पूर्वजन्म के कुकर्मों के कारण परले सिरे का दुराचारी है, जो सौभाग्य से धनी हो गया है और जो उत्तमोत्तम गुणों से द्वेष रखने वाला है— ऐसे नीच के अधीन रह कर कौन सुखी हो सकता है ?

तात्पर्य्य यह है, कि नीच मनुष्य की सेवा करके मनुष्य हरगिज़ सुखी नहीं हो सकता । कहा है—

अगम्यान्यः पुमान्याति, असेव्यांश्च निषेवते।
स मृत्युमुपगृह्णाति, गर्भमश्वतरी यथा ॥

जो अगम्या स्त्री मे गमन करता है, जो सेवा न करने योग्य की सेवा करता है, वह उसी तरह मरता है, जिस तरह खच्चरी गर्भ धारण करने से मरती है।

जो ऐसे अवगुणो की खान नीचो की सेवा करते हैं, उन्हें भीष्म और द्रोण की तरह पद-पद पर लांछित और दुखी होना पड़ता है। कहा है—

नासेव्य सेवयादद्यार्द्वाधीने धनेधियम्।
भीष्मद्रोणादयो याताच्यन् दुर्योधनाश्रयात् ॥

दुर्योधन दुष्टो का सरदार और बुराइयो की खान था, वह किसी नीति-नियम को न मानता था। मन मे आता वही करता था। पूर्वजन्म के पापों से घोर दुराचारी था। दैव के अनुकूल होने से लक्ष्मी मिल गई थी; पर पाण्डवो के उत्तमोत्तम गुणों से वह अहर्निश जला करता था। उसकी सेवा करने से गोगृह मे भीष्म को अपमानित होना पड़ा और द्रोणाचार्य को भी नीचा देखना पड़ा। भरी सभा में उसका अन्यायाचरण देख कर भी, चाकरी के कारण, से भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके। न चाहने पर भी, अन्याय और अनीति को देख कर मन-ही-मन कुढ़ा किये। बहुत क्या, शेष मे उन्हे अपने प्राण भी गँवाने पड़े।

अतः मनुष्य को किसी दशा मे भी नीच की चाकरी न करनी चाहिये, क्योकि नीच की सेवा मे सुख नही।

कुण्डलिया।

संग न करिये दुष्ट को, जासों होय उपाध।
पूर्वजन्म के पाप सब, उपज उठावें व्याध॥
उपज उठावे व्याध, दैवबल होय धनी सो।
शुभगुण राखै द्वेष, कुबुध कों मित्र करै सो॥
निपट निरंकुश नीच, तासु चित रङ्ग न धरिये।
दुखमय दुर्गुण खान, तासु को सङ्ग न करिये॥५६॥

59. Who can find happiness if he is dependent on a mean-hearted person who outvies all evil men and is unrestrained by any thing. who is bent upon adding to his base nature owing to the evil actions done in a previous birth, who has acquired wealth by good luck and who is jealous of all good qualities.

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥६०॥

दुष्टों की मैत्री, दोपहर-पहिले की छाया के समान, आरम्भ मे बहुत लम्बी-चौड़ी होती है और पीछे क्रमशः घटती चली जाती है; किन्तु सज्जनों की मैत्री दोपहर-बाद की छाया के समान

पहले बहुत थोड़ी सी होती है और पीछे क्रमशः बढ़ने वाली होती है।

खुलासा यह है कि, जिस तरह दोपहर पहले की छाया आरम्भ मे बहुत होती है और पीछे क्षण-क्षण घटती जाती है; उसी तरह खलों की मैत्री पहले बहुत और पीछे कम होने वाली होती है; परन्तु सत्पुरुषो की मैत्री दोपहर पीछे की छाया के समान, पहले थोड़ी और पीछे क्रम-क्रम से बढ़ने वाली होती है।

दुर्जनों की मित्रता—पहले बहुत, पीछे कम।
सज्जनों की मित्रता—पहले कम, पीछे बहुत॥

"पंचतंत्र" में भी कहा है—

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि यथा रसः विशेषः।
तद्वत् सज्जन मैत्री विपरीतानान्तु विपरीता॥

ईख के अगले हिस्से में रस कम होता है; ज्यो-ज्यों आगे चलियेगा, रस अधिक मिलता जायगा। बस सज्जनों की मैत्री ठीक ऐसी होती है; दुर्जनो की इसके विपरीत होती है।

नीचो की मैत्री के सम्बन्ध मे और कवियो ने भी कहा है:—

ओछे नर की प्रीत की, दीनी रीत बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत-घटत घट जाय॥

विनसत बार न लागई, ओछे नर की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के, ज्यों बालू की भीति ॥

कुण्डलिया।

छाया जैसी प्रात की, तैसी दुर्जन प्रीति।
पहिले दीरघ होय पुनि, घटन लगे तज रीति ॥
घटन लगे तज रीति, प्रीति को करैं बहानौ।
पै सज्जन की प्रीति, विरुद्व याके मन मानौ ॥
पहिले सूक्ष्म रूप, फेर दिनरात सवाया
सुजन प्रीति नित बढ़, यथा सन्ध्या की छाया ॥ ६० ॥

60. The friendship of evil as well as good men is like the shade of day in the forenoon and afternoon. The former is great in the beginning but diminishes as the day passes on, whereas the latter is small at first, but goes on increasing afterwards.

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥६१॥

हिरन, मछली और सज्जन क्रमशः तिनके, जल और सन्तोष पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं; पर शिकारी, मछुए और दुष्ट लोग अकारण ही इनसे वैर-भाव रखते हैं।

हिरन; मछली और सज्जन—ये किसी की हानि नहीं करते, पर दुष्ट लोग इन्हें वृथा ही सताते हैं। इससे मालूम होता है, कि दुष्टों का स्वभाव ही ऐसा होता है। ये दूसरों को

तकलीफ देने में ही अपना कर्त्तव्य-पालन समझते हैं। कहा है:—

सहज संतोष है साध को, खल दुःख दैन प्रवीन।
मछुआ मारत जल बसत, कहा बिगारत मीन॥

दोहा।

मीन वारि मृग तृण सुजन, करि सन्तोषहि जीव।
लुब्धक धीमर दुष्टजन बिन कारण दुःख कीव॥६१॥

61. With deer, with fishes and with good men who feed themselves only with grass, water and a contented livelihood respectively, the hunters, fishermen and evil minded persons cherish an enmity in this world without any cause whatsoever.

सज्जन-प्रशंसा।

★

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता।
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्॥
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥६२॥

सज्जनों की संगति की अभिलाषा, पराये गुणों में प्रीति, बड़ों के साथ नम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री मे रति, लोक-निन्दा से भय, शिव की भक्ति, मन को वश में करने की शक्ति और

दुष्टों की संगति का त्याग—ये उत्तम गुण जिनमें है, उन्हें हम प्रणाम करते है।

जिन पुरुषों में ये उत्तम गुण हैं, वे मनुष्य-रूप मे देवता और इस भूतल की शोभा हैं।

सज्जनो की सङ्गति मे अनन्त लाभ है, और दुर्जनो की संगति मे अनन्त हानियाँ है। सज्जनो की संगति से बुरे भी भले हो जाते है और दुर्जनो की संगति से भले भी बुरे हो जाते हैं,—इन बातो का विचार करके बुद्धिमान मनुष्य सज्जनो की संगति करते है और दुर्जनो की छाया के पास भी नहीं जाते। सज्जन आप दुःखी रहने पर भी पराया भला करते हैं। अर्जुन ने स्वय, घोर विपत्ति में भी, विराट की गौवें कौरवों से छुड़ाकर, राजा का भला किया। शिवजी स्वय भिक्षाटन करते हैं, पर उनकी सहधर्मिणी जगत् को अन्न पूरती है। सज्जनो की बाते पत्थर की लकीर होती है। वे जो कुछ मुँह से निकाल देते है, उसे पूरा करते ही हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने अगणित कष्ट भोगे, पर विश्वामित्र को जो कहा था, सो दे ही दिया। रामचन्द्रजी ने, स्वयं राज्य हीन वनवासी होने पर भी, विभीषण को तो राज्य दे ही दिया। सज्जन जिसे, हँसी मे भी, अपना कह लेते है, उसे अपने ऊपर हजार-हजार कष्ट पड़ने पर भी नहीं त्यागते। चन्द्रमा क्षयी और कलङ्की है तथा विष प्राण-हरण है; पर शिवजी उन्हे नहीं त्यागते। सज्जन

जरा-जरा-सी बातों पर रीझ कर दूसरों को निहाल कर देते हैं; उमापति गाल बजाने से ही सन्तुष्ट होकर मनुष्य को अभावहीन कर देते हैं; विष्णु भगवान् केवल तुलसी-पत्रों से ही रीझ कर भक्त के सारे मनोरथ पूरे कर देते हैं। पारखजी नामक एक महा पुरुष ने अपने मन्दिर में झाड़ू देने वाले को करोड़पति बना दिया। एक दिल्लगीबाज ने किसी महफिल में एक सेठ के दुपट्टे के पल्ले से नाचने वाली वेश्या के ओढ़ने का पल्ला बाँध दिया। सेठ ने वेश्या को इच्छानुसार धन देकर उसकी वेश्या-वृत्ति छुड़ा दी। सज्जनों के गुण कदाचित् शेषजी भी न कह सकें, तब हमारे जैसे क्षुद्र मनुष्य की क्या सामर्थ्य ? बुद्धिमान् लोग इन बातों को जानते हैं, इसी से वे सज्जनों की ही संगति की अभिलाषा रखते हैं।

तुलसीदासजी ने कहा है—

तुलसी सत्पुरुष सेइये, जब तब आवहिं काम।
लंक विभीषण को दई, बड़े दुचित में राम॥

जिस तरह उत्तम पुरुष सज्जनों की संगति की अभिलाषा रखते हैं; उसी तरह वे पराये गुणों की कदर भी करते हैं, एवं माता पिता और गुरु प्रभृति बड़ों के आगे नम्र भाव से रहते हैं। इसमें वे श्रवण, रामचन्द्र और कच प्रभृति आदर्श पुरुषों का अनुकरण करते हैं; अपने समय को हँसी मजाक, ताश-गंजफे अथवा मादक पदार्थों के सेवन में नहीं बर्बाद करते। जीविका उपार्जन के कामों में जो समय बचता है, उसे

पुस्तकावलोकन में व्यतीत करते हैं; अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते है, सपने मे भी पर-स्त्री का ध्यान नहीं करते; लोक-निन्दा से बहुत डरते हैं; वे समझते हैं, कि संसार जिसकी निन्दा करता है, वह जीता भी मरा है; इसलिये वे फूँक-फूँक कर कदम रखते हैं। वे इन्द्रियों को अपने काबू में रखने की सामर्थ्य रखते हैं, क्योंकि जो इन्द्रियो को वश मे नही रख सकते, उनको पद-पद पर आपदाये है; घोड़ो को वश मे न रखने से जो गति गाड़ी और गाड़ी के बैठने वाले की होती है, वही गति मनुष्य के शरीर और आत्मा की होती है। जो इन्द्रियो को वश मे रखताहै, वही सच्चा बहादुर है दुष्टो की संगति से वे बिल्कुल ही बचते हैं; क्यों कि कुसङ्ग के समान हानिकारक और मनुष्य का अधःपतन कराने वाला और कोई काम नहीं है। जिनमे ये सब उत्तम गुण हैं, वे नररत्न निस्सन्देह वन्दनीय हैं।

कुण्डलिया।

जाने पर के गुण सदा, महत् पुरुष को संग।
विद्या, अरु निज भारजा, तिन में मन को रंग॥
तिन मे मनको रंग, भक्ति शिव की दृढ़ राखै।
गुरु आज्ञा में नम्र रहे, खल संग न भाखै॥
ब्रह्मज्ञान चित्त माहिं, दमन इन्द्रिन सुख मानें।
लोकवाद की शंक, पुरुष ते नृप-सम जानें॥६२॥

62. I salute the people in whom the follow ing pure qualities find their residence —A desire

कर्मों के फल भोगने से कोई भी बच नहीं सकता। जो किया है, उसका फल भोगना ही होगा। विपत्ति और दुर्भाग्य का रोकना असम्भव है, फिर घबराने से क्या लाभ? घबराने या धैर्य्य त्यागने से विपत्ति बढ़ती है, घटती नहीं।

उनका खयाल है, कि विपत्ति परमात्मा अपने प्यारों पर डालता है। विपत्ति रूपी कसौटी पर ही वह अपने प्यारों के धैर्य्य और धर्म्म की परीक्षा करता है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, वह अपने प्यारों को उचित पुरस्कार देता है। विपत्ति भयङ्कर सर्प है और उसके गुण सर्प की मणि से जियादा क़ीमती नहीं, तो कम भी नहीं। विपत्ति में ही मनुष्य को अपने और पराये, हितु-मित्र प्रभृति का खरा-खोटापन मालूम होता है। इस समय स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव और सेवक आदि जो साथ देते हैं, वे ही सच्चे समझे जाते हैं; सम्पदावस्था में तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। गोस्वामीजी ने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपदकाल परखिये चारी॥

इन सब की परीक्षा के सिवा, मनुष्य विपद्‌काल में देश-देशान्तरों में भ्रमण करता है, छोटे और बड़े सबसे मिलता है और सब तरह के आदमियों के व्यवहार और बर्ताव को देख-कर नित्य-नया अनुभव प्राप्त करता है। रात जितनी ही अँधेरी होती है, तारे उतनी ही तेज़ी से चमकते हैं; विपद जितनी ही भारी होती है, मनुष्य उतना ही अधिक गुणवान होता

है। विपद् में ही मनुष्य के गुणों का प्रकाश होता है। विपद् निश्चय ही परमात्मा का शुभाशीर्वाद है। जिस तरह दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होते हैं; उसी तरह सम्पद् और विपदावस्थायें आती और जाती रहती हैं। सदा न सुख ही रहता है और न दुःख ही रहता है। इसलिये विपद् में मनुष्य को घबराना न चाहिये। समुद्र में जहाज के डूब जाने पर जो यात्री घबरा जाता है, वह निश्चय ही डूब जाता है; किन्तु जो धैर्य्य और साहस रखता है, वह परमात्मा की दया से बहुधा बच जाता है। धैर्य्यवान का विपद् कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। विपद् मनुष्य का धैर्य्य देखती है; जब उसे धैर्य्य में पक्का पाती है, तब आप उसके धैर्य्य से घबरा कर भाग जाती है। महात्मा लोग इन सब तत्त्व-पूर्ण बातों को जानते हैं; इसीलिये वह स्वभाव से ही धैर्य्यवान होते हैं और विपद् में धैर्य्य को कदापि नहीं त्यागते।

अयोध्यानाथ महाराजा रामचन्द्रजी पर कुछ कम विपत्ति नहीं पड़ी। राजतिलक होते-होते वनवास हुआ, पिता दशरथ का मरण हुआ, जननी से वियोग हुआ सीता-जैसी कोमलाङ्गी को लेकर भीषण वन और दुर्गम पर्वतों में भ्रमण करना पड़ा। वन में भी सीता का वियोग हुआ, पर वे ज़रा भी धैर्य्यच्युत नहीं हुए और इसीलिये महादुस्तर विपद् से पार होकर विजयी हुए। महाराजा नल पर कम

विपद् नहीं पड़ी । राज्य गया, रानी और सन्तान से वियोग हुआ, अन्न और वस्त्र के लिये तरसना पड़ा, पराई चाकरी करनी पड़ी; पर वे नहीं घबराये; इसीलिये शेष मे उनकी विपद् भाग गई, रानी और राज्य सभी मिल गये । पाण्डवो की तरह कौन विपद् सहेगा ? बेचारों पर विपद्-पर-विपद् पड़ती रहीं । धनैश्वर्य्य गया, भरी सभा मे घोर अपमान हुआ, वन-वन में मारे-मारे डोले; भिक्षा-वृत्ति पर भी जीवन निर्वाह करना पड़ा; पर धैर्य्य के बल से सारी विपदाओ को काट कर, भगवान् कृष्ण की दया से, वे युद्ध मे विजयी हुए। महाराजा हरिश्चन्द्र का राज्य गया, स्त्री और पुत्र से वियोग हुआ, पुत्र का मरण हुआ, रानी को पराई दासी बनना पड़ा, स्वयं आपने श्मशान पर चाण्डाल की चाकरी की; पर आपने पुत्र के मरने पर भी अपने धैर्य्य और धर्म को न छोड़ा; इसी मे भगवान् आप पर प्रसन्न हुए; आपकी सारी विपद् हवा हो गई। मनुष्यों को इन महात्माओं की विपद्-कहानियो से शिक्षा ग्रहण कर, विपद् में कदापि धैर्य्यच्युत न होना चाहिये।

महात्मा लोग विपद् में जिस तरह कठोर हो जाते हैं; उसी तरह सम्पद् में वे एकदम नम्र बने रहते हैं और धनैश्वर्य्यशाली होकर इतराते नहीं; अभिमान के वश होकर किसी को कष्ट नहीं देते। इस अवस्था में उनकी सहनशीलता उल्टी बढ़ जाती है । क्षमा और नम्रता की वे मूर्त्ति ही बन जाते हैं; क्योंकि वे इस अवस्था को भी विपदावस्था की तरह चिरस्थायी नहीं समझते ।

महापुरुषों में क्षमाशीलता स्वभाव से ही होती है; किन्तु सर्प-समान दुष्टों में क्षमा नहीं होती। धैर्य वीरों में होता है; नपुंसकों में नहीं होता। सम्पद पाकर दुष्ट लोग नदी-नालों की तरह इतरा जाते हैं; पर महात्मा लोग समुद्र की तरह गम्भीर बने रहते हैं।

वृन्द कवि ने कहा है—

> भले वंस को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
> नवै धनुष सदबंस को, जिहि द्वै कोटि दिखाय॥

सभा-चातुरी भी एक बड़ा गुण है। सभा-चतुर मनुष्य अपनी वचन-चातुरी से सबको मुग्ध कर लेता है। नीति मे लिखा है, जो सुन्दर वचन रूपी द्रव्य का संग्रह नहीं करता, वह परस्पर के आलाप रूपी यज्ञ मे क्या दक्षिणा दे सकता है? वचन-चातुरी से देवता राजी होते हैं। वचन-चातुरी से शत्रु भी वश मे हो जाते है। सभा-चतुर पुरुष हजारों-लाखों विपक्षियों को भी मूक बना देता है। इच्छा न होने पर भी, विपक्षियों को उसकी इच्छानुसार काम करना पड़ता है। यों तो सभी बोलते-चालते और काम करते हैं; पर चतुरों का बोलना-चालना कुछ और ही होता है। सभा-चतुर जो कहता है, वह सप्रमाण कहता है और इस ढंग से कहता है, कि सभी उसकी बातों पर लट्टू हो जाते हैं। कहा है—

> श्रवण नयन मुख नासिका, सब ही के इक ठौर।
> हँसिबो बोलिबो देखिबो, चतुरन को कछु और॥

करिये सभा सुहावते, मुखतें वचन प्रकाश।
बिन समझे शिशुपाल को, बचनन भयो विनाश॥

महात्मा लोग जीवन को एक-न-एक दिन अवश्य नाश होने वाला समझते हैं, उन्हें धन और प्राणों का मोह नहीं होता। वे जीवन का मोह त्यागकर और निर्भय होकर युद्ध करते और अपना पराक्रम खूब दिखाते हैं। वे आगे पैर रख कर पीछे पैर नहीं देते। कर्ण, अर्जुन और अभिमन्यु प्रभृति महापुरुषों के पराक्रम की बात "महाभारत" पढ़ने वालों से छिपी नहीं है। कहा है—

रन सन्मुख पग सूर के, वचन कहैं ते सन्त।
निकस न पाछे होत हैं, ज्यों गयन्द के दन्त॥

महात्मा लोगों की रुचि सदा सुयश में ही रहती है; अपयश और मौत में वे भेद नहीं समझते। उनका खयाल है कि, बुरा जख्म अच्छा हो जाता है, पर कुनाम सुनाम नहीं होता। इसी भय से वे जो काम करते हैं, ऐसा ही करते हैं, जिससे उनके सुनाम में बट्टा न लगे और निशि-दिवस उनका सुयश बढ़े।

महात्मा लोग अपना एक क्षण भी गप-शप, कलह-विवाद या अन्य बुरे कामों में नष्ट नहीं करते। उनका सारा समय ग्रन्थों के देखने, पढ़ने और मनन करने में ही जाता है; जब कि मूर्खों का समय सोने, झगड़ने और अन्य निन्दनीय कामों में नष्ट होता है।

सारांश यह है कि, महापुरुषों की तरह मनुष्य को विपद् में धैर्य्य रखना चाहिये, ऐश्वर्य्य में विनीत भाव धारण करना चाहिये, सभा में वाक् चातुरी दिखानी चाहिये, युद्ध में वीरता प्रकाशित करनी चाहिये, सदा सुयश की प्राप्ति कराने वाले काम करने चाहियें और शास्त्रावलोकन के सिवा और व्यसन न रखना चाहिये। सत्पुरुषों में तो ये सब गुण स्वभाव से ही होते हैं; पर दूसरे लोगों को भी उनका अनुकरण करना चाहिये; क्योंकि इस राह पर चलने से सदा कल्याण होता है।

दोहा।

विपत धीर, सम्पति क्षमा, सभा माहिं शुभ बैन।
जुधि विक्रम, यश माहिं रुचि, ते नरवर गुण ऐन ॥(६३)

63. Fortitude in distress, gentleness in prosperity, cleverness of speech in gatherings, gallantry in war, liking for renown and fondness for the study of Vedas are the natural characteristics of great men

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः॥
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

दान को गुप्त रखना, घर आये का सत्कार करना, पराया भला करके चुप रहना, दूसरों के उपकार को सब के सामने

कहना, धनी होकर गर्व न करना और पराई बात निन्दा रहित कहना—ये उत्तम गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते हैं।

महात्माओं में तो ये गुण स्वभाव से होते ही हैं, उन्हें कोई इनकी शिक्षा नहीं देता; पर अन्य लोगों को भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

दान करके किसी से कहना अखबारों में छपवाना अथवा और तरह डोंडी पिटवाना अच्छा नहीं। इस तरह से जो दान किया जाता है, उस दान का मूल्य घट जाता है; इसी से वास्तविक दानी अपने दान की खबर अपने दूसरे हाथ को भी नहीं पड़ने देते। अमेरिका के धन कुबेर महा-दानी कारनेगी इस ज़माने के कर्ण, करोड़ों का दान करके भी किसी को नहीं जनाते थे। उन्होंने अपने धन से हज़ारों दुखियाओं के दुःख दूर कर दिये, लाखों के चिक ज़रा-ज़रासी प्रार्थनाओं पर काट दिये और साथ ही उनसे कह दिया—खबरदार! किसी से भी यह बात न कहना।" इस अभागे भारत में भी, पहले, ऐसे ही अनेक दानी महात्मा जन्म लेते थे, पर अब तो दान पीछे करते हैं और समाचार पत्रों में खबर पहले निकल जाती है। आजकल इस देश के धनी ऐसी ही जगह अपनी रकमें दान करते हैं, जहाँ से उन्हें नाम होने की या कोई पदवी मिलने की आशा होती है। ऐसा दान सच्चा दान नहीं। ऐसा दान का फल दाता को पूरा नहीं मिलता। कहा है:—

तन धन महिमा धर्म जेहि, जाकहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत विडम्बना, परिणामहु गति जान ॥तुलसी॥

महापुरुष पराया भला करके किसी से कहते नहीं; वे पराया कष्ट निवारण करके चुप रहने में ही अपनी शोभा समझते हैं। जो परोपकार करके कहता फिरता है, उसका उपकार नष्ट हो जाता है। उपकार करके गाते फिरने से उपकार न करना ही भला है। अँगरेज लोग भी उपकार करके जगत् जानने वाले को सत्पुरुष नहीं समझते। महात्माओं में तो वह उत्तम गुण स्वभाव से ही होता है; अन्य लोगों को भी महात्माओं का अनुकरण करना चाहिये। महात्मा अर्जुन ने विराट् राजा का महत् उपकार करके भी, अपनी जबान से यह नहीं कहा कि, यह काम मैंने किया है। उसका सेहरा उत्तर के सिर ही बाँधना चाहा; पर स्वयं उत्तर ने राजा से सारा हाल कह दिया। कहा है—

बड़े बड़ेई काम कर, आप सिहावत नाहिं।
जग जस उत्तर को दियो, पथ विराट के माहिं ॥

सत्पुरुष घर आये शत्रु का भी उपकार करते हैं। अपने घर में जो कुछ होता है, उसी से उसका सत्कार करते हैं। अगर कुछ भी पास नहीं होता, तो उसे बैठने को कुशों का आसन देते हैं, शीतल कूप-जल पिलाते हैं और मीठी मीठी बातों से उसका श्रम दूर करते हैं। आप नहीं खाते, अतिथि को खिलाते हैं। आप जमीन पर सो रहते हैं, पर अतिथि को

पलंग पर सुलाते हैं। यह सत्पुरुषों का सहज स्वभाव होता है। और लोगो को भी इनका अनुकरण करना चाहिये। हमारे शास्त्रो मे लिखा है:—

> अपूजितोऽतिथिर्यस्य, गृहाद्याति विनिश्वसन्।
> गच्छन्ति विमुखास्तस्य, पितृभिः सह देवताः॥

"जिसके घर मे अपूजित अतिथि ग्वाँस लेता हुआ चला जाता है, उसके यहाँ से देवता पितरों-सहित विमुख होकर चले जाते हैं।" अगर गृहस्थ सूर्य डूबने के बाद आये हुए अथिति की सेवा करता है, तो वह देवता होता है—"आइये" कहने से अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण धोने से पितर और अघ देने से शिवजी प्रसन्न होते है। घर पर कोई भी आवे उसकी खातिर करनी ही चाहिये। यथासामर्थ्य खान-पान-वस्त्र आदि से उसका कष्ट और श्रम निवारण करना चाहिये। देखिये, वृक्ष अपने काटने वाले के सिर पर भी छाया करता है। घर पर आये हुए बालक, वृद्ध, युवा सभी की पूजा करनी चाहिये, क्यों कि अभ्यागत सबका गुरु होता है। उत्तम वर्ण वाले के घर आयो हुआ नीच वर्ण का अथिति भी यथायोग्य पूजनीय होता है। जिसके घर से अथिति निराश होकर लौट जाता है, वह अपने किये पाप उसे देकर उसका पुण्य ले जाता है। एक दिन भारत में अथिति-सत्कार की बड़ी महिमा थी, पर अब वह बात नहीं। देश के जिन भागो मे नई सभ्यता की रोशनी नहीं पहुँची है, वहाँ के लोग अब भी पुरानी चाल पर चलते है। यह बात

राजपूताने के उन हिस्सो मे, जिनमे पुराने ही ढँग के मनुष्य है, अब भी है। हमने सिन्ध और राजपूताने के मरुस्थल में स्वयं परिभ्रमण किया है। जब हम दिन-भर चलकर शाम के वक्त किसी गाँव में पहुँचते थे, तो वहाँ के ग़रीब लोग हमे यथा-सामर्थ्य सब तरह सुखी करने में ही अपने को धन्य समझते थे। कहा है—

जो घर आवत शत्रुहु, सुजन देत सुख चाहि।
ज्यों काटे तरु मूल कोउ, छांह करत वह ताहि॥

महापुरुष अपने किये उपकारों को तो छिपाते हैं; पर दूसरा उनके साथ जो ज़रा सी भी भलाई करता है, उसको सौगुनी करके औरों से कहते हैं। यह सामर्थ्य सत्पुरुषो मे ही होती है। नीच लोग तो अपने उपकारी के उपकार को छिपाने की ही चेष्टा किया करते हैं, क्यों कि संकीर्ण-हृदय लोग इसमें अपनी मान-हानि समझते हैं। किसी ने कहा है—

"Man is, beyond dispute, the most excellent of created beings, and the vilest animal is a dog but the sages agree that a greatful dog is better than an ungrateful man."

मनुष्य, निस्सन्देह, सब प्राणधारियो मे उत्तम है और कुत्ता सबसे नीच है लेकिन बुद्धिमान कहते हैं, उपकार न मानने वाले मनुष्य से कुत्ता अच्छा है। शास्त्रों में लिखा है—, मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करने वाले और विश्वासघाती

सदा रौरव नरक मे रहते हैं; इसलिये पराये किये उपकार को कभी न भूलना चाहिये और अपने उपकारी की जगह-जगह प्रशंसा करनी चाहिये। कहा है—

तिनसों विमुख न हुजिये, जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि, जैसे पीठ न देत॥
खल नर गुण माने नहिं, मेटहिं दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जलद करत तेहि लोप॥

कहते है, धन से किसे गर्व न हुआ? किस कामी का दुःख कम हुआ? किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया? कौन राजा का प्यारा न हुआ? कौन काल के वश नही हुआ? कौन याचक बड़ा हुआ? दुष्ट के संसर्ग से कौन सकुशल बचा? महात्मा तुलसीदासजी ने भी कहा है—

"प्रभुता पाय काहि मद नाहीं?"

यह बात साधारण लोगों के सम्बन्ध मे ठीक है। सत्पुरुषो को धन से गर्व नहीं होता। धनैश्वर्य पाकर, सत्पुरुष फलदार वृक्षो की तरह उलटे नीचे को झुक जाते है; अर्थात् नम्र हो जाते हैं। वे इस बात को जानते हैं कि धन, यौवन और जीवन असार और चञ्चल हैं। धन गेंद की तरह हाथ मे आता है और गेंद की ही तरह शीघ्र ही हाथ से निकल जाता है। जो आज ऊँचा है उसे कल नीचे गिरना ही होगा। इस जहान मे कितने ही बाग लग-लगकर सूख गये, आज उनका

नामोनिशान भी नहीं, कितने ही दरिया चढ़े और उतर गये। संसार की परिवर्तनशीलता का ज्ञान होने की वजह से ही, वे सारी पृथ्वी के अकेले स्वामी होने पर भी, मुतलक़ घमण्ड नहीं करते और जो ऐश्वर्य्यशाली होने पर गर्व नहीं करते, वे निस्सन्देह महात्मा और इस पृथ्वी के भूषण हैं।

कहा है—

सधन सगुण सधरम सगण, सुजन सुमबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप॥

महात्मा पुरुष अगर किसी का ज़िक्र करते हैं, तो उसमें निन्दाव्यञ्जक वाक्य तो क्या—एक बुरा शब्द भी नहीं आने देते। उनको किसी से ईर्षा-द्वेष नहीं होता, इसलिये वे किसी का दिल दुखाने वाली बात नहीं करते। पराया दिल दुखाने को वे महापातक समझते हैं। उनकी ज़बान और कलम से, स्वप्न में भी किसी की निन्दा की बात नहीं निकलती। महात्माओं को दूसरे मे दोष दीखते ही नहीं। दोष उन्हीं को दीखते हैं जिनके हृदय स्वयं मलीन होते हैं और जो परछिद्रान्वेषण की फिक्र में रहते हैं। जो स्वयं खराब होते हैं, उन्हीं को दूसरे खराब मालूम होते हैं। धूँधले आइने मे ही चेहरा खराब दीखता है। धुँधल के मे स्पष्ट लिखा हुआ भी अस्पष्ट और अपाठ्य दीखता है। शैली महाशय ने कहा है—

"जो ग्रन्थकारों की धूल उड़ाते है, उनमे अधिकांश लोग मूर्ख और पर-गुण-द्वेषी होते है।" पर-गुण-द्वेषी के सिवा पर-

निन्दा कौन करेगा? महापुरुष जो कहते हैं, वह इस तरह कहते हैं, जिससे किसी के दिल में चोट न लगे और उन्हें कोई निन्दक न कह सके। दूसरे का दिल दुखाने वाली बात सच भी हो, तो भी न कहनी चाहिये।

कहा है—

पर परिवादः परिषदि न कथाञ्चित पण्डितेन वक्तव्यः।
सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तम सुखावहं भवति॥

सभा में बुद्धिमान को पराई निन्दा किसी हालत में भी न करनी चाहिए। जो बात कहने से दूसरे को बुरी लगे, वह सत्य भी हो तथापि न कहनी चाहिये।

और भी कहा है—

पर को अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
करैं उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो जोय॥
दोष भरी न उचारिये, जदपि यथारथ बात।
कहै अन्ध को आँधरो, मान बुरो सतरात॥

छप्पय।

दियो जनावत नाहिं, गये घर कर सत आदर।
हित कर साधत मौन, कहत उपकार वचन वर॥
काहू को दुख होय, कथा वह कबहूँ न भाषत।
सदा दान सो प्रीति, नीतियुत सम्पति राखत॥

यह खड्गधार व्रत धार के, जे नर साधत मन वचन।
तिनकौ सुनहु यह लोक मे, पूर रह्यो यश ही रचन ॥६४॥

64. To give charity in secret, to honour a guest, to be silent after doing good to others, to speak openly of the good done by others, to be free from vanity in spite of wealth and to speak of others without the use of any bad remarks (are the virtues generally possessed by good man). (I wonder) who has taught these good men to observe such a difficult vow which is as sharp as the edge of a sword.

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता।
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ॥
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं।
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ॥६५॥

विना ऐश्वर्य के भी महापुरुषों के हाथ दान से, मस्तक गुरुजनों को सर झुकाने से, मुख सत्य बोलने से, जय चाहने वाली दोनों भुजायें अतुल पराक्रम से, हृदय शुद्ध वृत्ति से और कान शास्त्रों से शोभा के योग्य होते हैं।

मनुष्य के और आभूषण धन होने पर होते हैं; पर सत्पुरुषो की निर्धनावस्था मे भी उनके हाथ दान से, मस्तक बड़ो को दण्डवत-प्रणाम करने से, मुँह सत्य भाषण से, भुजाये पराक्रम से, हृदय शुद्धता से और कान शास्त्र सुनने से, उनके

भूषण होते है। अर्थात् वे धन न होने पर भी, इन उत्तम कामो को करते है।

छप्पय।

करन करत ते दान, शीस गुरु चरणन राखत।
मुखसों बोलत साँच, भुजन सौं जय अभिलाषत॥
चित की निर्मल वृत्ति, श्रवण मे कथा श्रवणरति।
निशदिन पर उपकार सहित, सुन्दर जिनकी मति॥
ते बिना साज सम्पत तऊ, सोहत सकल सिंगार तन।
उनकौ जु सङ्ग तिन देह प्रभु, तौ यह सुधरे चपल मन॥६५।

65. The hands become praiseworthy by charity, the head by bowing down before elders, the mouth by speaking the truth, both the arms by display of valour in battle, the mind by calm thinking and the ears by listening to the knowledge of scriptures. The foregoing are the ornaments of those great by nature even without the possession of wealth.

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥६६॥

सम्पत्ति-काल मे महापुरुषों का चित्त कमल से भी कोमल रहता है और विपद्-काल में पर्वत की महान शिला की तरह कठोर हो जाता है॥६६॥

सम्पदावस्था मे मनुष्य जितना ही नम्र रहे उतना ही अच्छा। इस अवस्था मे नम्रता और सरलता से मनुष्य की

शोभा होती है और विपद्-काल मे मनुष्य जितना ही कठोर होता है, जितना ही धैर्य्यविलम्बन करता है, उतनी ही उसकी बड़ाई होती है। जो विपद् मे घबराता है, उसको विपद् घबराती है। कठोर होने से ही विपद् आसानी से कट जाती है। जो विपद् में पड़ कर कड़ा नहीं होता, सब कुछ सहने को तैयार नहीं होता, मोह से खाली रोता है, उसका रोना ही बढ़ता है। उपाय करने विषाद त्यागने के सिवा विपद् की और दवा नहीं। महापुरुष सम्पद् और विपद् दोनों अवस्थाओं को चिरस्थायी नहीं समझते; उन्हें गाड़ी के पहियो की तरह घूमती हुई समझते हैं; इसलिए वे सम्पद् में न तो फूलते हैं और न इतराते हैं और विपद् मे न रोते हैं न घबराते। हैं जो नम्र और सरल होते हैं, वे आपद् मे विकार-ग्रस्त नहीं होते।

सोरठा।

सत पुरुषन की रीति, सम्पत में कोमलहि मन॥
दुखहू में यह नीति, बज्रसमानहिं होत तन॥६६॥

66. In prosperity the heart of the great becomes gentle like a lotus-flower; while in calamity it is hardened like the rock of a great mountain.

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते।
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितम् राजते॥

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते ।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥६७॥

गरम लोहे पर जल की बूँद पड़ने से उसका नाम भी नहीं रहता; वही जल की बूँद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती सी हो जाती हैं और वही जल की बूँद स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़ने से मोती हो जाती है । इससे सिद्ध होता है, कि संसार में अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग से ही होते हैं ।

निस्सन्देह अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्य में प्रायः संसर्ग या सुहबत से ही होते है। यदि संसर्ग अधम होता है, मनुष्य अधम हो जाता है और यदि संसर्ग उत्तम होता है तो मनुष्य उत्तम हो जाता है।

सोरठा ।

तवे बुन्द ह्वै छीण, कमल पत्र जे सरस हैं।
मुक्ता सीपहिं कीन, चाल मान अपमान हैं ॥६७॥

67. No trace is left of a drop of rain fallen on red hot iron. The same drop, fallen on a lotus-leaf (in the shape of dew) looks beautiful like a pearl. (Again) the same is transformed into a genuine pearl when it falls into a sea-shell at the time of Swati (nakshatra). Generally the evil, ordinary or good qualities of men are acquired in accordance with the kind of society they keep.

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो ।
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत्त्रयं जगति पुण्य कृतो लभन्ते ॥६८॥

अपने उत्तम चरित्र से पिता को प्रसन्न रक्खे वही पुत्र है, अपने पति का सदा-सर्वदा भला चाहे वही स्त्री है और जो सम्पद और विपद—दोनों अवस्थाओं मे एक सा रहे वही मित्र है। जगत् मे ये तीनों भाग्यवानों को ही मिलते हैं।

यों तो पुत्र प्रायः सभी के होते हैं; पर जो पुत्र सदाचारी है, अच्छे चाल-चलन वाला है, कुकर्मों मे बचने वाला है, पिता-माता की सेवा करने वाला और उनकी आज्ञा मे रहने वाला है, वही पुत्र है। वैसे ही पुत्र के माता-पिता पुत्रवान हैं। असदाचारी—बुरे चाल-चलन वाल माता-पिता की बात न सहने वाला, उनकी आज्ञा न पालन करने वाला और अपने कुकर्म से कुल मे दाग लगाने वाला पुत्र, पुत्र नही—शत्रु है।

प्राय सभी लोगो के भार्य्यायें होती हैं; पर वास्तविक स्त्री वही है, जो पतिव्रता और पति परायणा है तथा पति के अनुकूल चलने वाली, छाया की तरह उसके साथ रहने वाली और पति के दुःख में दुःखी और पति के सुख में सुखी रहने-वाली है एव हर क्षण पति की शुभ-चिन्तना करने वाली

है। जो स्त्री व्यभिचारिणी, कुलटा या असती है; जो हरदम कलह करने वाली और क्रोधमुखी है; जो पति को कष्ट देती, उसकी इच्छानुसार नही चलती, और उसकी अशुभ चिन्तना करती है, वह स्त्री—स्त्री नहीं; वह तो पति की शत्रु अथवा साक्षात् मृत्यु है।

मित्र भी बहुत लोगों के होते हैं। जिसके पास दो पैसे होते है, उनके अनेक खुशामदी मित्र बन बैठते हैं। जब तक पैसा देखते है, मौज उड़ाने के सामान देखते है, खूब गुलछर्रे उड़ते है, तब तक वे मित्र बने रहते हैं; लेकिन ज्योंही पैसों का अभाव या दरिद्र देखते हैं, कि आजकल के मित्र नौ दो ग्यारह होते हैं। जो ऐसों को मित्र समझते हैं, वे बड़ी गलती करते और धोखा खाते है। इन लोगों को स्वार्थी या मतलबी कहना चाहिये। मित्र तो वही होता है, जो सुदिन और दुर्दिन—अच्छे दिन और बुरे दिन—सम्पद और विपद् दोनो मे ही एकसा रहता है अथवा विपद् में स्नेह की मात्रा और भी बढ़ा देता है। ऐसा मित्र न हमें मिला और न हमने किसी और के ही देखा। हाँ, मतलबी यार हमें भी बहुत मिले और अन्य लोगो को भी। बनी मे साथ रहने वाले और बिगड़ी में अलग हो जाने वाले नीच हमने बहुत देखे। कहा है—

> प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी-
> पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयंस्तानातनोरुत्सवान्।

तस्मिन्नद्य रसालशाखिनी दशां दैवात् कृशामंचति
त्वंचेन्मुञ्चसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः।

हे चञ्चरीक! वसन्त के आते ही चारों ओर से फूली हुई आम की मंजरियों के पुञ्ज मे मञ्जु मञ्जु गुञ्जार करते हुए तूने खूब सुख पाया। अब दैववशात्, आमो के पुष्पहीन होने पर, तू यदि उससे पहला सा स्नेह न रक्खेगा, तो तुझसे बढ़कर और नीच कौन है?

जिनका स्वभाव ही नीच है, वे इन बातो को नहीं समझते; उन्हें किसी के भले-बुरे कहने की परवा नहीं। अगर वे इतना ही समझें, मित्रो को मुसीबत मे न त्यागें, तो वे सज्जन ही न कहलावें। पर ऐसे सज्जन विरले ही होते है। महात्मा स्टील ने कहा है:—

"Men of courage, men of sense and men of letters are frequent a but true gentleman is what one seldom sees."

साहसी, बुद्धिमान और विद्वान् लोग बहुत मिलते है; किन्तु जिसे सच्चा सत्पुरुष कहते है, वह कभी ही दृष्टिगोचर होता है। साधुपुरुष और चन्दन सर्वत्र नहीं होते। तात्पर्य यह कि, जिन्हे सच्चे मित्र कहते है, वे किसी ही पुण्यवान को मिलते हैं। मित्रता का नाम भर रह गया है; अब सच्ची मित्रता कहाँ है? किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है –

मिट गये जौहर वफ़ा के, उठ गये सब अहले दिल।
अब वफ़ा है नाम को और बावफ़ा कहने को है॥

सहृदय उठ गये और सहृदयता भी उन्हीं के साथ चली गई, अब तो वफा और बावफा केवल शब्दों में रह गये।

दोहा।

पुत्रचरित तिय हितकरन, सुख-दुख मित्र समान।
मन-अन तीनों मिलें, पूरब पुण्यहि जान ॥६८॥

68 He makes a good son who pleases his father by his good character. She is a good wife who desires only for the welfare of her husband He is a good friend who remains equal in distress as well as in happiness. These three are obtained in this world by those only who have done pious deeds (in their previous birth).

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ॥
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

एक देवता की आराधना करनी चाहिये—केशव की या शिव को; एक ही मित्र करना चाहिये—राजा हो या तपस्वी, एक ही जगह बसना चाहिये—नगर में या वन म और एक से ही विलास करना चाहिये—सुन्दरी नारी से या कन्दरा मे।

इसका खुलासा यह है—मनुष्य को या तो संसार में रहकर भोग भोगने चाहियें अथवा संसार को परित्याग करके वन में जा बसना चाहिये। यदि मनुष्य संसार में रहे, तो उसे कृष्ण भगवान् की भक्ति करनी चाहिये, किसी राजा से मैत्री करनी

चाहिये, नगर मे बसना चाहिये और किसी सुन्दरी नारी का पाणिग्रहण कर उससे विलास करना चाहिये। अगर मनुष्य संसार की असारता से विरक्त होकर वन मे रहे, तो उसे शिवजी की भक्ति और आराधना करनी चाहिये, किसी तपस्वी से मैत्री करनी चाहिये, वन मे रहना चाहिये और कन्दरा—गुफा से विलास करना चाहिये।

अत्यागी और त्यागी—गृहस्थ और संन्यासी दोनों के लिये योगिराज क्या ही उत्तम उपदेश दिया है! संसार मे रहने वाले, गृहस्थ के लिये कृष्ण की भक्ति, राजा की मैत्री, नगर का निवास और सुन्दरी नारी से विलास—चारों ही बातें बड़ी उत्तम हैं। इस तरह करने से अत्यागी—गृहस्थ को तीनों लोको मे सुख होता है। भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति करने से मनुष्य के सारे मनोरथ पूरे होते है; कोई आपदा पास नहीं आती और यदि आती भी है, तो भगवान् की कृपा से हवा से बादलो की तरह उड़ जाती है। लाख-लाख दुर्जन शत्रु मिल कर भी, कृष्ण के प्यारे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। कृष्ण की कृपा होने से लक्ष्मी की कृपा होती है। पति जिसे चाहता है, स्त्री भी उसे प्यार करती है। भगवान् कृष्ण की भक्ति का फल, इस कलिकाल में भी, हाथों-हाथ मिलता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इन पंक्तियो के लेखक ने इसका स्वयं अनुभव किया है। बहुत से लोग कहा करते है, कि गृहस्थी के जंजाल में भगवान की भक्ति हो हा नहीं

सकती। जो ऐसा कहते है, गलती करते है। मनुष्य गृहस्थी मे रह कर भी, परमात्मा की भक्ति कर सकता है। मनुष्य को चाहिये, वाणिज्य-व्यवसाय नौकरी-चाकरी आदि ससारी काम करता रहे, पर मनको प्यारे कृष्ण मे रक्खे। इस तरह शरीर से जगत् के काम-धंधे करने और मन को परमात्मा मे रखने से मनुष्य को, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो पदार्थों की प्राप्ति होती है। माया मे फँसा हुआ चञ्चल मन मुकुन्द के चरण कमलो मे कैसे लग सकता है? स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—"व्यभिचारिणी स्त्री घर के सभी काम-काज करती रहती है, पर उसका मन हर क्षण अपने यार मे रहता है। गाय जगह-जगह घास, चरती फिरती है, पर मन को अपने बच्चे मे रखती है। स्त्रियाँ धान या बाजरा वगैर. ओखली मे डाल कर कूटा करती है, उस समय एक हाथ से मूसल चलाती हैं और दूसरे से धान को ठीक करती जाती है। अगर उस समय घर का कोई आदमी या पड़ोसिन आ जाती है, तो वे धानभी कूटती जाती हैं और बाते भी करती रहती हैं। अगर उस समय बालक रोने लगता है, तो उसे दूध भी पिलाती जाती है; पर उनका ध्यान मूसल ही मे रहता है। अगर बातो मे उनका ध्यान जरा भी मूसल से हट जाय, तो उनके हाथ के पलस्तर उड़ जायँ, फौरन मूसल उनके हाथ पर ही पड़े।" स्त्रियाँ तीन-तीन जेहर पानी की सिर पर धर कर, अपनी साथिनो के साथ इठलाती और बातें करती

राह से चलती हैं। अगर राह में किसी कुलटा का यार मिल जाता है, तो वह सिर पर घड़े को रक्खे हुए हँस-हँस कर और मटक-मटक कर खूब बातें करती है, पर उसके घड़े का पानी उछल कर उसके कपड़े नहीं भिगोता—इसका क्या कारण है ? कारण यही है, कि वह हँसती-मटकती और बातें अवश्य करती है, पर उसका मन अपने सिर पर रक्खे हुए घड़े से ज़रा भी नहीं हटता। बस इसी तरह संसारी काम करता हुआ भी, मनुष्य भगवान् की सच्ची भक्ति कर सकता है। स्त्री रखने, बाल-बच्चों का पालन-पोषण करने और अन्यान्य सुकर्म करने से इष्टसिद्धि में ज़रा भी गड़बड़ नहीं होती।

पितरों के पिण्डदान की व्यवस्था के लिये पुरुष को सुन्दरी से विवाह करके सन्तान पैदा करनी चाहिये। सुन्दरी स्त्री के साथ शादी करने की बात इसलिये लिखी गई है, कि स्त्री के सुन्दरी होने से पराई स्त्री पर मन नहीं जाता और सन्तान भी स्वरूपवान् होती है। नगर मे रहने की बात इसलिये लिखी है, कि गृहस्थ को चिकित्सक, साहूकार, कर्म-काण्डी ब्राह्मण और खाद्य सामग्री एवं वस्त्र प्रभृति की ज़रूरत पड़ती रहती है और ये सब शहर मे आसानी से ज़रूरत के समय मिल जाते हैं। राजा के साथ मैत्री करने की बात इस-लिये लिखी है, कि राजा के साथ मैत्री रहने से पुरुष को धन-सञ्चय मे सहायता मिलती है, लोगों पर प्रभाव पड़ता है और

सम्मान मिलता है। राज-सम्मान अमृत के समान माना गया है और है भी ठीक। भाग्यवान पुरुष ही राजसम्मान लाभ करते हैं। कहा है—

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम्।
अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम्॥

शीतकाल में अग्नि अमृत है, प्यारे का दर्शन अमृत है राज-सम्मान अमृत है और खीर का भोजन अमृत है।

अगर मनुष्य के स्त्री न हो, हो तो कुलटा और कलहकारिणी हो, लक्ष्मी की कृपा न हो, राजा से भी मैत्री न हो; उसे भूल कर भी गृहस्थाश्रम में रह कर अपना दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन नष्ट न करना चाहिये। सब आशा-तृष्णा त्याग कर वन में रहना चाहिये। वन में अकेले रहने से, मनुष्य का मन सब ओर से हट कर प्रभु के पदपंकजों में ही झुकेगा; क्योंकि एकान्त-वासी को मन के विकृत करने वाले पदार्थ— शिकार, ताश-चौपड़ आदि खेल, दिन में सोना, परनिन्दा, स्त्री का सङ्ग, मदिरा-पान और नाच-बाजे तथा गाने प्रभृति का संसर्ग ही नहीं रहता, इससे मन विकृत नहीं होता। कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, उपरोक्त पदार्थ मनुष्य के मन को बिगाड़े बिना नहीं रहते। विकृत मन में प्यारा बैठ नहीं सकता। प्यारे के निवास के लिये मन को क्रोध के आठों दोष—दुष्टता, हठकारिता, पर की अनिष्ट-चिन्ता और आचरण, पराये गुण देख कर जलना और सह न सकना, पराये गुणों में दोष ढूँढ़ना, जो देना

है उसे न देना और दी हुई चीज को हजम कर जाना, कठोर वचन बोलना और निर्दयता के काम करना—इनसे मन को साफ रखना चाहिये। शुद्ध और पवित्र मन में ही प्यारा बैठता है। जिनसे इस तरह मन शुद्ध न किया जा सके, उनका वन मे जाना भी वृथा ही है। वन मे रह कर तपस्वियो से मैत्री करनी चाहिये; संसारी लोगो का संसर्ग सदा त्यागना चाहिये। गुफा में बैठ कर आनन्द पूर्वक "शङ्कर-शङ्कर" भजना चाहिये। इस तरह करने से मनुष्य को इस जन्म मे सच्चा सुख और शान्ति मिलती है और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

एक ही काम करना चाहिये, 'इधर के रहे न उधर के रहे, खुदा ही मिला न विसाले सनम्' वाली कहावत न चरितार्थ करनी चाहिये। संसारी बनना हो, तो संसारी ही बनना चाहिये; त्यागी का ढोंग करना ठीक नहीं। संन्यासी होकर गृहस्थों के घर आना, उत्तमोत्तम पुष्टिकारक पट्रस भोजन करना, धन सञ्चय करना, युवतियों को पास बिठाना, उनसे पैर पुजाना—उचित नहीं; इस तरह करने से मनुष्य न इधर का रहता है न उधर का। "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" यह कहावत चरितार्थ होती है।

गोस्वामीजी ने कहा है:—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल।

कुण्डलिया ।

सेवहु केशव देव को, कै शिव की कर सेव ।
मित्र एक कर नृपति को, कै जोगेश्वर देव ॥
कै जोगेश्वर देव, दुहुन मे एक हितू करि ।
करिये नगर निवास, किधौं वनवास करहु डरि ॥
पुत्रवती तिय संग, अंग अगन मेटै बहु ।
करि गिरिगुहा प्रसङ्ग, प्रीति सों नितप्रति सेवहु ॥६९॥

69 (One ought to worship) only one god either Vishnu or Shiva. (There should be only) one friend, either a king or a recluse. (There should be) one residence, either in a town or in a forest. (There should be single beautiful wife or (else one should have resort to) a (hidden) cave.

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाः पदार्थे
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः
॥ ७० ॥

नम्रता से ऊँचे होते हैं, पराये गुणों का कीर्तन करके अपने गुणों को प्रसिद्ध कर लेते हैं—पराया भला करने मे दिल से लग कर अपना मतलब भी बना लेते हैं और निन्दा करने वाले दुष्टों को अपनी क्षमाशीलता मे ही कलङ्कित या लज्जित करते हैं—ऐसे आश्चर्यकारक आचरण से सभी के माननीय सन्त पुरुष संसार मे किस के पूज्यनीय नहीं हैं ?

सज्जन सब से नम्रता का व्यवहार करते हैं, किसी से भी ऐंठ कर बात नहीं करते, अपने तईं सब से नीचा समझते हैं और अपनी नम्रता से ही ऊँचे होते हैं; यानी किसी को भी अपने से कम नहीं समझते, सबको अपने से ऊँचा और अपने तईं सब से नीचा समझते हैं; अदना-से-अदना आदमी से विनीत व्यवहार करते हैं। उनके इस व्यवहार से प्रत्येक मनुष्य का आत्मा सन्तुष्ट हो जाता है; प्रत्येक मनुष्य उनका सन्मान करने लगता है और उन्हें अपने से ऊँचा समझता है; क्योंकि वास्तविक महापुरुषों में ही नम्रता होती है; जो ओछे और थोथे होते हैं, उन में ही अभिमान की मात्रा हद से जियादा होती है। नीच लोग अभिमान-भरी बातें कह कर, अपनी शान और रोब दिखा कर ऊँचा होना चाहते हैं; पर वे लोगो की नजरों से उल्टे ही गिर जाते हैं। पहले भी जितने बड़े लोग हुए हैं, वे सभी निराभिमानी परले सिरे के नम्र, विनयी और मधुरभाषी हुए हैं। जो अपने तईं ऊँचा बनाना चाहें, उन्हे नम्र होना ही चाहिये; बिना नीचा हुए कोई ऊँचा हो नहीं सकता।

कविजन कहते हैं—

'नर की अरु नल नीर की, गति एकी कर जोय।
ज्यों-ज्यों नीचो ह्वै चले त्यों-त्यों ऊँचो होय॥'

---

‡ A little pot becomes soon hot—*Dutch*
Empty vessels make the most noise.

उच्च हुयो जो जन चहै, विनय धरे निज सत्य।
नयो प्रथम ज्यों केशरी, है करिवध समरत्थ॥

ईसाइयों की बाइबिल में लिखा है—

"He that humbles himself shall be exalted"

जो अपने तईं नीचा बनावेगा, वह अवश्य ऊँचा होगा। शेख़ शादी ने भी कहा है—

"बनी आदम सरश्त अज़ ख़ाक दारन्द
अगर ख़ाकी न बाशद आदमी नेस्त
न शायद बनी आदमे पाकज़ाद।
के दर सर कुनद किब्र तुन्दी ओ बाद॥"

मनुष्य खाक से बना है। अगर उसमें ख़ाकसारी—नम्रता नहीं है, तो वह फिर आदमी नहीं है। खाक से बनी आदम की औलाद को अभिमान और कठोरता आदि से बचना चाहिये।

सच है मनुष्य मिट्टी से बना है और मिट्टी में ही मिल जायगा*। इसलिये उसमें मिट्टी की तरह ही नम्रता होनी चाहिये। जिसमें नम्रता नहीं, वह मनुष्य नहीं।

दूसरी बात सज्जनों के स्वभाव में यह होती है, कि वे किसी की भी निन्दा नहीं करते; जहाँ तक होता है, पराई

---

* Dust thou art, and unto dust thou shalt return—*Bible.*

प्रशंसा ही किया करते है। जिनके दिल मे ईर्षा-द्वेष होता है, जिनके हृदय अपवित्र होते है, उनके हृदयों से ही गन्दी बाते निकला करती है। जो सबको ही परमात्मा का रूप समझते है, जो सभी प्राणियों मे परमात्मा को देखते है, वे भूल कर भी किसी की निन्दा नही कर सकते। वे सभी को अपने से बड़ा समझते है, उनकी नजर मे कोई भी उनसे छोटा नहीं। उनकी ऐसी समझ है, तभी तो वे किसी से शत्रुता और द्वेषभाव नहीं रखते। कहा है—

> कैसा मोमिन कैसा काफिर, कौन है सूफी कैसा रिन्द।
> सारे बशर हैं बन्दे हक के, सारे शर के झगड़े हैं॥

और भी—

> ऐ ज़ौक़, किसको चश्मे हिकारत से देखिये।
> सब हमसे है ज़ियादा, कोई हमसे कम नहीं॥

जो सबको बन्दे-खुदा समझते हैं और सभी को अपने से ज़ियादा समझते हैं, वे किसी को नजर-हिक़ारत से नही देख सकते*। उनके मुँह से पराई प्रशसा छोड़ निन्दा निकल ही नहीं सकती; पर यह काम है कठिन। किसी लेखक की नुक़ताचीनी या कड़ी समालोचना करना आसान है; पर उसकी प्रशसा करना कठिन है। निस्सन्देह पराये औगुणो को छिपाना और गुणो का बखान करना कठिन है; पर सज्जनो मे यह गुण स्वभाव से ही होता है। जो ऐसा करते हैं,

---

* A true mrn hates no one— *Napoleon.*

उनका कोई भी शत्रु हो नहीं सकता, सभी उनके मित्र हो जाते है और उन्हीं के द्वारा उनके गुणों की प्रसिद्धि हो जाती है।

तीसरा गुण सज्जनो मे यह होता है, कि वे सदा परोपकार में दत्तचित्त रहते है। जो सदा पराई भलाई मे लगा रहेगा, उसका कोई काम बिना बने रह नहीं सकता।

चौथा गुण सज्जनों मे यह होता है, कि वे अपने निन्दको की बातों का बुरा नहीं मानते। वे आपके वृक्ष की तरह होते हैं, कि लोग उसे पत्थर मारते है और वह फल देता है। जो लोग उनकी निन्दा करते है, वे उन्हीं की प्रशंसा करते है। उनका खयाल है—

> ज़ुबाँ खोलेंगे मुझ पर बद ज़ुबाँ क्या बादशआरी से।
> कि मैंने खाक भर दी है उनके मुँह मे खाकसारी से॥
> तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ ज़ौक !
> है बुरा वही कि जो तुझ को बुरा जानता है॥

बुरे आदमी अपनी बुराई के कारण मेरी निन्दा नहीं कर सकते; क्यों कि मैंने अपनी नम्रता से उनके मुँह में खाक भरदी है।

ऐ जौक ! तू भला है, तो निन्दकों के कहने से बुरा हो नहीं सकता। वही बुरा है, जो तुझे बुरा समझता है।

"गुलिस्ताँ" मे लिखा है:—

"द्वेषी मनुष्य ही निरपराध मनुष्यों से शत्रुता रखता है। मैंने एक मूर्ख को एक प्रतिष्ठित पुरुष का अपमान करते देखा।

मैंने उससे कहा—"महाशय! अगर आप भाग्यहीन हैं, तो इसमे भाग्यवानों का क्या दोप?" जो तुमको देख कर जले, तुम उसका बुरा मत चीतो; क्यो कि वह अभागा स्वयं आफत मे फँसा हुआ है‡। जिसके पीछे ऐसा शत्रु (दूसरे को देख कर कुढ़ना) लग रहा है, उसके साथ शत्रुता करने की क्या आवश्यकता? बुद्धिमान दुष्टों की वातों का बुरा नहीं मानते। दुष्टों का स्वभाव ही है, कि जब वे गुणों में दूसरों की बराबरी नहीं कर सकते, तब अपनी दुष्टता के कारण उनमें दोप लगाने लगते हैं।"

सज्जन पुरुष नीचों की वातो की परवा नहीं करते। वे अपनी नम्रता, और क्षमाशीलता से ही उनके मुँह बन्द कर देते हैं। बुराई करते-करते जब दुष्ट थक जाते हैं, तब आप ही लज्जित होकर बुराई करना छोड़ देते हैं।

> क्षमा खड्ग लीने रहे, खल की कहा बसाय।
> अगिन परी तृण रहित थल, आपहि तैं बुझ जाय॥

नम्रता से ऊँचा होना, पराया गुण गान करके अपनी प्रसिद्धि करना, पराया भला करते हुए अपना भी स्वार्थ सिद्ध कर लेना और निन्दकों को अपनी क्षमाशीलता से लज्जित करना—ये चारो ही गुण अनुकरणीय हैं। जिनमें ये चारों गुण होते हैं, निश्चय ही वे सभी के पूजनीय होते हैं।

---

‡ Envy, if surrounded on all sides by the brightness of another's prosperity, like the scorpion confined within a circle of fire, will sting itself to death.—*Colton*

नीचे ह्वै के चलत, होत सबसे ऊँचे अति।
परगुण कीरति करत, आप गुण ढाँकत यह मति॥
आपन अरथ विचार, करत निशि दिन परमारथ।
दुष्ट वचन नहिं कहत, क्षमा कर साधत स्वारथ॥
नित रहत एक रस सबनसों, वचन कोप कर कहत नहिं।
ऐसे जु सन्त या जगत में, बन्दित सब के स्वतन्त्रहिं॥७०॥

70. They display their greatness by their humility, and their personal good qualities by speaking well of others. In the acquirement of their own objects they ceaselessly make even greater efforts for the benefit of others and put to shame by their pardoning (habits) the evil men whose mouths are polluted by (uttering) dry words of attack. Who will not honour the holy men with such a wonderful conduct and worthy of being respected by the whole world ?

परोपकारियों की प्रशंसा।

ॐ

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवांबुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥७१॥

जैसे वृक्ष फल लगने से नीचे की ओर झुक जाते हैं, वर्षा के जल से भरे हुए नवीन मेघ जमीन की ओर झूमने लगते हैं; वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते, बल्कि नम्र हो जाते हैं; इससे प्रत्यक्ष है कि परोपकारी मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा होता है।

सज्जन पुरुष सम्पत्तिवान होकर नम्रता धारण करते हैं; किन्तु दुष्ट लोग धन-सम्पत्ति पाकर इतरा उठते हैं*। जो लक्ष्मी सज्जनों को नम्र बना देती है, वही दुष्टों की दुष्टता को और भी बढ़ा देती है। दुष्ट लोग दौलत पाकर और मतवाले हो जाते हैं। ऐसों ही के सम्बन्ध में किसी उर्दू कवि ने कहा है—

> नशा दौलत का बद अतवार को जिस आन चढ़ा।
> सर पै शैतान के एक और शैतान चढ़ा॥

अनुभव-विहीन और तङ्ग-दिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ गया, तब मानो शैतान के सिर पर एक और शैतान चढ़ गया।

और भी कहा है—

> बन्धुः को नाम दुष्टानां, कुप्यते को न याचितः।
> को न दृप्यति वित्तेन, कुकृत्ये को न पण्डितः॥

---

* A vulgar mind is proud in prosperity and humble in adversity; a noble mind is humble in prosperity and proud in adversity —*Ruckert*

जैसे सफल वृक्ष और जलपूर्ण मेघ पृथ्वी की ओर झुक आते है, वैसे ह
सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर नम्र हो जाते हैं।

> दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः।
> सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः॥
> कं श्रीर्न दर्पयति कं न निहन्ति मृत्युः।
> कं स्वीकृता न विषयाः परितापयन्ति॥

दुर्जन का बन्धु कौन है? माँगने पर किसे क्रोध नहीं आता? धन से किसे अभिमान नहीं होता? कुकर्म करने में चतुर कौन नहीं है?

नीति का दोष किस दुष्ट मन्त्री को नहीं होता? रोग किस कुपथ्य सेवन करने वाले को दुःख नहीं देते? लक्ष्मी से किसे घमण्ड नहीं होता? मृत्यु किसको नष्ट नहीं करती? स्वीकृत विषय किसे सन्ताप नहीं देते?

धन-मद सभी को चढ़ता है, दौलत का नशा सभी को आता है; केवल उन सत्पुरुषों को धन का मद नहीं आता, जिन्होंने संसार का अनुभव प्राप्त किया है और जिन्होंने दुनिया की ऊँच-नीच देखी है।

धन और यौवन चञ्चल हैं।

★

कहा है.—

> अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।
> ऐश्वर्यं प्रियसंवासो मुह्येत्तत्र न पण्डितः॥
> कायः सन्निहितापायः सम्पदः पदमापदाम्।
> समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्॥

यौवन, रूप, जीवन, धन सञ्चय, ऐश्वर्य्य और मित्र के साथ रहना,—ये सभी अनित्य हैं; इसी वजह से ज्ञानवान् इनमें मोहित नहीं होते।

शरीर तो दुःखों से भरा है सम्पत्ति के साथ आपत्ति और संयोग के साथ वियोग है और सारी उत्पत्तिमान वस्तुएं नाशमान हैं*।

शङ्कराचार्य्य-कृत प्रश्नोत्तर माला में भी लिखा है:—

विद्युच्चलं किं धनयौवनायु-
र्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम् ॥

संसार में बिजली के समान चञ्चल क्या है? धन, यौवन और आयु। उत्तम दान कौनसा है? जो सुपात्र को दिया जाय।

उस्ताद ज़ौक़ भी कहते हैं:—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर चढ़ कर ॥

अपनी उन्नति पर मत इतरा; संसार में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये।

ज्ञानी नम्र होते हैं।

जिन्हें संसार की असारता और धन-यौवन की चञ्चलता का ज्ञान है, भला वे धन-सम्पत्ति पाकर इतरा सकते हैं? कमल निर्मल जल में पैदा होता है उसकी मधुरता

* All things are double, one against another. Good set against evil and life against death.—*Ecclus.*

स्त्रियों के मुख की मिठास से भी बढ़ी-चढ़ी होती है, सुगन्ध से देवता भी राज़ी होते हैं, स्वयं नारायण के हाथ में उसका वास है और कामदेव का तो वह सर्वस्व ही है,—इतने गुण होने पर भी, कमल तुच्छ भौंरे से मुहब्बत रखता है। इससे स्पष्ट है, कि बड़े लोग धन वैभव होने पर, अपने से छोटों से इतराते नहीं; क्यों कि सब तरह से सुखी होने पर भी, उन्हें मौत और मुसीबत का खौफ लगा रहता है*। इसलिये, ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ती है, वे नम्र होते और परोपकार करते हैं। उस्ताद ज़ौक़ ने भी कहा है,—

है बाग़े जहाँ में, तुझे गर हिम्मते आली।
कर गरदने तसलीम को, ख़म और ज़ियादा॥
लेते हैं समर शाख़, समर वर को झुकाकर।
झुकते हैं सखी, वक्त करम और ज़ियादा॥

अगर तू साहस रखता है, तो खूब नम्र बन। फलदार वृक्ष को देख! लोग फल तोड़ते समय उसे झुका लेते हैं और वह फल देता और झुकता है।

दोहा।

नम्र होत फल भार तरु, जल भर नम्र घटासु।
त्यों सम्पत् लहि सत्पुरुष, न्वैं सुभाव छटासु॥७१॥

---

* Even out of a cloudless heaven the flaming thunder-bolt may strike. Therefore in the days of joy have a fear of the spiteful neighbourhood of misfortune—*Schiller*.

71. The (branches of) trees hang down when they are full of fruits. the clouds lower (themselves in the sky) when they are full of fresh water (vapour) and good men become gentle-hearted in prosperity Such is the nature of those that do good to others.

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥७२॥

दयालु पुरुषों के कानों की शोभा शास्त्र सुनने से है, कुण्डल पहनने से नहीं; उनके हाथों की शोभा दान करने से है, कंगन पहनने से नहीं; देह की शोभा परोपकार करने से है, चन्दन लगाने से नहीं ।

इससे मिलता-जुलता कलाम उस्ताद जौक ने कहा है; पाठक ! उसका भी मजा चखिये—

दिल वह क्या, जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल ।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं ॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पाने की इच्छा न हो । वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शन की लालसा न हो !

कान वही हैं, जो शास्त्र सुनते हैं, हाथ वही है, जो दान करते हैं; देह वही है, जो पराये काम आती है; दिल वही है, जो परमात्मा के पाने की इच्छा रखता है और आँखे वही हैं, जो उसके दर्शनों की लालसा रखती है । अगर शरीर और

उसके अवयवों से यह काम नहीं होते, तो उनका होना न होना बराबर है। मनुष्य और पशुओं मे क्या फर्क है? मनुष्य और पशुओं मे यही भेद है, कि मनुष्य अपने शरीर से परोपकार और परमात्मा की भक्ति प्रभृति उत्तमोत्तम काय कर सकता है और पशु ये सब नहीं कर सकते। अगर शरीर पराये काम न आया तो उससे कोई लाभ नहीं, एक न एक दिन यह पञ्चतत्व में मिल ही जायगा। कहा है—

धनानि जीवितं चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरं त्यागो, विनाशे नियते सति॥

पण्डितों को चाहिये, कि धन और प्राण पराये लिए त्याग दें क्योंकि शरीर का नाश अवश्य होगा; इससे इसका साधुओं के लिए त्याग ही भला है।

गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं:—

तुलसी सन्तन्ते सुनें, सन्तत यहै विचार।
तन-धन चञ्चल अचल जग, युग युग पर उपकार॥

सारांश—शास्त्र सुनो; दान करो और परोपकार करो। इन कामों से सचमुच ही शरीर की खूबसूरती बढ़ती है; जेवर पहनने से खूबसूरती को बढ़ी हुई समझना मूर्खता है।

कुण्डलिया।

कङ्कन ते सोहत न कर, कुण्डल ते नहि कान।
चन्दन ते सोहत न तन, जान लेहु यह ज्ञान॥

जान लेहु यह जान, दान तें पाणि लसत है।
कथा श्रवण ते कान, परम शोभा सरसत है॥
परमारथ सों देह, दिपत चन्दन सों टंकन।
ये शुभ सुकृतिहि राख, पहरिये कुण्डल कंकन॥७२॥

72. The ears look beautiful by listening to Shastras and not by (wearing) ear rings, the hands by doing charity and not by (wearing) bangles and the body of gentlehearted men by philanthropic actions and not by sandalwood plastering.

पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥७३॥

सन्तों ने कहा है,—सुमित्र वही है, जो मित्र को बुरे कामों से रोकता है, अच्छे कामों में लगाता है, उसकी गुप्त बात को छिपाता है, उसके गुणों को प्रकट करता है, विपद् काल में उसका साथ नहीं छोड़ता और समय पड़े पर यथासामर्थ्य धन देता है।

सुमित्रों के लक्षण।

अपने मित्र को पाप-कर्मों से बचाना, हितकर्म में लगाना, उसकी गुप्त बात को छिपाना, उसके गुणों को प्रका-

शित करना, दुःख में उसका साथ न छोड़ना और समय पर आर्थिक सहायता करना—ये उत्तम मित्रों के लक्षण हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है:—

जे न मित्र-दुःख होहिं दुखारी।
तिन्हैं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज कर जाना।
मित्र को दुःख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई।
ते शठ हठ कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा।
गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शङ्क न धरही।
बल अनुमान सदा हित करहीं॥
विपति-काल कर शतगुण नेहा।
श्रुति कह सत्य मित्र गुण एहा॥
आगे कह मृदु वचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई।
अस कुमित्र परि हरे भलाई॥

आजकल कपटी यार बहुत हैं। निष्कपट या साफ़ तबियत के आदमी कोई विरले ही होते हैं। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है;—

देखे आइने बहुत बिन खाक, है नासाफ़ सब।
हैं कहाँ अहले सफा, अहले सफा कहने को हैं॥

मित्र को बुरे कामों से रोकना।

मित्र का पहला लक्षण है, मित्र को पापों या बुरे कामो से रोकना। आजकल बुरे कामो से रोकने वाले तो नजर नहीं आते, पर बुरे कामो में फसाने वाले या कुराह पर ले जाने वाले बहुत हैं। जिसके पास लोग धन देखते हैं, उसके चारो ओर छत्ते पर मक्खियो की तरह आ लगते हैं। उसकी खुशामद करके, उसकी हाँ मे हाँ मिलाकर, अपना स्वार्थ साधन करते हैं। भीतर से हितकारी और जाहिरा कड़वी कहने वाले कहीं नहीं दीखते। ऐसी बात तो वही कह सकता है, जिसके दिल में पाप न हो, जो शुद्ध हृदय और निष्कपट हो और जिसे अपना उल्लू सीधा न करना हो। किसी ने ठीक ही कहा है:—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

राजन्! सदा मीठी-मीठी बातें बनाने वाले लोग बहुत है, पर हितकारी और कड़वी कहने और सुनने वाले दुर्लभ है।

खुशामदी मित्र।

जिनको लोग आजकल मित्र समझते हैं, वे मित्र नहीं, पर नीच खुशामदी है। खुशामदियो की लच्छेदार बातो मे

कौन नहीं फँस जाता ? खुशामदियों ने लाखो के घर खाक मे मिला दिये—अनेको की घर-गृहस्थियो का सत्यानाश कर दिया। भोले-भाले नातजुर्बेकार लोग उनकी चिकनी-चुपड़ी बातो में फँस जाते और अपना सत्यानाश कर लेते हैं। अत्यन्त मीठी बातें बनाने वालो को धूर्त्त समझना चाहिये। कहा है—

असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरञ्च शीतलं भवति।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजनः॥

असती लज्जावती होती है, खारी पानी शीतल होता है। पाखण्डी ज्ञानी होता है और धूर्त्त प्रियवक्ता होता है।

धूर्त्त या दग़ाबाज़ो की बाते आरम्भ मे बड़ी प्यारी लगती हैं, परन्तु परिणाम उनका बुरा होता हैं, सज्जनों की बाते आरम्भ मे कड़वी मालूम होती हैं, पर परिणाम मे वे अच्छी प्रमाणित होती हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज अपने "भामिनी-विलास" मे कहते हैं—

अनवरत परोपकारव्यग्री भवदमलचेतसां महताम्।
आपात काटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव॥

जिन पुरुषो के अन्तःकरण शुद्ध होते है, जो निरन्तर परोपकार की चिन्ता मे लगे रहते हैं, उनके वचन आरम्भ मे कड़वी दवा की तरह कड़वे लगते है; पर शेष मे, जिस भाँति कड़वी दवा का फल अच्छा होता है, उसी तरह उनकी कड़वी बातो का फल भी मंगलकारी होता है।

अँग्रेज़ी में एक कहावत है—"खुशामदी हमारे सबसे बुरे शत्रु हैं।" यह कहावत अक्षर-अक्षर सच है। परमात्मा इन काल भुजङ्गों से बचाये। इन पर किसी ने खूब भजन बनाया है। सुनिये—

देश को किया ख़राब, खुशामदी लोगों ने ॥ टेक ॥
महाराज मंत्रियों से बोले, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
मन्त्री बोले, तभी तो इसका 'बेगुन' नाम धरा है ॥
दिया क्या खूब जवाब, खुशामदी लोगों ने ॥ १ ॥

महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' अति अच्छा है।
कहा तभी तो इसके सर पर, हरा मुकट रक्खा है ॥
पलट दी बात शिताब, खुशामदी लोगों ने ॥ २ ॥

स्वामी दिन को रात कहैं, तो यह तारे चमकादें।
स्वामी कहैं रात को दिन, तो यह सूरज उगवादें ॥
किया जाग्रत को ख्वाब, खुशामदी लोगों ने ॥ ३ ॥

स्वामी कहैं मद्य कैसा है? कहैं "सुरा" सुखकर है।
स्वामी पूछैं हिंसा जायज़? कहिदें जीव अमर है ॥
पढ़ी है ख़ास किताब, खुशामदी लोगों ने ॥ ४ ॥

इसीलिये सतसंगी सज्जन, विचर स्वतंत्र रहे हैं।
भला समझ कर सत्य वचन, ये राधेश्याम कहे हैं ॥
उठा ही दिया हिजाब, खुशामदी लोगों ने ॥ ५ ॥

मन की बात किसी से भी मत कहो।

हमने खूब देख लिया है, कि जिससे अपने मन की गुप्त बात कह कर मनुष्य अपने हृदय का बोझ हलका कर सके, ऐसा आदमी मिलना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। हमने स्वयं खूब धोखे खाये हैं; बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई हैं; इसी से हम अपने प्यारे पाठको को बार-बार सावधान करते हैं, कि अपने मन की गुप्त बात आजकल के मित्र तो क्या—अपने पिता और सगे भाई से भी न कहनी चाहिए। जो आज मित्र बना हुआ है, वह कल निश्चय ही किसी-न-किसी कारण से, आपका शत्रु हो जायगा और आपको कष्ट देगा। अपनी गुप्त बात दूसरे को देना और उसका गुलाम होना एक ही बात है। 'गुलिस्ताँ' में लिखा है और ठीक ही लिखा है—"वह भेद जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसी से भी न कहो; चाहे वह तुम्हारा परम विश्वासी ही क्यो न हो। अपनी गुप्त बात को जितनी अच्छी तरह आप स्वयं छिपा सकते है, दूसरा न छिपा सकेगा। अपनी बात किसी से कहने और उसे दूसरे से कहने की मनाही करने से एक दम चुप रहना भला है। ऐ भले आदमी! पानी को निकास पर ही रोक; जब वह नदी के रूप में बहने लगेगा, तब तू उसे रोक न सकेगा।" कितनी अच्छी और सची नसीहत है!

विश्वास ही आफतों का मूल है।

संसार में "विश्वास" ही आफतों की जड़ है। अगर किसी से मैत्री टूट जाय और शत्रुता हो जाय; इसके बाद वही

शत्रु मेल-जोल की बातें करे, तो उससे बातें करो, मिलो-जुलो, पर उसकी प्रत्येक बात को सन्देह की दृष्टि से देखो। मन मे समझो, कि शत्रु अपना कोई मतलब निकालना चाहता है अथवा अपना बल बढ़ाना चाहता है और इसी के लिये धोखा दे रहा है। मित्रों की सचाई पर भी विश्वास करना नादानी है; तब शत्रुओ की—खास कर उस शत्रु की, जो मेल-मिलाप से फिर मित्र बना लिया गया है, लल्लोचप्पो और मीठी बातों से क्या भली उम्मीद की जा सकती है ? कहते है—

"A reconciled friend is double enemy" जो शत्रु मेल-जोल से मित्र बना लिया जाता है, वह डबल शत्रु होता है; यानी वह साधारण शत्रु से कई दर्जे अधिक भयङ्कर होता है। शपथ पूर्वक सन्धि करके, इन्द्र ने वृत्रासुर को मार डाला था। विश्वास के सिवा, देवताओं का भी कोई शत्रु नहीं। विश्वास से ही इन्द्र ने दिति का गर्भ नाश कर दिया था। शास्त्रों मे लिखा है—

बृहस्पते प्राज्ञो न विश्वासे व्रजेन्नर.।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यंच सुखानि च ॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥
न वध्यन्ते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि बलोत्कटैः।
विश्वस्ताश्चाशुवध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः ॥

यदि बुद्धिमान अपनी आयु-वृद्धि और सुख की इच्छा करता हो, तो बृहस्पति का भी विश्वास न करे।

मनुष्य अविश्वासी का विश्वास न करे और विश्वासी का भी बहुत विश्वास न करे; क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट कर देता है।

किसी का भी विश्वास न करने वाले दुर्बल मनुष्य भी बलवानो के फन्दे से नही फँसते; किन्तु विश्वास करने वाले बलवान पुरुष भी दुर्बलो के फन्दे से फँस कर मारे जाते हैं।

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे ऽपि न विश्वसेत्
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥

कुमित्र का विश्वास तो किसी हालत मे भी न करना चाहिये; किन्तु सुमित्र का भी विश्वास न करना चाहिये; क्योकि कदाचित् मित्र रूठ जाय और सारी गुप्त बातो को प्रकाशित कर दे।

मित्र द्रोही को नरक।

मित्र के गुप्त भेदों को प्रकाशित करना, उसके साथ विश्वास-घात करना है। विश्वासघाती और मित्र द्रोहियो को शास्त्रो में बड़ी-बड़ी सजाये लिखी हैं। जैसे—

मित्र द्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

मित्र द्रोही, कृतघ्न--पराया ऐहसान न मानने वाले और विश्वास घात करने वाले.—जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, नरक मे पड़े रहेंगे।

फ्रेञ्च भाषा में भी एक कहावत है:--

("*The betrayer is the murderer*")

दगा से दुश्मन के हवाले करने वाला या भेद खोल देने-वाला हत्यारा होता है। खेद की बात है, इन बातो पर दुष्ट लोग ध्यान नहीं देते। वे तो अपने जरा से स्वार्थ के लिए घोर-से-घोर अधर्म करने को तैयार हो जाते हैं। उन्हें इस बात की जरा भी परवा नहीं कि विश्वासघातकता के समान और पाप नहीं है। शास्त्र में लिखा है:—

अपि ब्रह्मवधं कृत्वा प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति।
तदर्हेण विचीर्णेन कथञ्चित् न सुहृद्द्रुहः॥

मनुष्य ब्रह्महत्या करके उसके योग्य प्रायश्चित्त करने से शुद्ध हो जाता है, पर मित्र द्रोही शुद्ध नहीं होता।

मित्र के औगुण छिपाना।

अब रही मित्र के गुणो को प्रकाशित करने और अवगुणों को छिपाने की बात। यह भी आज कल अधिकांश मित्रो में नहीं पाई जाती। आजकल सामने मीठी-मीठी बात कहने वाले और पीठ पीछे घोर निन्दा करने वालो की अधिकता है। ऐसे मित्रो से सदा बचना चाहिये। चाणक्य ने कहा है:--

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखं॥

आँख की ओझल होने पर काम बिगाड़ने वाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनाने वाले मित्र को मुँह पर दूध और भीतर ज़हर भरे घड़े के समान त्याग देना चाहिये।

संसार में सभी "विषकुम्भंपयोमुखम्" नहीं होते। अगर ऐसा हो, तो प्रलय ही हो जाय। अब भी संसार में सज्जन पुरुष हैं। उन्हीं पर यह संसार ठहरा हुआ है। बात इतनी ही है, कि दुर्जन बहुत है और सज्जन कहीं-कहीं हैं। सज्जन अपने मित्र के अवगुणों को छिपाते हैं, इसमें तो कोई बड़ी बात नहीं। वे दुष्टों—अपने अपकारी शत्रुओं तक के औगुणो पर पर्दा डालते हैं। उनके औगुणों को उसी तरह छिपाते हैं, जिस तरह मकड़ी शून्य स्थानों को अपने जाले से दबा देती है।

मित्र को समय पर साहाय्य करना।

अब रही समय पर सहायता देने की बात। सहायता देना तो बड़ी दूर की बात है, आजकल के अधिकांश मित्र बिना धन दिये कोरे हाथों भी मित्र का संग नहीं देते। आप ही जब तक कुछ देते रहेंगे या देने का वादा करते रहेंगे, लोग आपके मित्र बने रहेंगे। जहाँ आपने अपने वादे के अनुसार कुछ न दिया या आपके धन-भण्डार में चूहे दण्ड पेलने लगे, कि मैत्री टूटी। वही मित्र जो आपकी देहली की धूल चाट जाते हैं,

आपके यहाँ दिन-रात पड़े रहते है, आपके लिये जान और सर्वस्व तक देने की डींग मारते हैं, आपके धनहीन होते ही आपको फौरन से पहले त्याग देंगे। उनकी मैत्री धन से है, आपसे नहीं। आजकल बिना उपकार प्रीति नहीं रहती। मेरा यह काम होगा तो यह दूंगा; इस वादे से देवता भी अभीष्ट फल देते है। आजकल के मित्रनामधारी भी ऐसे ही होते हैं। जहाँ भेंट-पूजा बन्द हुई, कि नाराज हुए। गाय के थनों में दूध सूख जाने से बछड़ा जिस तरह गाय को त्याग देता है; उसी तरह आजकल के मित्र भी धनागम की राह बन्द होते ही मित्र को त्याग देते है। अँगरेजी मे एक कहावत है—
"As long as the pot boils friendship lasts"
जब तक सैनकी मे भात, तब तक तेरा मेरा साथ।

खलों की मैत्री।

दुष्टों की मैत्री मिट्टी के घड़े के समान होती है, मिट्टी का घड़ा सहज ही में टूट जाता है और फिर नहीं जुड़ता; दुष्टों की मैत्री भी सहज में ही टूट जाती है और फिर नहीं जुड़ती। कहा है:—

अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नञ्च योषितः।
किञ्चित कालोपभोग्यानि यावनानि च धनानि च॥

बादलों की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन,—ये थोड़े समय तक ही भोग्य होते हैं।

विपद् में त्यागने वालों की निन्दा।

सम्पद् में साथ रहने वालों और विपद् मे साथ छोड़ कर भाग जाने वालों की विद्वानो ने कैसी निन्दा की है। देखिये "भामिनी-विलास" मे लिखा है—

> प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी
> पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयस्तानातनोरुत्सवान् ॥
> तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दृशां दैवात् कृशामञ्चति
> त्वं चेन्मुञ्चसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिक ॥

हे भौंरे! वसन्त के आते ही जब आम मे मञ्जरियाँ-ही-मञ्जरियाँ खिल उठीं, तब तो तूने उसके चारो ओर मञ्जु-मञ्जु गुञ्जार करते हुए खूब मजा लिया। अब दैववशात्, आम के वृक्ष के कृश हो जाने—पुष्पविहीन हो जाने पर, अगर तू उससे मुहब्बत न रक्खेगा, तो तुझसे बढ़ कर नीच कौन होगा?

सच्चा मित्र तो वही है, जो विना किसी स्वार्थ के प्रीति रक्खे, सुदिन और दुर्दिन मे समान रहे। सुदिन मे चाहे कम प्रीति दिखावे, पर दुर्दिन में तो खूब ही मुहब्बत-दिखावे, विपद्काल मे मित्र को सहायता दे और उसके कष्ट निवारणार्थ तन, मन और धन को लगा दे। सम्पद् मे मित्र बना रहे और आपद् में छोड़ भागे, वह मित्र—मित्र नहीं, वह तो धूर्त्त है। कहा है:—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत्॥

"आफत पड़ने पर जो मित्र है वही मित्र है; अच्छे दिनों में तो दुर्जन भी मित्र हो जाते हैं।"

मित्र बिना संसार में आनन्द नहीं।

मित्र बिना संसार मे आनन्द नहीं है। जॉनसन साहब कहते हैं—"Life has no pleasure nobler than that of a friendship" "जीवन मे मित्रता से बढ़ कर सुख नहीं है।" हमारे यहाँ भी कहा है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किं शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।
आपदाञ्च परित्राणं शोकसन्ताप भेषजम्॥

चन्दन, कपूर, बर्फ और शीतल पदार्थ से क्या है? वे सब मित्र के शरीर की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं।

अमृत के समान "मित्र" यह दोनो अक्षर किसने बनाये हैं, जो आपत्ति में रक्षा करने वाले और शोक-सन्ताप हरने वाले हैं।

संसार मित्रों के सम्बन्ध में ऐसी ही बातें कहता है; पर हमको मैत्री का आनन्द मालूम नहीं; हमने बहुत मित्र बनाये, पर अन्त में दुःख ही पाया। अभी जिस मित्र की इच्छा

पूरी न कर सकूँ, बस कुट्टी हो गई। अथवा मित्रों का काम निकला और वे लम्बे हुए। क्या ऐसों को मित्र कह सकते हैं? ऐसे मित्र तो शत्रुओं से भी बढ़कर हैं। ऐसों ही के सम्बन्ध में गोल्डस्मिथ ने अपने "हरमिट" में एडविन के मुँह से कहलवाया है —

"इसी भाँति सांसारिक मैत्री केवल एक कहानी है।
नाम मात्र से अधिक आजकल नहीं किसी ने जानी है॥
जब तक धन सम्पदा प्रतिष्ठा अथवा यश विख्याति।
तब तक सभी मित्र शुभचिन्तक निजकुल बान्धव ज्ञाति॥"

बस, बात बढ़ाने से क्या? हमें ठीक ऐसे ही मित्र अधिक मिले; इस कारण हमें मैत्री से अरुचि हो गई है। फिर भी, हमको यह कहना पड़ता है कि, मेल-जोल मे बड़े काम निकलते हैं, इसलिये मेल-जोल या मुलाकात हर किसी से पैदा करने मे हानि नहीं; पर मेल-जोल वालों को मित्र न समझ लेना चाहिये। जिसे मित्र बनाना हो, उसकी पहले खूब परीक्षा कर लेनी चाहिये। फिर; यदि वह मैत्री के योग्य हो, तो मित्र बनाना चाहिये। नीचे हम अपने अनुभव से मैत्री-सम्बन्धी चन्द हिदायतें लिखते हैं। आशा है, पाठक उनसे लाभान्वित होंगे —

दोस्ती पर चन्द हिदायतें।

☆

(१) मित्रता करो तो, उसके साथ करो, जो धन, बल, विद्या, बुद्धि और कुल मे तुम्हारे समान हो. मैत्री अपने

समान स्वभाव और व्यसन वालों की ही होती है; असमानों की मैत्री मे सुख नहीं होता। बड़ों की मैत्री तो निश्चय ही बुरी है।*

(२) मित्रता करो पर किसी का भी विश्वास करके अपना गुप्त भेद न कह दो। अगर ऐसा करोगे, तो जीवन-भर पछताओगे। आज का मित्र कल कट्टर शत्रु हो सकता है।

(३) जो मित्र तुम्हारे शत्रु से मेल रक्खे, उसे तुम अपना मित्र न समझो; क्योंकि शत्रु का मित्र शत्रु ही होता है।

(४) जिस मित्र से एक बार मैत्री टूट जाय, उसे फिर मित्र न बनाओ। ऐसा करना मृत्यु को न्यौता देना है।

(५) शत्रु कैसी ही मीठी बातें बनावे, पर उसे भूल कर भी मित्र न बनाओ।

(६) अगर तुम्हारा मित्र चुप रहे ,तो तुम उसे अपना मित्र मत समझो। चुप्पे मित्र से बड़बड़ाने वाला शत्रु भला।

(७) नादान या गुस्ताख अथवा मूर्खको मित्र मत बनाओ; ऐसे मित्र से समझदार और तमीजदार शत्रु भला।

(८) मित्रता रखना चाहो, तो मित्र की गलतियों पर कम ध्यान दो। मित्रता के मुकाबले मे धन को तुच्छ समझो।

(९) इटली वालों में कहावत है, कि एक घण्टे का अण्डा, एक वर्ष की शराब और तीस वर्ष का मित्र सर्वोत्तम होता है। मित्र और शराब पुराने ही अच्छे समझे जाते है।

---

* The cultivation of friendship with great is pleasant to the inexperienced but he who has experienced it dreads it.—Hor.

(१०) मित्रता निबाहनी हो तो भरसक जरूरत के समय मित्र को धन की सहायता दो, पर उसे वापस लेने की उम्मीद न करो।

(११) जो सबका मित्र हो, उसे अपना मित्र मत समझो। जिसका एक दिल और अनेक दोस्त होंगे, वह तुम से क्या किसी से भी दिलचस्पी नही रख सकता। इटली वालों मे एक कहावत है — 'जो हर किसी का मित्र है, वह किसी का भी मित्र नहीं है ।"

(१२) मित्र को कभी धोखा न दो; उसके गुप्त भेद प्रकट न करो, चाहे उससे आपकी मैत्री टूट ही क्यो न जाय।

(१३) खुशामदी को भूल कर भी मित्र न समझो; उसे अपना जानी दुश्मन समझो।

(१४) जहाँ तक बन पड़े, मित्र से आर्थिक सहायता न माँगो, हो सके तो दो भले ही, देने मे ऐब नहीं।

(१५) जो मित्र तुम्हारे कुछ कहते समय निगाह चुरा जाय, तुम्हारी बात को ध्यान से न सुने और जिस समय दूसरा कोई तुम्हारी प्रशंसा करता हो, उस समय मुँह फेरले, उसे भूल कर भी मित्र न समझो।

(१६) जो मित्र तुम्हारे शत्रु के कामो की तुम्हारे ही सामने तारीफ करे और तुम्हारे अच्छे कामो को भी घृणा की नजर से देखे उसको भी मित्र न समझो।

(१७) जो मित्र तुम्हारे शत्रु का पक्ष करे अथवा उससे भी मेल रखना चाहे, उसे अपना मित्र नहीं, शत्रु समझो। मित्रों के शरीर दो होते है, पर जान एक ही होती है। एक जान दो कालिब वाली दोस्ती ही सच्ची दोस्ती है। अगर यह बात न हो, तो दोस्ती नहीं ढोंग है।

(१८) मित्र के साथ भी लेन-देन साफ रक्खो। हिसाब की गड़बड परिणाम मे खराब होती है और मैत्री को तुड़ा देती है।

(१६) जो शीघ्र ही तुम्हे अपना मित्र या अभिन्न मित्र कह बैठे, उसकी मैत्री का भरोसा न करो। वह सदा न रहेगी।

(२०) जो मित्र तुम्हारी समय पर काम से सहायता करे, उसे मित्र समझो, किन्तु जो कोरी हमदर्दी दिखावे और बातें बनावे, उसे मित्र मत समझो।

(२१) जो मनुष्य तुम्हारे मुँह पर. किसी खास वजह से, तुम्हे खोटी-खरी भी सुना दे; पर तुम्हारे पीठ पीछे और लोगो मे तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, उसे अपना मित्र समझो। सामने तारीफ करे और पीछे से निन्दा करे; उसे अपना शत्रु समझो।

(२२) किसी को मित्र बनाने से पहले, जिसे मित्र बनाओ उसके गुण-दोषों की समालोचना करो, उसके गुण-दोषो का विचार करो, उसके आचरण और उसकी सङ्गति का विचार करो और उसके मिजाज और स्वभाव से वाकिफ होओ।

इसके बाद सोचो, यह हमारी मैत्री के योग्य है, कि नहीं इससे हमारा क्या लाभ होगा और हम से इस को क्या लाभ पहुँचेगा। अगर इतनी परीक्षाओ मे—कड़ी और सच्ची परीक्षाओ मे वह पास हो जावे, तो उसे मित्र बना लो; मित्र की असल परीक्षा तो मुसीबत मे ही होती है, फिर भी, उपरोक्त परीक्षा किये बिना तो किसी को भी मित्र न बनाओ।

(२३) वफादार नौकर सच्चा मित्र होता है, पर आप शीघ्र ही ऐसा समझ कर, अपने नौकर को अपना भेद मत दे दो; ऐसा करना आफत मोल लेना है। ड्राइडन महोदय कहते है—"He who trusts a secret to his servant makes his own man his master." जो अपने नौकर को अपना भेद देता है, वह अपने ही नौकर को अपना मालिक बनाता है।

(२४) हमारी सारी उम्र के तजुर्बे का निचोड़ तो यही है, कि आप न किसी दोस्त को बनावे और न दुश्मन। जो आपका काम करेंगे,वे बदले मे आपसे भी अपना काम बनाने की उम्मीद रक्खेगे। यदि समय पर आप उनका काम किसी वजह से न करेंगे या करने मे असमर्थ होगे तो वे आपके शत्रु हो जायँगे। उस समय आपके दिल मे बड़ी वेदना होगी। अगर किसी से दोस्ती न होगी, तो ऐसा अवसर न आयेगा और आप मनोवेदना से बचेंगे। जर्मन विद्वान् सोपनहर ने ठीक ही कहा है—"हमारा दूसरे लोगों के साथ जो सम्बन्ध होता है, उससे

प्रायः हमारे सभी शोक और दुःखों का जन्म होता है।"*
अर्थात् सम्बन्ध स्थापित करने से ही हमे दुःख भोग करने पड़ते हैं।

दोहा।

पाप निवारत हित करत, गुनगनि औगुन ढाँकि।
दुःख में राखत देत कछु, सन्मित्रन ये आँकि ॥७३॥

73 The following are said to be the qualities of a good friend by holy men He prevents his friend from evil-doing, makes him do useful things, conceals his secrets, proclaims his good points, does not leave him in time of distress and helps him with money when necessary.

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति।
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ॥
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति।
सन्तः स्वयं पर हितेसुकृतभियोगाः ॥७४॥

जिस तरह सूर्य, बिना कहे, आप ही कमलों को खिलाता है, चन्द्रमा बिना कहे कुमुद-समूह को प्रफुल्लित करता है; मेघ भी बिना याचना किये जल बरसाता है, उसी तरह सन्त लोग, बिना याचना किये ही पराई भलाई का आप-से-आप उद्योग करते हैं ॥७४॥

भामिनी-विलास में लिखा है:—

'सत्पुरुषः खलु हिताचरणैर मन्दमा-
नन्दयत्यखिल लोकमनुक्त एष।

---

* Almost all our sorrows spring out of our relations with other people—*Schopenhauer*.

अप्रार्थितः कथय केनकरैरुदारैरिन्दु-
विकाशयति कैरविणीकुलानि ॥

सत्पुरुष, बिना कहे ही अपने हितकारी आचरण से सारे संसार को आनन्दित करते हैं। कहिये, चन्द्रमा की किस ने आराधना की है, जिससे वह अपनी उदार किरणों से कुमुदिनी-कुल को खिलाता है? अर्थात् परोपकार करना सज्जनों का स्वाभाविक गुण है। उनसे कहने-सुनने और अनुनय-विनय करने की दरकार नहीं।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

विना कहेहु सत्पुरुष, परकी पूरें आश।
कौन कहत है सूर कों, घर घर करत प्रकाश॥
अति उदारता बडन की, कहँलों बरने कोय।
चातक जाँचे तनिक घन, बरस भरै घन तोय॥

दोहा।

कुमुदिनी प्रफुलित करत शशि, कमल विकासत भानु।
बिन माँगे घन देत जल, त्योंही सन्त सुजान ॥७४॥

74 The sun opens (the buds of) a lotus flower (without any request being made by the latter), the moon causes the opening of a Kumuda (another species of lotus) flower (unasked) and a cloud gives (rain water without being requested (to do so). (This proves that) the good are anxious to benefit others of their own accord

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये ।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ॥
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ।
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥७५॥

जो लोग अपने स्वार्थ का ख़याल न करके पराया भला करते हैं, वे सचमुच ही सत्पुरुष हैं, जो अपना स्वार्थ न बिगड़ने देकर पराया भला करते हैं; यानी अपना और पराया दोनों का हित साधन करते हैं, वे साधारण पुरुष हैं, जो अपने स्वार्थ के लिये पराया काम बिगाड़ते हैं, वे मनुष्यरूप में राक्षस हैं और जो वृथा ही पराये हानि करते हैं, उन्हें क्या कहें सो हमारी समझ में नहीं आता ।

जिसका जन्म-स्वभाव जैसा है, वैसा ही रहेगा । सत्पुरुषों का स्वभाव सत्पुरुषों के ही योग्य रहेगा और नीचों का नीचों के योग्य । नीच पराया काम बिगाड़ना ही जानते हैं, बनाना नहीं । कहा है—

घातयितुमेव नीचः परकार्य्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् ।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोर्वृक्षं न चोन्नमितुम् ॥

नीच पराये काम को बिगाड़ना जानता है, पर बनाना नहीं जानता; वायु वृक्ष को उखाड़ सकता है, पर जमा नहीं सकता । चूहा अन्न की पिटारी को गिरा सकता है, पर उठा कर

नहीं रख सकता। बिल्ली अगर दूध को पी नहीं सकती, तो लुढ़का ही देती है। नीचो का स्वभाव ऐसा ही होता है।

सत्पुरुषो के स्वभाव के सम्बन्ध मे किसी कवि ने कहा है—

उत्तम पर-कारज करैं, अपनो काज बिसार।

पूरे अन्न जहान को, ता पति भिक्षाधार ॥

उत्तम पुरुष अपना काम बिसार कर, पराया काम करते हैं। अन्नपूर्णा के पति—शिवजी भिक्षा माँगते हैं, किन्तु वह सारे संसार को अन्न देकर पालन करती है। सत्पुरुष परोपकार मे ही अपनी शोभा समझते हैं।

शिक्षा—जो अपना काम सिद्ध नहीं करते, पर पराया काम बिगाड़ते है, वे नीचो के भी सरदार हैं और जो अपना काम बनाने के लिये पराया काम बिगाड़ते है, वे नीच हैं। आप इन दोनों की राह पर भूल कर भी न चलें। अगर हो सके, तो अपने स्वार्थ का ख़याल भुलाकर पराया भला करें; आपका इस लोक और परलोक दोनो मे भला होगा; आपका नाम सत्पुरुषों की लिस्ट मे लिखा जायगा, स्वर्ग और मोक्ष का द्वार आपको खुला रहेगा। अगर इतनी हिम्मत न हो, तो आप अपना भी काम बनावें और पराया भी, यह तरीक़ा भी बुरा नहीं।

छप्पय।

उत्तम नर पर-अरथ करत, स्वारथ को त्यागत।

मध्यम पर को अर्थ करत, स्वारथ अनुरागत ॥

दुष्ट जीव निज काज करत, पर काज बिगारत ।
वे नहिं जाने जात, रूप चौथो जे धारत ॥
जिनको न होत निज काज कछु, औरन के स्वारथ हरत ।
तिनको न दरश चश देहु प्रभु, बात सुनत ही चित डरत ॥७५॥

75. On one side are those good men how do good to others even at the sacrifice of their own objects. The ordinary apply their energies for the sake of others, if the objects of the latter are not contrary to theirs. Those are the devils of men who destroy other people's objects for the sake of their own. But we do not know (what to say of)those who destroy the gains of others without any cause.

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वदीशी ॥७६॥

(दूध में जल के मिलते ही दूध ने अपने सारे गुण जल को दे दिये । इसी से दूध को जलते देखकर, जल भी अपना शरीर आग में होमने लगा । फिर दूध ने अपने मित्र की इस आफत को देखकर, स्वयं आग में गिरना चाहा; परन्तु जल के छींटे पड़ते ही दूध ने समझा कि मित्र आया, इसलिये वह शान्त हो गया । सत्पुरुषों की मैत्री दूध और जल की सी ही होती है ।)

शिक्षा—मैत्री करो तो दूध पानी की-सी करो।

कुण्डलिया।

पानी पयसों मिलत ही, जान्यौ अपनौ मित्त।
आप भयौ फीकौ बहै, जल कौं कियौ सुचित्त॥
जलकौं कियौ सुचित्त, तब पयकौं जब जानी।
तब अपनौ तन बारि, बारि मन प्रीतहि आनी॥
उछल चल्यौ पय तबे,शान्ति जल छिरकत ठानी।
सत्पुरुषों की प्रीति रीति, ज्यों पय और पानी॥७६॥

76 When water was mixed with (became a a friend of) milk the latter from the start shared all its good qualities with it As soon as the former saw that (its friend) the milk was going to be heated, it offered its own self to fire (i e. it began to evaporate). Seeing the distress (of its friend, (water), the milk made up its mind to throw itself into the fire, but afterwards only calmed down when (its friend) water was sprinkled on (re-united to) it. Such is the friendship of the good.

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां गणाः शेरते॥
इतोऽपि बड़वानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः॥७७॥

समुद्र में एक ओर शेषशायी विष्णु सो रहे हैं, दूसरी ओर उनके शत्रु दानवों का परिवार पड़ा है; एक ओर इन्द्र के वज्र से

भयभान हुए शरणार्थी मैनाक प्रभृति पर्वत पड़े हैं और एक तरफ प्रलयाग्नि समेत बड़वानल मौजूद है । अहो ! समुद्र का शरीर कैसा बलवान् और विशाल तथा भार सहने वाला है ! उसकी सहन-शीलता और उदारता की बलिहारी है !

सारांश—सत्पुरुष अपनी शरण मे आनेवालो की सदा रक्षा करते हैं । वे आप कष्ट सहते हैं, पर अपने शरणार्थियो को कष्ट नही होने देते । यह बड़ो की ही सामर्थ्य है और कौन ऐसा कर सकता है ?

कवियों ने कहा है—

भले बुरे छोटे बड़े, रहे बड़नि पै आय ।
मकर असुर सुर गिरि अनल, दधि मथि सकल बसाय ॥
बड़े भार लै निरवहैं, तजत न खेद विचार ।
सेस धरा धरि धर धरै, अबलौं देत न डारि ॥
सन्त कष्ट सह आपही, सुखि राखैं जु समीप ।
आप जरैं तह औरको, करै उजेरो दीप ॥

छप्पय ।

इत सोवत श्रीकृष्ण, उतै बैरी दानवगन ।
इतको गिरवरवृन्द, शरण सोवत निर्भय मन ॥
इतको बाडव अग्नि, रहत जलमाहि निरन्तर ।
मच्छ-कच्छ इत्यादि, रहत सुखसो सब जलचर ॥
अति ही अगाध ऊँचो अधिक, सहनशीलताकी अवधि ।
विस्तार अमित कहिये कहा, अद्भुत गति राखत उदधि ॥७७॥

77. In one place (in the Ocean) the God Vishnu enjoys. His sleep, in another there lives the family of His enemies (the Rakshasas). On the one hand, the groups of mountains lie anxious for shelter, and on the other there is the sea-fire along with all the sea-currents. How wonderfully powerful and capable of sustaining all these burdens is the Ocean !

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः ।
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥
मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणा-
न्कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥७८॥

तृष्णा को त्याग, क्षमा को सेवन कर, मद को छोड़, पापों से प्रीति न कर, सच बोल, साधुओं की रीति पर चल, पण्डितों की सेवा कर, माननीयों का मान कर, शत्रुओं को भी प्रसन्न रख, अपने गुणों की प्रसिद्धि कर, अपनी कीर्ति का पालन कर और दीन-दुखियों पर दया रख—क्यों कि ये सब सत्पुरुषों के लक्षण हैं ।

तृष्णा पिशाचिनी ।

संसार में आशा और तृष्णा के समान दुःखदाई और मनुष्य को बन्धन में बाँधकर इहलोक और परलोक बिगाड़ने वाले

और कुछ भी नहीं हैं। जिसको धन-तृष्णा नहीं, वही सच्चा सुखी है। जिसे धन से नफरत है, वह देवों का देव है।*

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है:—

बद्धो हि को विषयानुरागी।
का, वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः॥
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेह-
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपदं किमस्ति॥

बन्धन में कौन है? विषयी। विमुक्ति क्या है? विषयों का त्याग। घोर नरक क्या है? अपनी देह। स्वर्ग क्या है? तृष्णा का नाश।

मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। बुढ़ापे में यह और भी तेज हो जाती है और मरणकाल तक मनुष्य को अपने फेर में फँसाये रखकर उसका सर्वनाश कर देती है। कहा है—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्तिजीर्य्यतः।
जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायति॥
इच्छति शती सहस्र सहस्री लक्षमीहते।
लक्षाधिपस्तथा राज्य राज्यस्थः स्वर्गमीहते॥

जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दाँत

* Excellence and greatness of soul ars most conspicuously displayed in contempt of riches

जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा जवान होती जाती है।

सौ वाला हजार की, हजार वाला लाख की, लाख वाला राज्य की और राज्याधिपति स्वर्ग की इच्छा करता है।

तृष्णा निर्धनों को तो अपने चंगुल मे फँसाये ही रहती है; पर धनियो को भी नहीं छोड़ती। धनियों को गरीबो से जियादा तृष्णा होती है। वह सदा निन्न्यानवे के फेर मे पडे रहते हैं। उनकी तृष्णा पूरी नहीं होती, कि काल आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। तृष्णा के फेर में पड़ कर, मनुष्य अपने पैदा करने वाले को भी भूल जाता है। अन्त समय बहुत-कुछ तड़फता और पछताता है। चाहता है, कि यदि और कुछ दिन भी जीऊँ, तो तृष्णा को त्याग कर भगवद्भजन करूँ; पर उस समय तो एक क्षण भी उसे मिल नहीं सकता। इसलिये बचपन और जवानी मे ही, मनुष्य को तृष्णा का छेदन कर, परोपकार और ईश्वर-भजन से अपना जीवन सफल करना चाहिये। तृष्णा का मार "संतोष" है। जिसे सन्तोष है, उससे तृष्णा डरती और कोसो दूर भागती है। तृष्णा मे दुःख-ही-दुःख है और सन्तोष मे सुख-ही सुख है। इसी से कहा है—

सब सुख है सन्तोष मेँ, धरिये मन सन्तोष।
नेक न दुर्बल होत है, सर्प पवन के पोष॥

और भी कहा है—

> सन्तोषः परमं लाभः, सन्तोषः परमं धनम् ।
> सन्तोषः परमंचायुः, सन्तोषः परमं सुखम् ॥

तृष्णादास सेठ ।

एक तृष्णादास सेठ की कहानी हमने कहीं पढ़ी है, उसे पाठकों के उपकारार्थ यहाँ लिखते हैं:—

तृष्णादास सेठ सदा निन्न्यानवे के फेर में लगे रहते थे। करोड़ो रुपये होने पर भी, आपकी तृष्णा शान्त न होती थी। आप सदा सोचते थे, अब अरब रुपये होने मे इतने करोड़ घटते हैं। अमुक काम में नफा होने से, मै अरबपति हो जाऊँगा। एक दिन उनको एक विद्वान् ने समझाया—"सेठ जी ! भगवान् ने बहुत दिया है, सन्तोष करो; बिना सन्तोष सुख न होगा। ख्वाहिशो का बढ़ाना ही मनुष्य के बन्धन और दुःखो का मूल है। महात्मा सुकरात ने कहा है—' The fewer our wants, the nearer we resemble the gods." मनुष्य ज्यो-ज्यो अपनी ख्वाहिशो को कम करता है वह देवताओं के समकक्ष होता जाता है। अँगरेजी मे भी एक कहावत है—Contentment is better than wealth, यानी "धन स सन्तोष अच्छा है।" पण्डितजी का इतना सब समझाना-बुझाना अरण्यरोदन हुआ; सेठजी कुछ न समझे।

एक रोज सेठजी अपनी गद्दी में बैठे हुक्का पी रहे थे; इसी समय खबर मिली, कि आपके पोता हुआ है। आपने उसी समय नौबत-नक्कारे बजने का हुक्म दिया। नौकर-चाकरों को इनाम बँटने लगा। इतने ही मे, फिर कोई खबर लेकर आया, कि बच्चा और जच्चा दोनों परमधाम को सिधार गये। सुनते ही सेठजी करम ठोकने लगे और ऐसे शोक-सागर में डूबे, कि तनो-बदन का होश न रहा। इसी बीच, किसी ने यकायक खबर दी, कि आपने जो विलायत की लाटरी में चिट्ठी डाली थी, वह चिट्ठी आप ही के नाम उठी है। सुनते ही सेठजी खुश हो गये, सारा रज-गम और दुःख भूल गये; ताजा हुक्का भरने का हुक्म दिया गया। इतने मे एक आदमी ने आकर कहा—"सेठजी आपका जहाज भूमध्यसागर मे, विकट तूफान आने से, डूब गया।" सुनते ही सेठजी को काठ मार गया। हुक्का धरा-का-धरा ही रह गया। अब आपको होश हुआ। आप मन-ही-मन कहने लगे,—"उस दिन जो पण्डितजी ने कहा था कि ख्वाहिशों को बढ़ाकर उनके पूरा करने के लिये तृष्णा की तरंगों मे पड़ना दुःख का मूल है; वह बात सोलह आने ठीक है।" आपने उसी दिन से तृष्णा-पिशाचनी को त्याग, सन्तोष से मैत्री करली। सन्तोष से मैत्री करते ही, उन्हें हर ओर सुख-ही-सुख दीखने लगा। न जाने वे दुःख और शोक कहाँ विलाय गये*

* A storm at sea, a vine-wasting hail tempest, a disappointing farm, cause no anxiety to him who is content with enough — Hor

क्षमा प्रभृति पर हम पहले लिख आये है, इसलिये दुबारा लिखना व्यर्थ है।

शत्रु के प्रति दया-प्रकाश।

मनुष्य को चाहिये प्राणिमात्र पर दया रक्खे, सबको दान, मान-सम्मान और मीठे वचनों से खुश रक्खे; यहाँ तक कि शत्रुओ को भी प्रसन्न रक्खे।* जो अपने शत्रुओ पर भी दया करते है, शत्रुओ से भी अपना चित्त शुद्ध रखते हैं; शत्रुओ की भी कल्याण-कामना करते हैं, वे वास्तव मे महापुरुष है।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥

जो अपने उपकारियों मे साधु है, उसकी साधुता मे क्या गुण है? जो अपने अपकारियो पर कृपा करे, महात्मा उसे ही साधु कहते हैं।

सचमुच ही यह बड़ा कठिन काम है। कठिन है जिनके लिये कठिन है; महापुरुषों के लिये कठिन नही। उनका तो स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे अपनी बुराई करने वालो के साथ भी भलाई करते हैं। "भामिनी-विलास" मे लिखा है—

अयि मलयज महिमाऽय,
कस्य गिरामस्तु विषयस्ते।

---

* Regard for the wretched is a duty, and deserving of praise even in an enemy.—Ovid.

उद्‌गिरतो यद्‌गरलं फणिनः
पुष्णासि परिमलोद्‌गारैः ॥

हे चन्दन ! तेरी महिमा का बखान कौन कर सकता है ? जो सर्प तेरे ऊपर जहर उगलते है, उन्ही को तू अपनी सुगन्ध से पोषता है। तात्पर्य्य यह, कि सज्जन अपने अपकारी के अपकार को भी उपकार ही समझते और उसका भला करते हैं।

अपनी हानि करने वालो, अपनी निन्दा करने वालो और अपने संग शत्रुभाव रखने वालो पर भी जो मिहरबानी करते है, उनकी शुभकामना करते हैं,—उन सत्पुरुषो से कमलापति नारायण प्रसन्न होकर उनकी इच्छा पूरी करते हैं। ध्रुव के अपनी विमाता की कल्याण-कामना करते ही, भगवान् ने उन्हे दर्शन दिये। जब मनुष्य इस दर्जे पर पहुँच जाता है, तब वह परमात्मा के बहुत नजदीक हो जाता है। उस समय उसे कोई अभाव और दुःख नहीं रहता। राजर्षि भर्तृहरि जी ने यहाँ जो १२ उपदेश दिये हैं, वे मनुष्यमात्र को अपने हृदयपट पर लिख लेने और सदा याद रखने चाहिये; साथ ही इन पर अमल करने का भी अभ्यास करना चाहिये। मनुष्य के कल्याण की इनसे उत्तम और नसीहत हो नहीं सकती। यह उत्तम से-उत्तम उपदेशों का मक्खन है। आप इन उपदेशो को सुरपति के बगीचे का कल्पवृक्ष समझें। इन पर अमल करने वालों को संसार की सुख-सम्पत्ति, सारी पृथ्वी का राज्य, और स्वर्ग तो क्या चीज है, यह परमपद भी मिल

सकता है, जिसके लिये देवता भी तरसते हैं। दुःख और क्लेश, आपद और मुसीबत तो इन उपदेशों पर चलने वाले के नजदीक, स्वप्न में भी आ नहीं सकती। मनुष्यो! संसार के और झंझटो में न पड़, इन पर चलो। दुनियवी थोथे कामो मे पचना-मरना, वृथा आयु खोना है।

छप्पय।

तृष्णा क तजि देहु, क्षमा को भजन करहु नित।
दया हिये में राखि, पाप सों दूर राखि चित॥
सत्य बचन मुख बोल, धर्म-पदवी जिय धारहु।
सतपुरुषन की सेव, नम्रता अति विस्तारहु॥
सब गुण सु आपने गुप्त रखि, कीरति परपालन करहु।
करि याद दुखित नर देख के, सन्त रीति यह अनुसरहु॥७८॥

78. Abstain from avarice, cultivate gentle habits, give up vanity, do not cherish a desire for sin, speak the truth, follow the path of good men, serve the learned, honour those who are worthy of respect even tolerate thy enemies, display thy good qualities, take care of thy reputation and sympathise with the afflicted. These are the attributes of good men.

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः॥
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसंतःसन्ति सन्तः कियन्तः॥७९॥

जिनके तन, मन और वाणी में पुण्य रूपी अमृत भरा है, जो अपने उपकारों से तीनों लोकों को तृप्त करते हैं और जो दूसरे के परमाणु-समान गुणों को पर्वत के समान बढ़ा कर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं—ऐसे सत्पुरुष इस जगत् मे विरले ही हैं ।

नीच लोग कहते कुछ है, करते कुछ है और मन मे कुछ होता है। उनका मन, उनकी वाणी और उनकी क्रिया का एक रूप नही होता। परन्तु सत्पुरुषो के जो मन मे होता है, वही उनकी जबान से निकलता है और जो कुछ जबान से निकलता है उसे ही वह करते हैं। सत्पुरुष अपने तन, मन और वचन से सदा परोपकार मे लगे रहते है। वे अपना जीवन ही परोपकार के लिये समझते है। नीच लोग पराये बड़े से-बड़े गुण को छोटा कर देते है, उसमे अनेक दोष लगा देते है, पर सज्जन लोग पराये छोटे-से-छोटे गुण को भी पहाड़ का रूप देकर, अपने मन मे बहुत ही खुश होते हैं। क्या यह कठिन, अति कठिन तपस्या नहीं है? क्या ऐसे सत्पुरुष इस जगत् में दिखाई देते है? धरती-माता ऐसे सत्पुरुषो से नितान्त शून्य तो नही है, पर ऐसे पुरुषरत्न कही-कहीं ही होते हैं। पृथ्वी के जिस खण्ड की ऐसे महा-पुरुष शोभा वृद्धि करते हैं, वह भूखण्ड परम पवित्र तीर्थ और ऐसे सज्जन मनुष्य मात्र के वन्दनीय देवता होते है।

कहा है—

बदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः ।
करणं परोपकरणं येषां येषां न ते वन्द्याः ॥

जो सदा प्रसन्न रहते है, जिनके हृदय में दया है, जबान मे अमृत है और जो परोपकार परायण हैं, वे किसके वन्दनीय नही हैं ?

शंकराचार्य्य कृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है—

विषाद्विषं किं ? विषयास्समस्ता ।
दुःखी सदा को ? विषयानुरागी ।।
धन्योऽस्ति को ? यस्तु परोपकारी ।
कः पूजनीयः ? शिवतत्वनिष्ठः ॥

सबसे बड़ा विषय कौन सा है ? सभी विषय । सदा दुःखी कौन है ? विषयानुरागी । धन्य कौन है ? जो परोपकारी है। पूजनीय कौन है ? जो शिवतत्वनिष्ठ है ।

दोहा ।

अमृत भरे तन मन वचन, निशिदिन जग-उपकार ।
परगुण मानत मेरु-सम, विरले जन संसार । ७९॥

79. There are certain holy men who are full of the nectar of virtuous deeds in mind, speech and body, who please the three Bhuvanas (worlds) with series of philanthropic actions and who enlarge their hearts by always magnifying the particles of other people's good qualities into mountains.

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा।
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण।
कंकोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥८०॥

उस सोने के सुमेरु पर्वत और चाँदी के कैलाश पर्वत से संसार को क्या फायदा, जिन पर पैदा होने वाले वृक्ष जैसे-के-तैसे ही बने रहते हैं? हम तो मलयाचल को ही अच्छा समझते हैं जिसके संसर्ग से कंकोल, नीम और कुटज प्रभृति के कड़वे वृक्ष भी चन्दन के वृक्ष हो जाते हैं।

खुलासा—सुमेरु और कैलाश पर पैदा होने वाले वृक्ष उनके संसर्ग से सोना चाँदी के नहीं हो जाते, इसलिये उनसे संसार को कोई लाभ नहीं। उनसे मलय पर्वत अच्छा, जिसके संसर्ग से वहाँ पैदा होने वाले, नीम और कुटज प्रभृति के वृक्ष, कड़वे होने-पर भी चन्दन के वृक्ष हो जाते है। बड़ो के ससर्ग से ऐसा ही होता है। कहा है—

महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥

महाजनो का संसर्ग किस की उन्नति नहीं करता? कमल के पत्ते पर रक्खा हुआ जल मोती की सी कान्ति धारण करता है।

जिससे किसी का भला न हो, उसका होना न होना एकसाँ है। अपने लिये तो सभी जीते हैं जो पराये लिये

जीता है, जिसमें दूसरों को फ़ायदा पहुँचता है, उसी का जीना सफल है। जो धनवान् होकर, दीन-दुखियों का कष्ट निवारण नहीं करता, उसके धनी होने से क्या लाभ? एक उपालम्भ (उलाहना) और भी सुनिये;—

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णववदनं प्रयाति तृषतानाम् ॥

हे सागर! तेरे अमूल्य रत्नों और मेघ के समान शरीर से क्या लाभ, जो तेरा जल प्यास से घबराये हुए प्राणियों के मुँह भी नहीं पड़ता? अर्थात् अगर किसी सम्पत्तिवान से किसी प्राणी का उपकार न हुआ, तो उसके सम्पत्तिशाली होने से दुनिया को क्या?

जिससे संसार का उपकार न हो, वह बड़ा होने पर भी किस काम का? जिससे दुखियाओं का दुःख दूर हो, वह छोटा भी अच्छा। "जेठ की धूप से जलते हुए, प्यास से घबराये हुए बटोही, मेरे सूख जाने पर किसके पास जायँगे" ऐसी बात कहने-वाला, राह किनारे का थोड़ी सम्पदा वाला सरोवर धन्य है! अखण्ड जल वाले समुद्र को लाख-लाख धिक्कार है, जिससे प्यासों की प्यास भी नहीं बुझती!

लीजिये, उस्ताद जौक का भी एक उपालम्भ सुनिये—

सेराब न हो जिससे, कोई तिशनये मकसूद।
ऐ जौक! जो वह आबेबका भी है, तो क्या है॥

जिससे किसी प्यासे की प्यास न बुझे, वह अमृत भी हो तो किस काम का? उससे दूसरों को क्या लाभ?

सोरठा।

एरे निलज सुमेर, तो साथी पाथर रहे।
मलयागिर कहँ हेर, कुटज नीम चन्दन किये ॥८०॥

80. What is the use of the golden (Meru) mountain or the silver (Kailas) mountain on which the growing trees remain only (simple) trees? We value (above all) the Malaya mountain on which even the Kankola, Nimba and Kantaja trees (having a bitter taste) are transformed into sandal trees.

धैर्य-प्रशंसा।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः
॥ ८१ ॥

समुद्र मथते समय, देवता नाना प्रकार के अमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट न हुए—उन्होंने समुद्र मथना न छोड़ा। भयानक विष से भयभीत होकर भी, उन्होंने अपना उद्योग न त्यागा। जब तक अमृत न निकल आया, उन्होंने विश्राम न किया—

अविरत परिश्रम करते ही रहे। इससे यह सिद्ध होता है, कि वीर पुरुष अपने निश्चित अर्थ—इच्छित पदार्थ—को पाये बिना, बीच में घबरा कर, अपना काम छोड़ नहीं बैठते।

निर्बुद्धि पुरुष प्रथम तो विघ्न-भय से किसी काम को आरम्भ ही नहीं करते; यदि कर भी देते है, तो बीच में विघ्न-बाधा उपस्थित होते ही काम को छोड बैठते हैं, पर बुद्धिमान हजार-हजार विघ्न-बाधा उपस्थित होने पर भी, काम को बीच मे नहीं छोड़ते। प्राचीन काल मे, महात्मा ध्रुव ने परमात्मा के दर्शनों की इच्छा से तपश्चर्य्या आरम्भ की। वन मे उन्हे बहुत से हिंसक पशुओ ने डराया तथा और भी विघ्न उपस्थित हुए, पर वे अपने आसन से जरा भी न डिगे—जब परमात्मा के दर्शन हो गये, तभी उन्होंने अपना काम छोड़ा। ऐसा ही सूर्यकुलतिलक महाराज भगीरथ के साथ हुआ। उन्हे भी इन्द्र ने बहुत डराया धमकाया पर वे न डरे; अपना काम करते ही रहे। जब उन्हे गङ्गा के मर्त्यलोक में आने का वर मिल गया, तभी वे तपस्या से विरत हुए। कहा है—

महत्वमेतन्महतां नयालङ्कारधारिणाम्।
न मुञ्चन्ति यदारब्ध कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये॥

नीति का भूषण धारण करने वाले महात्माओं का यही महत्त्व है, कि वे घोर विपद् पड़ने पर भी, अपने आरम्भ किये काम को छोड़ नही बैठते।
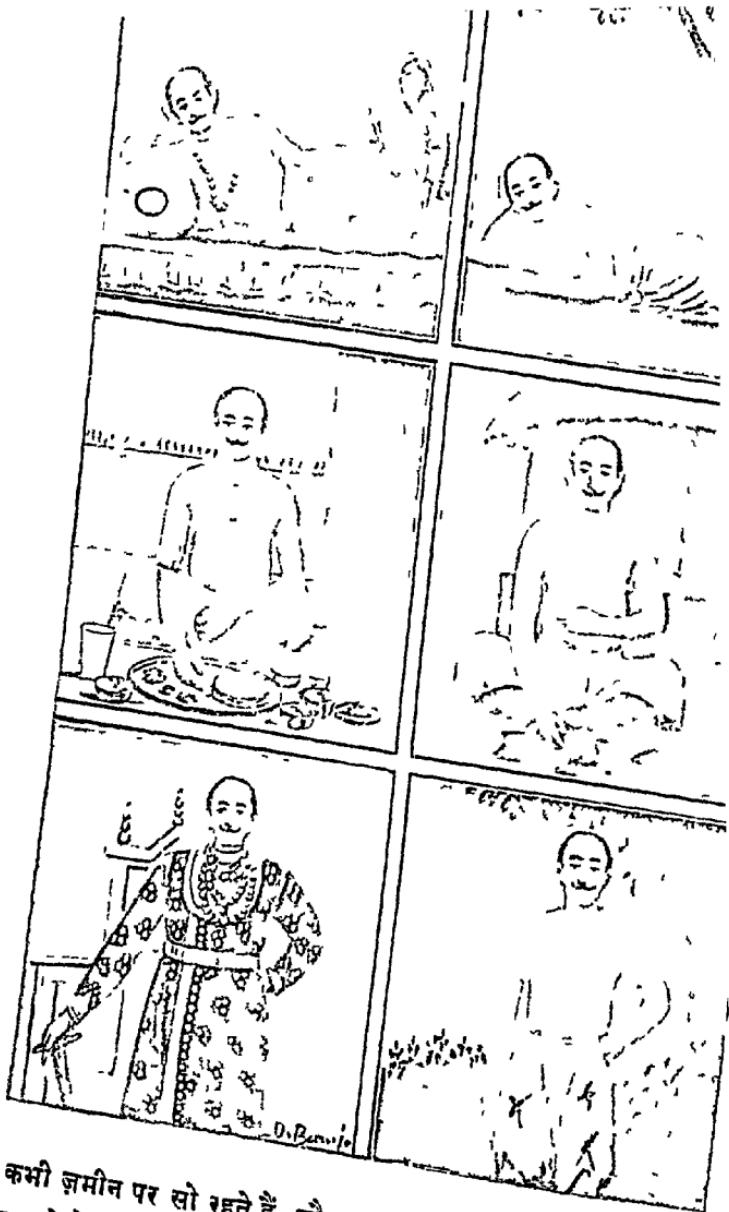
कभी ज़मीन पर सो रहते हैं, और कभी उत्तम पलङ्ग पर; कभी शाक-पात खाकर रहते हैं, और कभी दाल-भात खाकर; कभी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं। मनस्वी और कार्य्यार्थी पुरुष सुख और दुःख दोनों को समान समझते हैं।

छप्पय ।

महा अमोलक रत्न, नाहि रीझे सुर तिनसों ।
महा हलाहल जान, प्राण डरपत नहिं जिनसों ॥
रहत चित्त की वृत्ति, एक अमृत सों अति ही ।
तैसे ही नर धीर, काज निश्चे कर मति ही ॥
सब दोष, रहित अरु गुण-सहित, ऐसे कारन मन धरत ।
तिहि कों समर्थ अमृत लहत, कोऊ सुख को नहिं करत॥८१॥

81. (While churning the Ocean) the gods were not satisfied with (finding) the precious gems (alone) not were they frightened by the dreadful Poison. They did not cease their efforts, till they had found the nectar, (This shows that) the presevering never give up the objects which they have set their hearts upon,

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनं ।
क्वचिच्छाकाहाराः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो ।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥८२॥

कभी जमीन पर सो रहते हैं और कभी उत्तम पलंग पर सोते हैं, कभी साग-पात खाकर रह जाते हैं और कभी दाल-भात खाते हैं, कभी फटी-पुरानी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं—कार्य्यसिद्धि पर कमर कस लेने वाले पुरुष सुख और दुःख दोनों को ही कुछ नहीं समझते ।

जो धीर पुरुष सुख-दुःख, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति की परवा नहीं करते, केवल कार्य्य साधन से मतलब रखते हैं; जो शरीर को नाश करके भी कार्य्य सिद्ध करना चाहते हैं, वे अवश्य ही कठिन-से-कठिन काम को सिद्ध कर लेते हैं। कार्य-साधन के लिये स्वयं त्रिलोकीनाथ को कभी वामन, कभी शूकर और कभी नृसिंह रूप धारण करना पड़ा; तब इतर लोगों की क्या बात है ? कहते हैं, महाबली रावण ने भी अपनी कार्य्य-सिद्ध के लिये, गधे को सिर पर रक्खा और एक पुष्प कम हो जाने पर, अपना नेत्र ही शिवजी को अर्पण करने के लिये तैयार हो गया। यूरोपविजयी महावीर नेपोलियन ने अपनी विजय के लिये, अनेक बार दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं गिनी, आँधी, वर्षा और तूफान में घोर कष्ट सहन किये। शेष मे, विजय प्राप्त करके ही दम लिया। मनस्वी पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

कहा है:—

> अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
> स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशोहि मूर्खता ॥

अपमान को आगे और मान को पीछे रख कर, बुद्धिमान को अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये। अपना काम न बनाना ही मूर्खता है।

सारांश—धीर पुरुष स्वकार्य्यसिद्धि के आगे मान-अपमान और दुःख-सुख को कोई चीज नहीं समझते।

दोहा ।

भूमिशयन कहुँ पलँग पै, शाक हार कहुँ मिष्ट ।
कहुँ कन्था सिरपाव कहुँ, अर्थी सुख दुख इष्ट ॥८२॥

82. A resolute person who has made up his mind to do a thing does not care for hardships or comfort He sometimes sleeps on (bare) ground and sometimes on a (luxurious) bed. Often he eats vegetables only and when available takes rice for his food When necessary, he would clothe himself with a single sheet of patched rags and sometimes would put on a valuable dress

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ॥
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण अभिमान रहित बात कहना, ज्ञान का भूषण शान्ति, शास्त्र देखने का भूषण विनय, धन का भूषण सुपात्र को दान देना, तप का भूषण क्रोध-हीनता, प्रभुता का भूषण क्षमा और धर्म का भूषण निश्छलता है, किन्तु अन्य सब गुणों का कारण और सर्वोत्तम भूषण "शील' है ।

शंकाराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है:—

किम्भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं ।
तीर्थम्परं किं स्वमनो विशुद्धम् ॥

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ।
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

उत्तम-से-उत्तम आभूषण क्या है ? शील। उत्तम-से-उत्तम तीर्थ कौन सा है ? अपने मनकी शुद्धता। इस जगत् मे त्यागने-योग्य क्या है ? धन और स्त्री। सदा सुनने लायक क्या है ? गुरु और वेद का वाक्य।

संसार में "स्वभाव" सब के ऊपर समझा जाता है। जिसका स्वभाव अच्छा नही, वह हजार-हजार गुण होने पर भी निकम्मा है। जिसके स्वभाव में "शील" है, वह सब गुणियों का सरदार है। शीलवान् ही जगत् की सम्पत्तियों का स्वामी होता है। कार्य निपुण पुरुष सम्पत्ति पाता है, पथ्य-सेवी मङ्गल, सुख और निरोगता पाता है, उद्योगी विद्या की सीमा पा जाता है; पर विनयी (शीलवान) पुरुष धन, धर्म और यश—तीनों को पाता है।

हमे एक शीलवान् की कहानी याद आ गई है। पाठक उसे सुनें:—"एक गाँव मे दो भाई रहते थे। उनमें से एक अत्यन्त विद्वान, मधुरभाषी, शान्त और सब की सह लेने वाला था। उस पर कोई क्रोध करता, तो वह दब जाता और हमेशा ऐसी जगह बैठता था, जहाँ से उसे कोई उठा न सके। दूसरा भाई एकदम निरक्षर भट्टाचार्य्य और अत्यन्त कड़वा बोलने-वाला था। अगर उस पर कोई क्रोध करता, तो वह उसका सिर फोड़ने को तैयार हो जाता। विद्वान्-भाई से गाँव के

सब लोग खुश रहते थे। उसके काम के लिए तन-मन से तैयार हो जाते थे। अगर वह किसी से कुछ मदद माँगता तो लोग फौरन ही उसे मदद देते। किन्तु दूसरे भाई से कोई बात भी नहीं करता था। एक दिन उसने अपने भाई से पूछा—"भाई! तुम्हारे पास ऐसी कौन सी तरकीब है, जिसके कारण तुम से सब लोग राजी रहते हैं और तुम चाहते होसो फौरन कर देते हैं; मुझ से तो कोई बात भी नहीं करता।" उसने कहा "मेरे पास शील है; तेरे पास वह नहीं है।" कहा है—

> गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
> अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो "शील" को त्याग॥

सारांश - यदि इहलोक और परलोक में सुख चाहो, तो शील व्रत धारण करो। शील सब गुणों का राजा है। शीलवान् को जगत् मस्तक झुकता है। शीलवान् के लिये अग्नि शीतल हो जाती है, समुद्र मे टखनों-टखनो पानी हो जाता है, बड़ा भारी सुमेरु पर्वत जरा से बालू के दाने बराबर हो जाता है, सिंह बकरीसा हो जाता है, जङ्गल शहर हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, त्रिलोकी की सम्पदा चरणो मे आप-से-आप आ जाती है, स्वर्ग उसकी बाट देखता है; बहुत क्या—शीलवान् को जगदीश भी मिल जाते हैं। हम तो क्या चीज है; शील की महिमा का शायद गणेश और सरस्वती भी कठिनता से बखान कर सके।

कुण्डलिया ।

मण्डन है ऐश्वर्य कौ, सज्जनता सनमान ।
बाणी सज्जन शूरता, मण्डन धन को दान ॥
मण्डन धन को दान, ज्ञान मण्डन इन्द्रीदम ।
तप मण्डन अक्रोध, विनय मण्डन सोहत सम ॥
प्रभुतामण्डन क्षमा, धर्म मण्डन छल खण्डन ।
सबहिन मैं सरदार, शीलता सब को मण्डन ॥८३॥

83 Gentlemanliness is the ornament of wealth and power, a softened speech that of bravery, self control that of knowledge, humility that of a study of the scriptures, appropriate spending that of riches, checking of anger that of penance, mercy that of kings and straight forwardness that of Dharma. (But) good manners, which are necessary above all, are the best ornament of everything.

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

नीति निपुण लोग निन्दा करें चाहें स्तुति, लक्ष्मी आवे और चाहे चली जाय, प्राण अभी नाश हो जायँ और चाहे कल्पान्त में हों—पर धीर पुरुष न्यायमार्ग से जरा भी इधर-उधर नहीं होते ।

धीर-वीर पुरुष किसी प्रकार के लालच या भय से अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग से ज़रा भी विचलित नहीं होते, जब कि नीच पुरुष जरा सा लालच या भय दिखाने से ही नीति-मार्ग से फिसल पड़ते हैं। महाराणा प्रताप को अकबर की ओर से अनेक प्रकार के प्रलोभन और भय दिखाये गये, पर वे ज़रा भी न डिगे—अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग पर अटल होकर जमे रहे। महात्मा प्रह्लाद को उनके पिता हिरण्यकश्यप ने अनेक तरह के लालच दिये, भय दिखाये और शेष में उन्हे पर्वत-शिखर से समुद्र मे गिराया, अग्नि में जलाया; पर वे अपने निश्चित किये नीति या धर्म-मार्ग से जरा भी विचलित न हुए। सच्चा मर्द वही है, जो सर्वस्व नाश होने या फाँसी चढ़ाये जाने के भय से भी, न्यायमार्ग को न छोड़े। कहा है:—

> चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः।
> कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः॥

प्रलय-काल की पवन से पर्वत चलायमान हो जाते हैं, पर घोर कष्ट पड़ने पर भी, धीर पुरुषों का निश्चल चित्त चलायमान नहीं होता।

और भी—

> अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं, प्राणत्यागेऽपि संस्थिते।
> न च कृत्यं परित्याज्य, धर्म एव सनातनः॥

प्राणनाश का समय आने पर भी, न करने योग्य काम को न करना चाहिये और करने योग्य को बिना किये न छोड़ना चाहिये; यही सनातन धर्म है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है—

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः।
"अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो, मम नु मतिर्नमनागपैतु धर्मात् ॥"

चाहे शीघ्र ही राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाय, चाहे कृपाणधारा ऊपर से गिरे, चाहे कृतान्त शिरश्छेदन करे; परन्तु मेरा मन धर्म से जरा भी न डिगे।

सारांश—किसी दशा में भी न्यायमार्ग से विचलित न होना चाहिये। वशिष्ठ जी कहते हैं—"विन्ध्याचल पर्वत भी हवा या प्रलयाग्नि से विदीर्ण हो जाता है; पर बुद्धिमान् शास्त्रानुमोदित मार्ग को नहीं त्यागते।

छप्पय।

नीति निपुण नर धीर वीर, कुछ सुयश करो किन।
अथवा निन्दा कोटि कहौ, दुर्वचन छिनहि छिन॥
सम्पत हू चलि जाउ, रहौ अथवा अगणित धन।
अबहि मृतक किन होहु, होउ अथवा निश्चल तन॥
पर न्याय-पंथ को तजत नहिं, बुद्धि विवेक गुण ज्ञान निधि।
वै सङ्ग सहायक रहत नित, देत लोक परलोक सिधि ॥८४॥
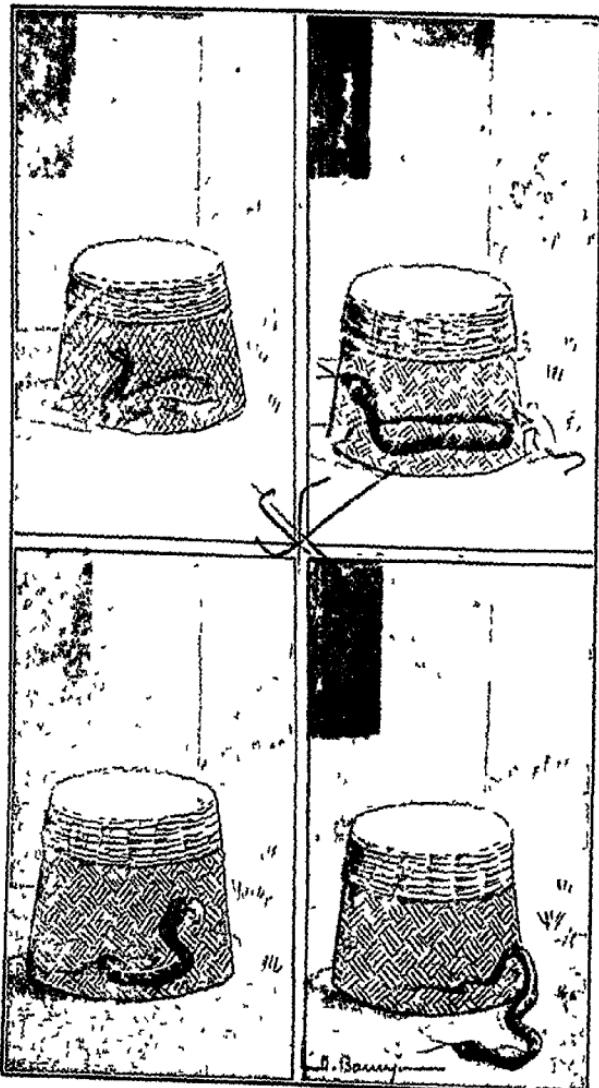
इस चित्र के सर्प को देखने से ज्ञात होता है, कि मनुष्यों की क्षय वृद्धि दैवाधीन है।

[पृष्ठ ३६७

84. The wise do not go astray even a single step from the path of justice, whether they are upbraided or praised by politicians whether riches come to them or leave them of their own free will and whether they have to die to-day or after a Yuga.

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाःपश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥८५॥

एक सर्प पिटारी में बन्द पड़ा हुआ, जीवन से निराश, शरीर से शिथिल और भूख से व्याकुल हो रहा था। उस समय एक चूहा, रात के वक्त, कुछ खाने की चीज पाने की आशा से, पिटारी में छेद करके घुसा और सर्प के मुँह में गिरा। सर्प उसे खाकर तृप्त हो गया और उसी चूहे के किये हुये छेद की राह से बाहर निकल कर स्वतन्त्र—आजाद हो गया। इस घटना को देख कर, मनुष्यों को अपनी वृद्धि और क्षय का एकमात्र कारण दैव को ही समझना चाहिये।

यही बात वृन्द कवि ने अपनी कविता में इस भाँति कही है:—

दुख सुख दीबे को दई, है आतुर इहि ठाट।
अहि करण्ड मूसा परयौ, भखि निकस्यौ वुहि बाट॥

प्राणी दैवाधीन है।

मनुष्य का बुरा और भला सब दैव या प्रारब्ध के आधीन है, मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, प्रारब्ध के वश में है; प्रारब्ध जो खेल खिलाती है, वही खेल खेलता है। मनुष्य के पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों को ही प्रारब्ध कहते हैं; यानी पहले जन्म के बुरे-भले कर्मों से ही प्रारब्ध या अदृष्ट बनता है। अगर समय पर पुण्यो का उदय होता है, तो मनुष्य सुख पाता है और यदि पापों का उदय होता है, तो दुःख-भोग करता है। दुःख का उद्यम न करने पर भी मनुष्य दुःख पाता है, यही इस बात का पक्का प्रमाण है।

कहा है—

> अन उद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय।
> दुःख को उद्यम को करत ? पावत है नर सोय॥
> को सुख को दुःख देत है ? देत करम झकझोर।
> उरझे-सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥

और भी—

> स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
> स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

जीव आप ही कर्म करता है; आप ही उसका फल भोगता है; आप ही संसार में भ्रमता है और आप ही उससे छुटकारा पाता है।

और भी—

> आत्मापराधवृक्षस्य, फलान्येतानि देहिनाम्।
> दारिद्र्य रोग दुःखानि, बन्धनव्यसनानि च॥

दरिद्रता, रोग, दु.ख, बन्धन और विपत्ति—ये सब मनुष्य के अपराध-रूपी वृक्ष के फल होते है।

और भी—

> यस्माच्च येन च यदा च यथाच यच्च
> यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
> तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
> तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति॥

जिसने, जिस वजह से, जब, जैसा, जो, जितना और जहाँ शुभ और अशुभ कर्म किया है; उसे उसीसे, तभी, तैसा ही, सो, उतना ही और वहाँ ही, काल की प्रेरणा से, फल मिलता है।

इन प्रमाणो से स्पष्ट समझ मे आ सकता है कि, मनुष्य अपने कर्मों से बन्धन मे फसकर दुःख और सुख भोग ा है। जो लोग दुःख या सुख को मनुष्य या परमात्माकृत समझते हैं, वे बड़ी भारी गलती करते हैं। जिस समय पिटारी वाले सर्प के पापो का उदय हुआ, वह पिटारी में बन्द हुआ। जब तक पापो का अन्त न हुआ, वह भूख-प्यास से कष्ट पाता रहा। ज्यो ही पुण्यों का उदय हुआ, दैव की

प्रेरणा से, चूहा उसके पिटारे में छेद करके घुसा। उससे सर्प की क्षुधा शान्त हुई और वह उसी छेद की राह से निकल कर स्वतन्त्र भी हो गया। इसी तरह मनुष्य भी दैव के आधीन होकर सुख दुःख भोगते है।

सारांश—मनुष्यों की क्षय और वृद्धि, सुख और दुःख, सम्पद् और विपद्, सफलता और असफलता प्रभृति का एकमात्र कारण दैव या प्रारब्ध है। दैव जो नाच नचाता है, प्राणी वही नाच नाचता है।

कुण्डलिया।

जैसे काहू सरप कों, छबरें पकर धरचौ सु।
सब की आशा छोड के, दे सिर कूद परचौ सु॥
दै शिर कूद परचौ सु, भयौ पीडित अति कैदी।
इन्द्री विह्वल भूख, पिटारी मूसें छेदी॥
वाही को भखि माँस, छेद ह्वै निकस्यौ कैसे।
तैसे क्षय अरु वृद्धि, दैव-वस ऐसे-जैसे॥८४॥

45. There was a snake which had lost all hopes, its body all aching owing to its having been imprisond in a cage and its senses made feeble by hunger A mouse having made hole into the cage at night entered into its mouth of itself. The snake, its hunger satisfied with flesh of the mouse, speedily went out of that very hole and was free Thus see, O men, Fate is the only cause of people's prosperity and loss.

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

जिस तरह हाथ से गिराने पर भी गेंद ऊँची ही उठती है, उसी तरह साधु-वृत्ति पर चलने वालों की विपत्ति भी सदा नहीं रहती है ।

सदा किसी के भी दिन समान नहीं रहते । सदा न कोई सुखी ही रहता है और न सदा कोई दुःखी ही रहता है । इस परिवर्त्तनशील संसार मे दुःख और सुख गाड़ी के पहिये की तरह चक्कर काटते हैं । समय के साथ मनुष्यो की अवस्थाएँ बदलती हैं । सूर्य की जिस तरह एक दिन मे तीन अवस्थाएँ हो जाती है; उसी तरह मनुष्य की अवस्थाएँ भी बदला करती हैं । इन बातो को समझ कर, धीर पुरुष अपनी विपद् मे नहीं घबराते ।

जो लोग, भारी-से-भारी विपद् पड़ने पर, धन हीन होने-पर, शत्रुओ के जाल मे फँसने पर, अपने आचरण को अच्छा रखते है, धीरज और धर्म को नहीं त्यागते हैं और प्राचीन काल के महापुरुषो की राह पर चलते हैं,—उनकी विपत्ति, निश्चय ही, उसी तरह शीघ्र ही नाश हो जाती है, जिस तरह जमीन पर फेंकी हुई गेंद शीघ्र ही ऊपर उठ आती है । महाराज रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र, नल और पाण्डु पुत्रों ने

धर्मात्माओ की चाल पर चल कर शीघ्र ही अपनी-अपनी विपत्तियों से छुटकारा पाया। जो मनुष्य अपनी विपत्ति मे सब्र नही करता, धैर्य और धर्म को छोड़ देता है, उसकी विपत्ति उसे बड़े-बड़े कष्ट भुगाती और शीघ्र नहीं जाती।

शिक्षा – विपत्ति मे धीरज और धर्म को न छोड़ो; धर्मात्माओं की चाल पर चलो; परमात्मा की दया से शीघ्र ही विपत्ति नष्ट हो जायगी।

दोहा।

कर को मारयो गैंद ज्यों, लागि भूमि उठि जात।
साधु जनन की त्यों विपति, छिन ही माहिं नशात ॥८६॥

86. A ball dashed against the grouud with the stroke of a hand rebounds upwards. (Similarly) as a general rule, the downfall of good-natured men does not last long

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥८७॥

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है; क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख नहीं आते।

इसमे जरा भी शक नहीं, कि आलस्य मनुष्य का परम शत्रु और उद्योग उसका परम बन्धु है। आलस्य से मनुष्य रोगी, दुःखी और दरिद्री होता है; जब कि उद्योग से

निरोग, सुखी और धनी होता है। आलस्य असफलता का भाण्डार और उद्योग सफलता की कुञ्जी है। आलस्य मृत्यु और उद्योग जीवन है। आलसी सदा मुहताज रहता है और उद्योगी सदा आनन्द करता है। आलसी की जिन्दगी दिन-दिन छीजती है, पर उद्योगी की जिन्दगी बढ़ती है। रोसो महोदय कहते हैं—"Temperance and labour are the two best physicians of man." परहेज़गारी और मिहनत मनुष्य के दो सर्वोत्तम हकीम हैं; विण्डिल फिलिप्स महोदय कहते हैं—'Health lies in labour and there is no royal road to it, but through toil. तन्दुरुस्ती मिहनत मे है। मिहनत के सिवा तन्दुरुस्ती तक पहुँचने की और कोई शाही राह नही है। हिलर्ड महाशय कहते है—"Life is but another name for action; and he who is without opportunity exists but does not live"—कर्म या काम का ही दूसरा नाम जीवन है; निकम्मे का अस्तित्व है, पर वह जीवित नहीं। शंकराचार्य्य महाराज ने कहा है:—

कोवा दारिद्रोहिविशाल तृष्णा।
श्रीमांश्च को यस्य समस्त तोष.॥
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः।
कोवाऽमृतस्स्यात्सुखदा निराशा॥

दरिद्री कौन है ? जिसे तृष्णा बहुत है । धनवान् कौन है ? जिसे सब तरह सन्तोष है । जीता हुआ ही मृतक कौन है ? जो उद्यम-रहित या आलसी है । अमृत क्या है ? सुखदायी निराशा ।

आलस्य से ही सब आपदाओं की मूल निर्धनता आती है । डच लोगों में एक कहावत है—"Poverty is the reward of idleness" दरिद्र आलस्य का पुरस्कार है । दरिद्रता से मनुष्य के मन में लाज सी आने लगती है; लज्जा से मनुष्य में कमज़ोरी आती है; कमज़ोरी की सभी बेइज्ज़ती करते हैं; बेइज्ज़ती होने से मन में दुःख और शोक पैदा होते हैं; जो दिन-रात शोक में ग़र्क़ रहता है, उसकी अक़्ल मारी जाती है; जब अक़्ल ही नहीं रहती, तब मनुष्य बहुधा आत्म हत्या करके प्राण विसर्जन कर देता है । बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—"Poverty often deprives a man of all spirit and virtue" दरिद्रता बहुधा मनुष्य को सम्पूर्ण साहस और धर्म से हीन कर देती है । जिससे साहस और धर्म नहीं, वह तो जीता हुआ ही मरा है; वह चाहे अपघात करके मरे, चाहे न मरे । जिस आलस्य से इतने उपद्रव या घोर सङ्कट पैदा होते हैं, वह मनुष्य का घोर शत्रु नहीं तो क्या है ? और तो और; जिस सुयश की मनुष्य को प्राण देकर भी परिपालना करनी चाहिये, वह भी आलस्य से नष्ट हो जाता है । कहा है: ।

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री ।
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ॥
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं ।
राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य ॥

आलसी का यश नाश हो जाता है, दुष्टो की मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरुष का कुल नही चलता, व्यसनी की विद्या नष्ट हो जाती है, कंजूस का सुख नष्ट हो जाता है और मतवाले मन्त्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

आलस्य मे संसार के सारे ही दोष हैं। आलसी को न इस लोक मे सुख मिलता है और न परलोक मे। आलसी इस लोक में निर्धनता प्रभृति नाना प्रकार के दुःखो को भोग कर मरता है और मरने पर फिर इस लोक मे आता और नाना प्रकार के दुःख भोगता है। आलसी का जन्म-मरण के बन्धनो से छुटकारा नही हो सकता। इसलिये मनुष्यो! यदि तुम सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य चाहो, यदि तुम संसार-बन्धन से मुक्त होना चाहो, तो "आलस्यशत्रु" से सदा अलग रहो, इस शत्रु से मैत्री न करो। जो आलस्य से मैत्री रखता है, उससे संसार की सम्पत्तियाँ दूर भागती हैं और लक्ष्मी उसकी सूरत से नफरत करती। नीति-ग्रन्थो में कहा है—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥
आलस्यं स्त्री सेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् ।
सन्तोषो भीरुत्वं षड व्याघाता महत्त्वस्य ॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्चपरिहीनम् ।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मीः ॥
क्लेशस्यांङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभन्ते ।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिषयति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥

जिन्हें धन की इच्छा हो, उन्हे निन्द्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये दोष त्याग देने चाहिऍं ।

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्म-भूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छै बड़प्पन को नाश करने वाले हैं ।

जिस तरह जवान स्त्री बूढ़े पति को अलिङ्गन करना नहीं चाहती; उसी तरह लक्ष्मी उद्योगहीन, आलसी, तक़दीर को बड़ी समझने वाले और साहसहीन—पस्तहिम्मत मनुष्य को नही चाहती ।

इस जगत मे बिना शरीर को दुःख दिये सुख नहीं मिलता । मधुसूदन भगवान् ने समुद्र मथन से थकी हुई भुजाओ द्वारा ही लक्ष्मी पाई थी ।

आशा है, हमारे पाठक अब आलस्य के घोर शत्रु होने की बात अच्छी तरह समझ गये होगे; आगे चल कर

इस उद्योग के परम बन्धु होने की बात इसी तरह समझायेंगे; पर बीच में आलसियों के एक उज्र का जवाब और देंगे।

आलसी और काहिलों को भाग्य या तक़दीर पर बड़ा भरोसा होता है। वे लोग पुरुषार्थ या तदबीर के मुक़ाबले में भाग्य या तकदीर को बड़ी समझते हैं और अक्सर कहा करते हैं—"अगर हमारे भाग्य में होगा, हमारी तकदीर अच्छी होगी, हमने पूर्वजन्म में शुभ कर्म किये होंगे, तो हमारे बिना उद्योग किये ही, बिना हाथ-पाँव हिलाये ही, पलग पर पड़े-पड़े ही, हमें सब कुछ मिल जायगा—लक्ष्मी हमारे कदमों मे लोटेगी। हाँ, यदि हमारा भाग्य ही अच्छा न होगा, हमने पहले जन्म मे पुण्यकर्म किये न होंगे; तो हमारे हजार कोशिश करने पर भी, हमे कुछ न मिलेगा। फल की प्राप्ति का हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता; फल की प्राप्ति पूर्वकर्मानुसार होती है, अन्यथा नहीं। देखते है, किसी को थोड़ी ही मिहनत मे बड़ा फल मिलता है और किसी को घोर परिश्रम करने पर भी खाने को नहीं मिलता, और कोई बिना जरा-सा भी उद्योग किये, करोड़ो का मालिक बन बैठता है।" बस आलसी अपने इसी विश्वास से घरो मे पड़े रहते हैं। माता-पिता यदि कुछ छोड़ जाते हैं; तो जब तक वह रहता है, बेच-बेच कर खाया करते हैं। आलसियो से उठ कर पानी नहीं पिया जाता; कुत्ता मुँह मे मूतता हो तो उसे भगाया नहीं जाता। इन्हें

इस मौके पर आलसियों का एक किस्सा याद आया है, उसे हम अपने पाठकों के लिये यहाँ लिखते हैं:—

एक बार एक मनुष्य ने कहा—'पोस्ती ने पी पोस्त, नौ दिन चला अढ़ाई कोस।"

दूसरे ने कहा—"अबे! पोस्ती न होगा, वह कोई डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने पी पोस्त, तो कूँडाके इस पार या उस पार।"

और सुनिये—

एक बाग मे दो आलसी एक आम के पेड़ के नीचे लेट रहे थे; उनमे से एक की छाती पर एक आम पड़ा हुआ था, पर वह उसे उठा कर खा नही सकता था। इतने मे उधर से एक सवार निकला। आमवाला आलसी बोला—"ओ भाई सवार! मेरी छाती पर एक आम पड़ा है, कृपया इसे मेरे मुँह मे निचोड़ते जाइये।" सवार ने कहा—"तू बड़ा ही आलसी है, जो अपनी छाती पर पड़ा हुआ आम भी उठाकर नही चूस सकता; दूसरे से आम निचोड़ने को कहता है।" यह सुनते ही दूसरे आलसी ने कहा—"बेशक साहब! यह बड़ा ही आलसी है। रात-भर मेरे मुँह को कुत्ता चाटता रहा, मैंने इससे कहा जरा दुतकार दे, पर इसने "दुत" भी न किया।" यह सुनकर सवार उन्हें लानत-मलामत करता हुआ चला गया। आलसियो की यह दशा होती है, तभी तो वे संसार मे नरक से भी बढ़कर दुःख भोगते है।

• आलसियों पर महाकवि "मीर" ने खूब ही कहा है —

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना, पर उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पै मिस्ल लोथ, पड़े रहना है अच्छा।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
रहने दो ज़मीं पै मुझे, आराम यहीं है।
छेड़ो न नकशे-पा है, मिटाना नहीं अच्छा॥
उठ करके घर से कौन चले, यार के घर तक।
मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा॥
धोती भी पहनें जब, कि कोई ग़ैर पिन्हाये।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज है, इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ विचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फ़ाकों से मरिये, पर कोई काम न कीजिये।
दुनिया नहीं अच्छी है, जमाना नहीं अच्छा॥
सिजदे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिये।
दोजख ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय, हिन्द खाक में, हम काहिलों को क्या।
ऐ 'मीर'! फर्श रंज मिटाना नहीं अच्छा॥

आलसी हाथ-पैर नहीं हिला सकते, इसी से भाग्य की आड़ लेते है। शुक्राचार्य्य महाराज ने बहुत ठीक कहा है:—

धीमन्तो वंद्यचरिता मन्यन्ते पौरुष महत्।
अशक्त पौरुषं कर्तुं क्लीबा दैवमुपासते॥

बुद्धिमान् और माननीय लोग पुरुपार्थ को बड़ा मानते हैं, परन्तु नपुंसक—हिजड़े, जो पुरुपार्थ नहीं कर सकते—दैव या प्रारब्ध की उपासना करते हैं।

प्रारब्ध कोई चीज न हो, यह बात नहीं। यह जगत् प्रारब्ध और पुरुषार्थ से ही विद्यमान् है। पूर्वजन्म के कर्म को "प्रारब्ध" और इस जन्म के कर्म को "पुरुपार्थ" कहते हैं। एक ही कर्म के दो नाम हैं। प्रारब्ध और पुरुपार्थ,—गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। जिस तरह एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती; उसी तरह बिना पुरुपार्थ—खाली भाग्य से फल की प्राप्ति नहीं हो सकती—बिना पुरुपार्थ, प्रारब्ध-फल नहीं मिल सकता। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के ढेले से अपनी इच्छानुसार चीजें बनाता है; उसी तरह मनुष्य अपने पूर्व-जन्म के किये हुए कर्मों का फल आप ही प्राप्त करता है। अचानक सामने आये हुये खजाने के लेने के लिये भी, पुरुपार्थ की दरकार होती है। सोते सिंह के मुख में बिना उद्योग किये ही, हाथी या हिरन घुस नहीं जाते। तिलों में तेल होने पर भी बिना पेरे नहीं निकलता। तात्पर्य यह,—बिना पुरुपार्थ; हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से, प्रारब्ध का फल मिल नहीं सकता।

उद्योग की सर्वत्र जरूरत है। उद्योग करना मनुष्य का धर्म है, फल मनुष्य के हाथ नहीं; फल देना विधाता का

काम है। महात्मा कारलाइल कहते है—"Let a man do his work, the fruit of it is the care of another than he" मनुष्य परिश्रम करे; फल की प्राप्ति करना उसके हाथ की बात नहीं, फल देने वाला दूसरा ही है। नीति में लिखा है:—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष ॥

निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्व सम्पदः ॥

उत्साहसम्पन्नम् दीर्घसूत्रम्
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च
लक्ष्मी स्वयं याति निवासहेतोः ॥

उद्योगी पुरुषसिंह के पास लक्ष्मी आती है;* "प्रारब्ध से लक्ष्मी आती है"—ऐसी बात कायर लोग कहते हैं। दैव या प्रारब्ध को त्याग कर, अपनी सामर्थ्य-भर उद्योग करो; उद्योग करने पर भी यदि सिद्धि न हो, तो किसका दोष है ?

जिस प्रकार कूएं के पास के छोटे जलाशय—पोखरे मे मैढक और भरे सरोवर में पक्षी आप-से-आप आते हैं, उसी

* He that labours and perseveres spins gold.—Sp. Pr.

तरह उद्योगी पुरुष के पास सारी सम्पत्तियाँ आप से-आप आती हैं।

उत्साही, काम करने में निरालसी, काम की विधि को जानने-वाला, किसी प्रकार के व्यसन के वशीभूत न रहने वाला, शूर-वीर, पराया ऐहसान माननेवाला और मित्रता में दृढ़ रहने-वाला—ऐसे पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं बसने के लिये आती है।

ससार में सारे काम लक्ष्मी से ही होते हैं। और तो क्या—लक्ष्मी से स्वर्ग में भी सीढ़ी लग जाती है। जिसके पास धन है, वही जीता हुआ है; जिसके पास धन नहीं, वह जीवित रहने-पर भी मृतक है। यह सर्वगुण सम्पन्ना लक्ष्मी एकमात्र "उद्योग" से मिलती है; इसलिये "उद्योग" ही मनुष्य का परम बन्धु है। उद्योग-बिना दरिद्र और दुःख पीछा नहीं छोड़ते; अतः मनुष्य को उद्योग से घनिष्ट मैत्री करनी चाहिये। कहा है—

सहि सकट उद्योग को, लहै सम्पदा प्रानि।
सिन्धु-मथन-दुःख सुर सह्यौ, लह्यौ अमृत ज्यों पानि ॥
फल विडाल-सम लहत जन, उद्यम तजिये न भूल।
गाय नही जिमि जन्म सों, दूध पीय भो स्थूल ॥

हो सचेत श्रम करो सदा तुम
चाहे कुछ भी हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो
धीरज धरना करना काम ॥

धन कमाने की तरकीबें।

मनुष्य को धन प्रायः ६ उपायों से मिलता है,—(१) भीख माँगना, (२) राजा या किसी धनी की चाकरी करना, (३) खेती करना, (४) लेन-देन करना, (५) विद्या पढ़ना, और (६) वाणिज्य-व्यापार करना।

इन छहों उपायों से धन आता है; पर इन सब मे वाणिज्य या व्यापार सर्वश्रेष्ठ है। भिक्षा से कोई धनी नहीं हुआ, पराई चाकरी से यथेष्ट धन नहीं मिलता; खेती मे धन है, पर कष्ट बहुत, काम बेशक उत्तम है; व्याज पर रुपया उधार देने से रकम के मारे जाने का भय रहता है; इसलिये वाणिज्य ही रुपया कमाने का सर्वोत्तम उपाय है। सस्ते भाव मे अनाज या कपड़ा प्रभृति खरीद कर रख छोड़ने और महँगी के समय बेच देने से, सहज मे, अच्छा लाभ हो सकता है। इसके सिवा आजकल के समय में, गोधन बढ़ाने से भी अच्छे लाभ की आशा है। थोड़ी पूँजी लगे और खूब नफा हो—एक-एक-के सौ-सौ हों, ऐसा व्यापार इत्र, फुलेल, तेल और दवाओं का बेचना है। पर सभी कामो में सचाई और ईमानदारी की बड़ी जरूरत है। व्यापारी लोग बहुधा कहा करते है, कि बिना मिथ्या और कपट के व्यापार चल नहीं सकता, पर हमारी राय इसके खिलाफ है। ईमानदारी से धन आता है और खूब आता है, पर पहले कुछ कठिनाइयों का सामना जरूर करना पड़ता

है। आशा है, हमारे आलसी पाठक, अब से आलस्य को त्याग-कर, कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करेंगे* ।

दोहा ।

आलस तन में रिपु बड़ो, सब सुख को हर लेत ।
त्यों ही उद्यम बन्धु सम, किये सकल सुख देत । ८७॥

87 Idleness is the great enemy of mankind. There is no friend like activity, finding which nobody ever sustains a loss.

छिन्नोऽपिरोहत तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशंतः सन्तः संतप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥८८॥

कटा हुआ वृक्ष फिर बढ कर फैल जाता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा भी फिर आहिस्ते आहिस्ते बढ कर पूरा हो जाता है, इस बात को समझ कर, सन्तपुरुष अपनी विपत्ति में नहीं घबराते ।

संसार की परिवर्तनशीलता ।

——:o:——

यह संसार परिवर्त्तनशील है; गाड़ी के पहिये की तरह घूमत रहता है। हर क्षण और हर घड़ी इसमे परिवर्त्तन होते रहते है। वर्ष मे ६ ऋतुएँ बदल जाती है। ग्रीष्म के बाद प्रावृट्, प्रावृट् के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद्, शरद् के बाद हेमन्त, हेमन्त के बाद शिशिर और शिशिर के बाद वसन्त आता है। वसन्त ऋतु मे वृक्षो के पुराने पत्ते झड़ जाते है

* अगर पास पूँजी न हो, तो हमारी 'स्वास्थ्यरक्षा' मंगा कर उसमें से हमारी परीक्षित चीजें बना, धन पैदा कीजिये । अनेक लोग उसकी बदौलत मालामाल हो रहे हैं।

और नये उनका स्थान ग्रहण करते हैं। सूर्य्य की भी दिन भर मे तीन अवस्थाएँ बदल जाती है। सवेरे ही उसका बचपन, दोपहर के समय जवानी और साँझ को उसका बुढापा आकर वह अस्त हो जाता है; इसी तरह मनुष्य की दशाएँ बदलती रहती हैं। समय की गति के साथ मनुष्य भी रंग बदलने को मजबूर होता है। कैसर लोथर प्रथम ने ठीक ही कहा है—
"Times change and we change with them."
समय बदलते हैं और समय के साथ हम भी बदलते हैं।
महात्मा गोथे ने भी कहा है—'जिन्दगी का सम्बन्ध जिन्दो से है और जो जिन्दा है, उन्हे जिन्दगी की तब्दीलियो के लिये तैयार रहना चाहिये।" कभी मनुष्य सुखी होता है, कभी दु:खी; कभी रोगी होता है, कभी निरोग, कभी धनी या राजा होता है और कभी दर-दर का भिखारी। कभी एक सी अवस्था रह ही नहीं सकती‡। मनुष्य का धर्म है, कि वह हर हालत मे खुश रहे। कहा है—

सुखमापतित सेव्यं दु खमापतित तथा।
चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दु:खानि च सुखानि च॥

मनुष्य को चाहिए, सुख के समय सुख को और दु:ख के समय दु:ख को सेवन करे। दु:ख और सुख चाक की तरह घूमा करते है।

‡ Empires and nations flourish and decay
By turns command, and in their turns obey Ovid

शेख़ सादी ने कहा है—

शगूफ़ा गाह शगुफ़तरस्तो गाह खोशींदह ।

दरख्त वक्त विरहनस्तो वक्त पोशींदह ॥

संसार परिवर्त्तनशील है। फूल कभी मुर्झाता है और कभी खिलता है। वृक्ष के पत्ते कभी गिर जाते हैं और कभी हरे-हरे पत्तों से उसकी शोभा हो जाती है।

जिस तरह काटा हुआ वृक्ष फिर हरा-भरा होकर फैल जाता है, क्षीण चन्द्र फिर पूर्ण हो जाता है, सूर्य्य और चन्द्रमा ग्रहण लगने पर भी, फिर ग्रहणमुक्त हो जाते हैं; पत्रहीन सूखे वृक्ष फिर सपत्र हो जाते है, मेघाच्छन्न आकाश फिर निर्मल और निर्मेघ हो जाते हैं, वर्षा और तूफान सदा नहीं बने रहते; उसी तरह ही मनुष्य भी एक-न-एक दिन विपत्ति से छुटकारा पाकर सुखी और स्वतन्त्र होता है; इसमे अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

विपद् से लाभ।

लोग विपद् को जैसी भयावनी समझते है, वह वैसी नहीं है। विपद् के फूल कड़वे होते हैं, पर उसके फल मीठे होते हैं। जिस पर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती है, जिसके धैर्य्य और धर्म की वह परीक्षा करना चाहता है, उस पर ही वह विपद् डालता है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, महाराजा नल और महाराजा रामचन्द्र तथा पञ्च पाण्डव इसके सच्चे दृष्टान्त हैं*।

दैवी विपत्तियाँ कुछ-न-कुछ उत्तम फल देनेवाली होती हैं, तब क्या मानवीय विपत्तियों से लाभ न होते होंगे ? नदी की बाढ़ को लोग बुरी कहते है, पर जब वह चली जाती है तब खेती को उपजाऊ करके छोड़ जाती है । ज्वालामुखी

एक जमाने में हम स्वयं घोर विपत्ति में फँसे हुए थे । सभी इस जन्म मे हमारा विपत्ति से छुटकारा पाना असम्भव कहते थे । हम भी ऐसा ही समझते थे । आत्मगोपन किये हम अपने दिन काटते थे; पर शत्रुओं से हमारा ज्यों-त्यों दिन काटना भी देखा न गया । वे हमारे पीछे हाथ धोकर पड गये । श्रीकृष्ण की पूर्ण कृपा और श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड की दया से हमारा छुटकारा हो गया । २५ वर्ष बाद असम्भव सम्भव हो गया । आज हम स्वतन्त्र और सुखी हैं । जिस तरह हमें विपत्ति से निजात मिली, उसी तरह औरों को भी निश्चय ही मिलेगी । विपत्ति से हमें बडे लाभ हुए । विद्या की वृद्धि हुई, संसार की असलियत का ज्ञान हुआ, नास्तिकता गई, परमात्मा से प्रीति हुई, देश-भ्रमण का आनन्द आया और संसार का अनुभव हुआ । हम चाहते हैं, हमारे और भाई हमारे अनुभव से फायदा उठावें और हमारी तरह गलतियाँ न करके कष्ट से बचें । अकेले इस लाभ को ही हम सब से बडा लाभ समझते है । यदि कर्मानुसार हमारी बुद्धि वैसी न हो जाती, तो हम या तो हाईकोर्ट के वकील होते या सरकार की सेवा करते होते । पर हमें विपद् से जो मज़ा आया और आ रहा है, वह हमें वकालत करने या किसी उच्च पद पर होने से हरगिज़ न आता । आरम्भ में, हमें विपद् बहुत बुरी मालूम होती थी; पर अब नतीजा देखकर हमें कहना पड़ता है, कि परमात्मा ने हमे विपद् देकर हमारा बड़ा उपकार किया । दीनबन्धु, अनाथ-नाथ भगवान् कृष्ण को हमारा बारम्बार धन्यवाद है ।

पर्वतों के फटने की बातो से ही लोगो की आत्माएँ काँप उठती है; पर अनेक ज्वालामुखी पहाड़ो ने फट कर अनेक देशो को धन-दौलत से निहाल कर दिया है। भूकम्प के नाम से प्राणिमात्र घबरा उठते है, पर यह भूचाल भी फायदे से खाली नहीं। इनके आने से कोसो नयी जमीन निकल आती है और समुद्र अपनी सीमा के भीतर बना रहता है। इसी तरह मानवी विपत्तियों से भी बड़े-बड़े लाभ होते है। विपत्ति यद्यपि काल-सर्पसी भयङ्कर मालूम होती है, पर उसके फल काल सर्प की मणि से कम कीमती नही होते। विपत्ति मित्रों की सच्ची कसौटी है। स्त्री, पुत्र, सेवक, सचिव, मित्र और नाते-रिश्तेदारो की सच्ची परीक्षा इसी समय होती है। विपत्ति मे ही बहुधा मनुष्य देश-देशान्तरो में भ्रमण करता, भाँति-भाँति के मनुष्यों की संगति से लाभ उठाता और नाना प्रकार के कला-कौशल और भाषाएँ तथा रीति-रिवाज सीख कर अनुभवी और जहाँदीदा होता है। जिस तरह बादल के बिना बिजली का प्रकाश नहीं होता; उसी तरह विपत्ति बिना मनुष्य के गुणो का प्रकाश नहीं होता*। विपत्ति हर पहलू से अच्छी है, बशर्ते कि वह सदा न रहे।

कहा है—

> विपत बरोबर सुख नहीं, जो थोडे दिन होय।
> इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पडे सब कोय॥

---

* Disasters are wont to reveal the abilities of a general, good fortune to conceal them.—Hor

और भी कहा है—

बन्धु स्त्री भृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्त्वस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम्॥

कसौटी पर कस कर सर्राफ़ जिस तरह सोने के गुण-दोषों की परीक्षा करते हैं; उसी तरह विपत्ति-रूपी कसौटी पर पुरुष अपने मित्र, स्त्री, दासगण, बुद्धि, बल और शरीर के सार की परीक्षा करते हैं।

कहिये पाठक, अब भी क्या आप विपत्ति को बुरी ही कहेंगे? परमात्मा जो कुछ करता है, वह मनुष्य के भले के लिये ही करता है; पर मनुष्य अपनी बुद्धि की संकीर्णता के कारण, उसके मतलब को समझ नहीं सकता; इसी से दुःख में ईश्वर और भाग्य को दोष देता और हाय-हाय करता है। इसी मौके का एक किस्सा हमे याद आया है। पाठकों को उसे सुनाये बिना हमारी तबियत नहीं मानती।

ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है।

एक राजा के मन्त्री का यह सच्चा विश्वास था, कि "ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है।" एक दिन राजा और मन्त्री शिकार के लिये एक भयानक वन में निकल गये। शिकार खेलते समय किसी हथियार से राजा की उँगली कट गयी।" मन्त्री ने जवाब दिया—"महाराज! ईश्वर जो

करता है, मनुष्य के अच्छे के लिये ही करता है।" राजा इस बात से चिढ़ गया और मन्त्री को अपने यहाँ से निकाल दिया। दूसरे दिन राजा फिर शिकार को गया और हिरन के पीछे घोड़ा फेंकता हुआ, एक और राजा के राज्य में पहुँच गया। वहाँ के राजा को बलि देने के लिये एक मनुष्य की दरकार थी। लोग इसे बलिदान की वेदी के पास ले गये। पण्डितों ने इसकी उँगली कटी हुई देख कर, राजा से कहा—"महाराज! यह तो अङ्ग-भङ्ग है; अङ्ग-भङ्ग की बलि दी नहीं जाती।" पण्डितों के कहने से राजा ने उस राजा को छोड़ दिया। वह अपने राज्य में आ गया। आते ही मन्त्री को बुलाया और उससे कहा—"मन्त्री! तुम्हारी वह बात राई-रत्ती सच है, कि ईश्वर जो कुछ करता है, मनुष्य की भलाई के लिये ही करता है। अगर मेरी उँगली कट न जाती, तो मेरे प्राण न बचते।" मन्त्री ने कहा—"महाराज! आपने मुझे निकाल दिया यह भी अच्छा ही हुआ। अगर आप मुझे निकाल न देते, तो मैं आपके साथ वहाँ होता ही। वे लोग आपको तो अङ्ग-भङ्ग समझ कर छोड़ देते, पर मेरा तो बलिदान कर ही देते।" राजा मन्त्री से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे इनाम देकर, फिर उसकी जगह पर बहाल कर दिया।

महात्मा बेकन ने कहा है—'कौन जानता है, जिस मृत्यु से लोग इतना डरते और घबराते हैं और जिसे सबसे बड़ी बुराई समझते हैं, वही सबसे बड़ी भलाई करने वाली

न होऽ ? बात ऐसी ही है। मृत्यु हमारे दुःखो का अन्त करके हमे नया चोला देने वाली है (मि० बेवर महोदय कहते हैं—Life is a disease, sleep a palliative, death the radical cure 'जीवन एक व्याधि है, निद्रा उस व्याधि को कम करने वाली और मृत्यु उसे समूल नाश करने वाली या जड़ से चगा करने वाली है।) मिस्टर लोवेल महोदय कहते हैं—"जिन्दगी. दारोगा, जेल है और मौत वह फरिश्ता है, जो जेलखाने के कपाट खोल कर हमे आजाद करने के लिये भेजा जाता है।"

जब कि मृत्यु तक हमारे सुख के लिये है तब विपत्ति प्रभृति से सुख क्यो न होगा ? परमात्मा कोई भी काम ऐसा नही करता जिससे मनुष्य का अनिष्ट हो। दुःख है, कि मनुष्य परमात्मा की लीलाओ को समझने की सामर्थ्य नही रखता। इसीलिये विद्वानो ने कहा है, कि मनुष्य परमात्मा पर पूरा भरोसा करके अपने तई उस पर छोड़ दे और वह जिस हालत में रक्खे, अपने तई उसी हालत में सुखी माने।

राज़ी हूँ उसी मे जिस मे तेरी रज़ा है।

विपत्ति का सामना करने के लिये, मनुष्य को महात्मा मिल्टन की यह बात याद रखनी चाहिये,—'मैं परमात्मा की इच्छा के प्रतिकूल आपत्ति नही करता। हे ईश्वर! राजी हूँ उसी में, जिस मे तेरी रजा है। मै अपना काम करता हूँ, तू अपना काम कर।"

---

§ Out of a great evil there springs a great good—It Pr

महाकवि दाग भी कहते हैं:—

आपकी जिसमें हो मरजी, मुसीबत बेहतर।
आपकी जिसमें खुशी हो, वह मलाल अच्छा है॥

प्लूटार्च नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते है—"हर हालत मे प्रसन्न रहना सीखो; यदि तुम्हारे धन से दूसरों का उपकार होता है, तो धनावस्था से सुख मानो; अगर दरिद्रता हो तो इसलिये सुखी रहो, कि तुम पर हजारो तरह की चिन्ताओं का भार नहीं। अगर तुम अप्रसिद्ध हो तो, इसलिये सुख मानो कि तुम लोगों के ईर्षा द्वेष से बचोगे।"

कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं।

सुख और दुःख पूर्वजन्म के पुण्य और पापों के अवश्यम्भावी कर्म-फल हैं। पूर्वजन्म मे बुरा या भला जैसा कर्म किया जाता है, उसका फल प्रारब्ध मे लिख दिया जाता है। उस प्रारब्ध के लिखे को कोई मिटा नहीं सकता। नाना प्रकार की तपस्या और देवताओ की उपासना करने से भी कोई फल नहीं होता। देवता तो देवता—स्वयं शिव और विष्णु भी भाग्य के लिखे को मिटा नहीं सकते। समुद्र चन्द्रमा का पिता है, पर ऐसा बलवान् समुद्र भी अपने पुत्र के कलङ्क को मिटा नहीं सकता। शिवजी महेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान है, पर वे भी अपने सिर पर रहने वाले चन्द्रमा को पूर्ण नहीं कर सकते—उसके घटने-बढ़ने के दोष को हरण कर नहीं सकते। शिवजी स्वयं महे-

श्वर हैं, उनके पुत्र गणेश सबे सिद्धियों के दाता है, उनके दूसरे पुत्र स्वामीकार्तिकेय देवसेना के सेनापति है, स्वयं महा-शक्ति उनकी अर्द्धाङ्गिनी है, स्वयं धन से स्वामी कुबेर उनके घनिष्ठ मित्र है; तिस पर भी शिवजी का खप्पर लेकर भीख माँगना नहीं छुटता। मतलब यह, कि कर्म के लिखे को कोई भी मिटा नहीं सकता।

कहा है:—

> अवश्य भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
> नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहि शयनं हरेः॥

जो होनहार है, वह अवश्य होता है; उससे बड़े भी बच नहीं सकते। देखिये, शिवजी नंगे रहते है और विष्णु भगवान महासर्प के ऊपर सोते है।

और भी—

> अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः।

बुरा या भला जो कुछ विधाता ने लिख दिया है, उसे मिटाने में कौन समर्थ है?

वृन्द कवि ने कहा है—

> "निहचै भावी को कहुँ, प्रतीकार जो होय।
> तो नल से हरचन्द से, विपत न भरते कोय॥"

आंग्ल भाषा में भी एक कहावत है—"The fated will happ n' जो भाग्य मे लिखा है, वह होगा।

पूर्वजन्म के कर्म-फलों से प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध का लिखा अवश्य होता है। उसके भोगने से मनुष्य क्या—देवता तक नहीं बच सकते। भोगने वाला चाहे रो-रोकर और हाय-हाय करके भोगे चाहे शान्ति से भोगे*।

गिरधर कविराय कहते हैं:—

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँसि करि भोगि है, अज्ञानी भोगे रोय॥
अज्ञानी भोगे रोय, पुनः पुनि मस्तक कूटे।
प्रारब्ध जो होय, बिना भोगे नहिं छूटे॥
कह गिरधर कविराय न दीरघ होत रहस्य।
जैसे जैसे भाग पुरुष को फलै अवश्य॥

विपद् में मान-अपमान।

विपद् में मान-अपमान और निन्दा स्तुति का खयाल करना दुःखमयी है। विपद् में तो जो मनुष्य गूँगा, बहरा, अन्धा, लँगड़ा या लूला हो जाता है, अपने तईं पत्थर या मिट्टी समझ लेता है, उसकी विपद् सुख से कटती है—उसे शारीरिक और मानसिक दोनों ही कष्ट कम होते हैं। किन्तु जो मान-अपमान का खयाल रखते हैं, उनकी आत्माएँ जल-जल कर खाक हुआ करती हैं—उनको क्षण-भर भी सुख की नींद नहीं आती। विपद् में बड़े बड़ों को नीचा देखना पड़ा है,

---

* The life of man is a journey; a journey that must be travelled, however bad the roads or the accomodation—Goldsmith

पद-पद पर अपमानित और लांछित होना पड़ा है। साधारण मनुष्य उनके सामने कौन खेत की मूली है? ऐसा कौन है, जिसे विपद् मे नीचा देखना नहीं पड़ा?

जिन अर्जुन ने अपनी भुजाओ के द्वारा समस्त पृथ्वी को जीत कर विपुल धन सञ्चय किया था, जिन्होंने सदेह स्वर्ग में जाकर इन्द्र के शत्रु—राक्षसों का संहार किया था, जिन्होंने कृष्ण के साथ खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था; जिनके समान धनुर्धर उस समय भूतल पर दूसरा नहीं था, उन्हीं धनञ्जय को, हाथ मे स्त्रियों का-सा कङ्गन और कमर मे कर्धनी पहन कर विराट्राज की कन्याओं को नाचना-गाना सिखाना पड़ा था।

जिन भीमसेन मे अपार बल-वीर्य था, जो बड़े-बड़े वृक्षों को सहज मे समूल उखाड़-उखाड़ कर शत्रुओ पर फैंक मारते थे, जिन्होंने कीचक और बकासुर प्रभृति राक्षसो को हँसते-हँसते मार डाला था, जिनसे सारे ही कौरव-भाई सशंक रहते थे, उन्हीं भीम को, विराट्राज के रसोईघर मे, रसोइये का काम करके, अपने दिनों को धक्का देना पड़ा था। जब विराट् के गर्वित कुटुम्बी उन्हें "भो रसोइया" कह कर पुकारते थे, तब द्रौपदी का आत्मा जल कर भस्म हो जाता था। पर कर्मफल अवश्य भोगने होंगे, यह समझ कर पाण्डव सब सहते थे।

जिन धर्मराज युधिष्ठिर के अर्जुन-भीम और नकुल-सहदेव सरीखे त्रिभुवन-विजयी भाई मौजूद थे, जिनके पाञ्चालपति

धृष्टद्युम्न जैसे महा बलवान योद्धा नातेदार थे, जिनके ऊपर स्वयं त्रिलोकीनाथ कृष्ण की पूर्ण कृपा थी, उन धर्मराज को भी अपना तेज, बल और उत्साह छिपाकर बनवास मे दिन काटने पड़े और विराट्राज की सभा में राजा को जूआ खिलाना पड़ा। एक बार विराट् ने क्रोध में आकर, उनके पासा फेंक मारा। उससे रक्त की धार बह निकली। एक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा का यह अपमान क्या कम था? पर बेचारों ने समय देख कर सब सहा। क्या करते? विधाता वाम था। प्रारब्ध मे यह जिल्लत भी लिखी थी।

इस जगत् मे जो अनुपम रूपवत थीं, उनका यौवन स्थिर था, जो गुणो की आगार थीं, जो महाबली पाञ्चालस्वामी धृष्टद्युम्न की सगी बहिन थीं, जो जगत् विजयी पाण्डवों की धर्मपत्नी और पटरानी थीं जो त्रिभुवन पति कृष्ण की प्यारी सखी थीं, उन्हीं कृष्णा या द्रौपदी को महारानी होने पर भी, मत्स्यराज के रनवास मे, सैरन्ध्री—नायन का काम करना पड़ा। रनवास की गर्वीली स्त्रियाँ जब उन्हे सैरन्ध्री—नायन कह कर पुकारती होंगी; तब महारानी द्रौपदी को क्या कष्ट न होता होगा? उनका दिल इस तरह अपमानित होने से क्या जल जल कर खार-खार न होता होगा? पर वे बुद्धिमती थीं; जानती थी, कि पूर्व-जन्म के कर्म फल अवश्य ही भोगने होंगे; इसलिए सब सहती थी।

जो महाराजा नल अश्व विद्या और पाक-क्रिया में जगत् में अद्वितीय थे, जो मन्त्र बल से बिना आग के आग जला लेते थे, जिनके अनुपम गुणों के कारण देवता भी उनसे डाह रखते थे—उनको भी वन वन की खाक छाननी पड़ी; और अपनी प्राणप्यारी, अनुपम सुन्दरी, त्रिलोक-मोहिनी सहधर्मिणी महारानी दमयन्ती को वन में अकेली सोती छोड़ कर, अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण की कोचवानगीरी करके दिन काटने पड़े।

जिन्होंने श्रेष्ठ सूर्य्य वंश में जन्म लिया था, जिनके पिता महेन्द्र-मित्र महाराजा दशरथ थे, जिनके गुरु स्वयं महामुनि वशिष्टजी जैसे महात्मा थे, जिनके श्वसुर जगत के ज्ञानियों में अग्रगण्य महाराज विदेह—जनक थे, जिनकी सहधर्म्मिणी स्वयं जनकतनया जानकी थीं, जो स्वयं विष्णु भगवान के अवतार थे,— उन भगवान् रामचन्द्रजी को भी अपनी प्राण-प्यारी लक्ष्मीस्वरूपा महासुकुमारी सीता को साथ लेकर वन-वन डोलना पड़ा।

दिल्लीश्वर शाहन्शाह सम्राट् हुमायूँ को शेरशाह से पराजित होने पर, सिन्ध के निर्जल और निर्जन रेगिस्तानों में अपनी गर्भवती बेगम को साथ लिये-लिये महाकष्ट भोगने पड़े।

बादशाहों के बादशाह, यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियन को भी अनेक बार कारागार प्रभृति के सैकड़ों असहनीय कष्ट झेलने पड़े।

भूतपूर्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम, जिनके समान कूटनीतिज्ञ और राजनीति की बारीकियों को जानने वाला इस भूतल पर, इस जमाने मे, दूसरा समझा नहीं जाता, जिन्होने अपनी राजनीति की चालो से अच्छे अच्छे चतुर राजनीतिज्ञो की बुद्धि के दिवाले निकलवा दिये, जिन्होंने अपनी शक्ति और बुद्धि से चार साल तक पृथ्वी के प्रायः सभी नरपालो से लोहा लिया और पृथ्वी को अपनी उँगली पर नचाया, जिनकी युद्धचातुरी के कारण पृथ्वी के कई सर्वश्रेष्ठ महाप्रतापी राज्यो को अपने अस्तित्व तक मे सन्देह हो गया था, उन्हीं महाबली महापराक्रमी अद्वितीय राजनीतिज्ञ सम्राट् के कर्मों मे क्या लिखा, था सो पाँच साल पहले कौन जानता था? जिनकी हुङ्कार से मही के प्रायः सभी महीपाल काँप उठते थे, आज वे ही सम्राट अपने जीते जी भूतपूर्व सम्राट् कहलाते हुए, एक छोटे से राज्य हॉलेण्डकी शरण मे रह कर अपना समय काट रहे हैं। (इस जून सन् १९४१ मे वे स्वर्ग को सिधार गये)

बहुत कहने से क्या? कर्मफल सभी भोगने पड़ते हैं। कोई भी बच नही सकता। बुद्धिमानो को ऐसे-ऐसे महात्मा और महाबलियो की विपद् कहानियाँ याद करके, अपने चित्त को

---

† जगत जानता है, कि भू० पू० जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम अति का अभिमान करने और अधर्म का पक्ष लेने से हारे; पर अदृष्टवादी यही कहेंगे, कि उनके पूर्वजन्म के पुण्य क्षीण होगये थे, इसी से हारे और दुःख भोग रहे हैं। इस जून सन् १९४१ में हालैण्ड के डूर्न नगर में उनका स्वर्गवास होगया।

शान्त रखना चाहिये और जिस राह से प्राचीन काल के महापुरुष गये हैं, उसी राह पर चल कर, उनके पदचिह्नों का सहारा लेकर, उनको आदर्श मान कर, अपने दुःख के दिन काटने चाहियें। प्राचीन काल के महापुरुषों के पदचिह्नो का अनुसरण करने से विपद् उसी तरह सहज में कट जाती है; जिस तरह रेगिस्तानों में अपने से पहले राह तय करने वालों के पद चिह्नो को देख-देख कर चलने से यात्री अपनी-अपनी मञ्जिल मकसूद पर आराम से पहुँच जाते हैं *। किसी कवि ने कहा है:—

सज्जन-चरित्र सिखाते हम भी,
कर सकते है निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर
छोड़े चरण-चिह्न निर्मल॥
चरण-चिह्न ये देख कदाचित्,
उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर,
नौका जिनकी टकराई॥

विपद् अकेले नहीं आती।

सर्वस्व नाश हो जाना या छिन जाना एक विपद् है। राजा पर दूसरे राजा का चढ़ आना एक विपद् है। रोज़-

* A noble example makes difficult enterprises easy.—Goethe

गार मे एक दम से घाटा लग जाना और उस समय धन का घर मे अभाव होना और बाजार से उधार न मिलना एक घोर विपद् है‡। स्त्री-पुत्र प्रभृति प्यारो का मर जाना या किसी तरह वियोग हो जाना भी एक विपद् है। इसी तरह मनुष्य पर अनेक प्रकार की मुसीबतें आया करती है। एक विपद् के आते ही, फिर और भी अनेक उपद्रव होने लगते हैं। इधर रोजगार में घाटा लगता है, उधर साहूकार नालिश करते हैं, साथ ही घर मे आग लग जाती है और बाल-बच्चे बीमार हो जाते हैं इत्यादि*। अंगरेजी मे एक कहावत है—"Misfortunes never come singly" विपत्तियाँ अकेली नहीं आया करतीं। नीति शास्त्र में भी कहा है—

> क्षते प्रहारा विपतन्त्यभीक्ष्णा,
> अन्नक्षये वर्द्धति जठराग्निः ।
> आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति,
> वामे विधौ सर्वमिदं नराणां ॥

घाव मे बारम्बार चोट लगती है; अन्न न होने पर भूख बढ़ जाती है, आफत मे बैरी बढ़ जाते है; विधाता के प्रतिकूल होने से मनुष्यों को ये सब होते हैं।

‡ Poverty is the greatest calamity, riches the highest good.—Goethe"

* इटाली में एक कहावत है—"Blessed is the misfortune that comes alone." स्पेन में भी एक कहावत है—"Welcome. misfortune, if thou comest alone."

विपद् में कोई संगी नहीं।

विपद् मे भाई-बन्धु भाईबन्दी का नाता तोड देते हैं। अपने नातेदार को नातेदार कहने मे भी उन्हे कहीं लज्जा और कहीं भय होता है। अपने मुसीबतजदा रिश्तेदार को दो-चार दिन के लिये अपने घर ठहराना भी वे बुरा समझते हैं और काम पड़ने से, जेल होता हो तो भी, फाँसी होती हो तो भी, पैसा होते हुए भी, पैसा से सहायता नहीं देते। रात-दिन पास बैठने वाले, हर तरह गुलछर्रे उड़ाने वाले, विपद् में साथ रहने की प्रतिज्ञा करने वाले और समय पर जान तक दे देने की डींग मारने वाले दुर्दिन में मुँह से भी नहीं बोलते*। बोलते हैं, तो ऐसी बाते कहते हैं, जिनसे दुखिया के दिल में हजारों बिच्छुओं के डङ्क मारने की सी घोर वेदना होने लगती है। गँवार और निर्बुद्ध लोग चतुरचूड़ामणि को भी गँवार और बे-अक्ल कहने लगते हैं—गधे घोड़ों के लात मारने लगते हैं। और तो क्या—बाज-बाज पिता भी पुत्र से वैरभाव रखने लगते हैं; उसके दुःखो पर हँसते हैं और उसका अनिष्ट चिन्तन करते हैं। बाज-बाज अग्नि की साक्षी देकर, वेदमन्त्रों द्वारा परिणीता, सुख-दुःख मे हिस्सा बँटानेवाली धर्मपत्नियाँ तक विपद् मे फँसे

---

* So long as you are prosperous you will reckon many friends, if fortune frowns on you, you will be alone —Ovid

हुए पतियों से नफ़रत करने लगती हैं और वाक्यवाणों से उनके हृदय को चलनी बना डालती हैं। बहुत कहाँ तक कहें ? हर समय जी हुजूर, जी हाँ, जो आज्ञा सरकार, कहने वाले जरा भृकुटी टेढ़ी करने से काँप उठने वाले नौकर और दास-दासी तक विपद्ग्रस्त के शत्रु हो जाते हैं। स्वामी की विपद् की खबर पाते ही, सब एक हो जाते है। रात दिन सिर जोड़-जोड़ कर मालिक के छिद्र ढूँढ़ा करते हैं और स्वामी के शत्रुओ को स्वामी के अनिष्ट साधन मे साहाय्य किया करते है। किसी ने बहुत ही ठीक कहा है—' So many servants, so many enemies" जितने नौकर, उतने दुश्मन। बात एक दम सच है। हम कई बार स्वयं ऐसा भोग चुके हैं। नौकर-चाकर सबसे बुरे शत्रु होते हैं। इन्हे नमक का जरा भी खयाल नहीं आता। और शत्रुओ को चाहे दया आ जाय, पर इन्हे दया नहीं आती। ये लोग स्वामी के सभी पुराने उपकारों पर पानी फेर कर स्वामी के शत्रुओं मे जा मिलते है। उन्हें अपने स्वामी की सच्ची झूठी निन्दायें सुना-सुना कर रिझाते है और फिर अपने स्वामी का महासंकट में परित्याग करके शत्रुओ में से किसी के यहाँ लग जाते है। हाय ! विपद् में सिवा ईश्वर के कोई भी साथी नही रहता। अपने तन के कपड़े भी अपने दुश्मन हो जाते हैं। महाकवि दाग ने कहा है और राई-रत्ती सच कहा है:—

होता नहीं है कोई, बुरे वक्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं, ख़िज़ाँ मे शजर से दूर॥

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती है देखो दमनिजा।
वक्त पड़ता है, तो सब आँख चुरा जाते हैं॥

मनुष्य जब सब तरह से निराश हो जाता है, आँख पसार कर देखने पर जब उसे कोई भी मददगार नजर नहीं आता, तब उसे दीनबन्धु, दयासिन्धु, अनाथनाथ भगवान् की याद आती है। ज्यों ही वह आर्त्त होकर प्रभु को पुकारता है, आशुतोष भगवान् का आसन तत्काल हिलने लगता है। वे संकट-भञ्जन भक्तमनरञ्जन, फौरन ही नगे पैर भक्त को विपद् से बचाने के लिये दौड़ते और उसकी रक्षा करते हैं* । नीचे की ग़जल मे इसका चित्र खूब खींचा गया है:—

ग़ज़ल ।

दुःख दूर कर हमारा, संसार के रचैया।
जल्दी से दो सहारा, मझधार में है नैया ॥१॥
तुम बिना कोई हमारा, रक्षक नहीं यहाँ पर।
ढूँढा जहान सारा, तुमसा नहीं रखैया ॥२॥
दुनियाँ में खूब देखा, आँखे पसार करके।
साथी नहीं हमारा, मा बाप और भैया ॥३॥
सुख के हैं सब सगाती, दुनियाँ के यार सारे।
तेरा ही नाम प्यारा, दुःखदर्द से बचैया ॥४॥

---

* Ask, and it shall be given you, seek, and you shall find, knock, and it shall be opened to you.—Bible

दुनिया में फँसके हमको, हासिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा, कोई नहीं सुनैया ॥५॥
चारों तरफ से हम पर, ग़म की घटा है छाई।
सुख का करो उजेरा, परकाश के करैया ॥६॥
अच्छा बुरा है जैसा, राज़ी में राम रहता।
चेरा है यह तुम्हारा, सुध लेउ सुध लिवैया ॥७॥

विपद् आने से पहले ही घबराना ठीक नहीं।

बहुत से निर्बुद्धि विपद् की आशङ्का-ही-आशङ्का में चिन्ता-ग्रस्त होकर अपने रूप, बल और बुद्धि को खो देते हैं; असमय में ही हमारी तरह बालों को पका लेते * हैं और चालीस बरस उम्र में सत्तर वर्ष के से हो जाते हैं। निर्बुद्धि अपनी निर्बुद्धिता का फल आप ही नहीं भोगते; अपने नन्हें-नन्हें बच्चों और अपनी स्त्री तक को भुगाते हैं। उनके हर समय मनहूस की सी सूरत बनाये रहने से, उनकी स्त्री और छोटे बच्चे भी चिन्तामग्न या उदास रहने से पीले पड़ जाते हैं।

कहते हैं,—चिन्ता से चिता भली। चिता एक बार ही मनुष्य को जला-बला कर खाक कर देती है, पर चिन्ता पिशाचिनी बड़े-बड़े दुःख देकर बुरी तरह से जलाती है। जिस पर चिन्ता की कृपा होती है, उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता और आयु भी

(* "Care brings grey hairs")

कम हो जाती है। किसी ने सच कहा है—"Anxiety is the Poison of life" चिन्ता जीवन का विष है*। अतः भूल कर भी चिन्ता न करनी चाहिये। विपद् आये पहले, तूफ़ान का तूफ़ान करना महामूर्खता है; क्योंकि अनेक बार जिस विपद् की आशंका ही आशंका में लोग उसके आने के पहले ही पूरे हो लेते हैं; और वह आती भी है और नहीं भी आती है। इसीलिये किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है—Never trouble yourself with troubles, till trouble troubles you जब तक दुःख न आवे, तब तक अपने तईं दुःख से दुःखी न करो।

इसमें दोनों ही तरह हानि है! अगर विपद् न आई, तो शरीर का खून-माँस जलाना, घरवालों को कष्ट देना और धन्धे-रोजगार को सत्यानाश में मिलाना वृथा ही हुआ। मान लो; विपद् आई; तो आपका पहले से ही अपने बुद्धि, बल, साहस प्रभृति को क्षय कर लेना भला न हुआ; क्योंकि विपद् में मनुष्य इनके बल से ही तो छुटकारा पाता है। जो हर हालत में हँसता रहता है, उसके बल और बुद्धि नष्ट नहीं होते—उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है‡। यदि दैवात् विपद् आ भी जाती है,

---

* Care's an enemy to life.—Twelfth Night, i 3.

‡ Cheerfulness is health, the opposite melancholy, is disease.—Haliburton.

Cheerfulness is the very flower of health.—Schopenhaur.

तो वह आसानी से उसके पार हो जाता है। इसलिये दुःख में खुश ही रहना अच्छा है। महाकवि दाग ने खूब कहा है:—

दिल दे तो इस मिज़ाज का पर्वरदिगार दे।
जो रंज की घड़ी भी खुशी में गुज़ार दे॥

विपद् में क्या करना चाहिये ?

—::०::—

जब तक विपद् न आवे, उससे घबराना न चाहिये। हाँ उसका ख़याल ज़रूर रखना चाहिये। जब विपद् आजाय, तब उसके नाश का यथोचित उपाय करना चाहिये। जो विपद् में फँस कर मोह से केवल रोता है, हर समय चिन्तित और शोकाकुल रहता है, उसका मन बीमार हो जाता है। मन के बीमार होने से, हाथ-पैरों का बल निकल जाता है, क्योंकि बल का सारा दारमदार मन पर ही है; इसलिये विपद् में रोना, घबराना और चिन्तित रहना, अपनी विपद् को बढ़ाना है। घबराने वाले की विपद् का अन्त नहीं आता। विपद् में मनुष्य को "विचार" बचाता है; इसलिये विपद् में विचार से काम लेना ही चतुराई है। अविचारवानों को विपद् पद पद पर सताती है। पण्डितों ने कहा है:—

---

* Cheerfulness is the best promoter of health and is as friendly to the mind as to the body —Addison,

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः ।
तस्योच्छेद समारम्भो विषाद परिवर्जनम् ॥

नीतिकुशल पण्डितों ने विपद् की एक ही मुख्य औषधि कही है—"दुःख के नाश करने का उपाय करना और विषाद् त्यागना।"

विपद् में धैर्य्य ही सच्चा रक्षक है ।

विपद् में अच्छे-अच्छे साहसिकों के साहस के दिवाले हो जाते है, बड़े-बड़े बहादुर घबरा उठते हैं। पर जो विपद् में घबरा जाते हैं और सब्र को हाथ से छोड़ देते हैं, वे शीघ्र ही मारे जाते है। विपद् मे न घबराने वाले और धैर्य्यावलम्बन करने वाले बहुधा बच जाते है* । इसलिए विपद् से धैर्य्य को हरगिज न त्यागना चाहिये। कहा—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि दैवे
धैर्य्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्स ।
जाते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे,
सांयात्रिको वाञ्छति कर्म एव ॥

---

* The man who in wavering times is inclined to be wavering only increases the evil, and spreads it wider and wider but the man of firm decision fashions the universe.—Goethe

Whose despises death escapes it, while it overtakes him who is afraid of it —Curt.

दैव के नाराज होने पर भी धीरज न छोड़ना चाहिये: क्योंकि धीरज से कदाचित् स्थिति सुधर जाय: जहाज के डूबने पर भी, पोत-वणिक् श्रम करने की ही इच्छा करता है ।

सारांश— विपद् में घबराओ मत, धीरज रक्खो: चित्त को चिन्ताओं से शुद्ध करके, शीतल दिमाग से विपद् से छुटकारा पाने के उपाय सोचो । परमात्मा की कृपा हुई, पुण्यबल हुआ; तो निश्चय ही, आपकी बुद्धि द्वारा ही घोर विपद् से आपकी मुक्ति हो जायगी । विपत्ति में बुद्धि ही बचाती है,—इस पर हमें एक किस्सा याद आया है । सुनिये —

एक दिन एक बन्दर यमुना नदी में तैर रहा था । किसी घड़ियाल ने उसका पैर पकड़ लिया । बन्दर ने बहुत कुछ कोशिश की, पर घड़ियाल ने बन्दर का पैर न छोड़ा । इतने में एक बन्दर किनारे से बोला— "अरे क्या हुआ? क्यों रुक गया?" उसने जवाब दिया—"यार! क्या बतावें, घड़ियाल ने एक लकड़ी अपने मुँह में दबा रक्खी है और समझता है कि, उसको हाथ से पकड़ रक्खा है।" यह सुनते ही घड़ियाल ने बन्दर का पैर छोड़ दिया । बन्दर की जान बच गई । अगर बन्दर घबड़ा जाता और होश भूल जाता, तो क्या बचता? विपत्ति में जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती, वह निश्चय ही बच जाता है । कहा है—

उत्पन्नेषु विपत्तेषु बुद्धिर्यस्य न हीयते ।

स एव दुर्गं तरति, जलस्थो वानरो यथा ॥

दोहा।

छीन पत्र पल्लवित तरु, छीन चन्द्र बढ़वार।
यह लखि सज्जन दुःखहू पाय न लहहि विकार ॥८८॥

88 A tree being pruned expands (anew). The moon after having lost her brightness is sure to regain it Considering this the holy men do not feel much sorrow when they are beset by calamities in this world

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलिभिद्भग्नः परैः संगरे
तद्युक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८९॥

जिसके बृहस्पति के समान मन्त्री, वज्र-सदृश शास्त्र, देवताओं की सेना, स्वर्ग जैसा किला, ऐरावत-जैसा वाहन और स्वयं विष्णु भगवान् की जिन पर कृपा है—ऐसे अनुपम ऐश्वर्य्य-वाला इन्द्र भी शत्रुओं से युद्ध में हारता ही रहा, इससे सिद्ध होता है, कि पुरुषार्थ वृथा और धिक्कार योग्य है। एकमात्र दैव ही सब की शरण है।

मतलब यही है, कि प्रारब्ध या दैव के मुकाबले में पुरुषार्थ कोई चीज नहीं। जिस इन्द्र का इतना वैभव है और जिसके सिर पर स्वयं जगदीश्वर का हाथ है, वह इन्द्र भी युद्ध में सदा हारता ही रहा—इस घटना को देख कर "पुरुषार्थ" को तुच्छ और दैव को सर्वोपरि मानना ही पड़ता है। और भी दृष्टान्त लीजिये:—

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो,
रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।
शास्त्रञ्च यस्योशनसा प्रणीतं,
स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥

जिसका किला त्रिकूट पर्वत, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा, कुबेर से धन की प्राप्ति और जिसके यहाँ शुक्राचार्य्य-प्रणीत शास्त्र था, वह रावण भी दैव वश नष्ट हो गया।

शुक्रनीति मे लिखा है—

कालानुकूल्यं विस्पष्टं राघवार्जुनस्य च ।
अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत् ॥
महती सत्क्रिया अनिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके ।
बलिदानेन संबद्धो हरिश्चन्द्रस्तथैव च ॥

रामचन्द्र और अर्जुन की काल-सम्बन्धी अनुकूलता संसार-प्रसिद्ध है। जब दैव अनुकूल होता है, तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती है, किन्तु जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है, तब बड़े भारी सत्कर्म का फल भी अनिष्ट ही होता है। देखिये, बलि और राजा हरिश्चन्द्र दान करने से भी बन्धन मे पड़े।

जो भीष्म वसुओ के अवतार थे, जो भीष्म देवताओ से भी अजेय थे, जिन भीष्म ने क्षत्रिय-कुलनाशक परशुराम जी को भी युद्ध में नीचा दिखाया था, जिनके जोड़ का योधा उस समय पृथ्वी पर दूसरा न था,—उन्हीं भीष्म की, गोहरण के समय,

विराट् नगरी में अर्जुन द्वारा पराजय हुई। जिस अर्जुन ने स्वर्ग में जाकर इन्द्र का कार्य्य साधन किया, जिस अर्जुन ने अपने बाहुबल से पृथ्वी के समस्त राजाओं को पराजित करके धनदण्ड लिया। जिस अर्जुन ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य्य के भी छक्के छुड़ा दिये, जिस अर्जुन ने महातेजस्वी सूर्य्यपुत्र कर्ण को युद्धक्षेत्र में परास्त कर दिया, जिस अर्जुन ने गन्धर्वों को भी अपनी युद्ध-कला-कुशलता से नीचा दिखा दिया, वही अर्जुन, प्रभासतीर्थ में, यादव स्त्रियों की भीलों से रक्षा न कर सका! क्या यह कम आश्चर्य की बात है? परमात्मा की विचित्र गति है! उस लीलामय की लीलाओं को समझना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। सूरदासजी ने क्या खूब कहा है:—

भजन।

दयानिधि! तोरी गति लखि ना परे॥ टेक॥

गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरे।
सीता-हरण मरण दशरथ को, विपति में विपत्ति परे॥ १॥
एक गऊ जो देत विप्र कों, सो सुरलोक तरे।
कोटि गऊ राजा नृग दीनी, सो भ-कूप परे॥ २॥
पिता-वचन पलटे सो पापी, सो प्रहलाद करे।
जिनकी रक्षा कारण तुम प्रभु, नरसिंह-रूप धरे॥ ३॥
पाण्डवजन के आप सारथी, तिन पर विपत परे।
दुर्योधन को मान घटायो यदुकुल नाश करे॥ ४॥

तीन लोक इस विपत के वश मे, विपता वश ना परे।
सूरदास या को सोच न कीजे, होनी तो होके रहै ॥२॥

सारांश यही है कि, दैव की अनुकूलता से न कुछ आदमी भी सिद्धि प्राप्त करता है और दैव की प्रतिकूलता से महाबली और महाबुद्धिमान भी पराजित होते और मुँह की खाते हैं। दैव की कृपा होने से बिगड़े काम बन जाते हैं और उसकी अकृपा होने से बने हुए काम भी बिगड़ जाते हैं। दैव नामर्द को मर्द और मर्द को नामर्द, मूर्ख को बुद्धिमान और बुद्धिमान् को मूर्ख, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बना देता है। सारी शक्तियाँ दैव के हाथ में हैं; इसलिये दैव ही मुख्य है। गिरिधर कविराय भी यही कहते हैं:—

अदृष्ट समान बलिष्ट नहिं, देखो जग में मीत।
करै भगाड़ा शूर को, पुनि कायर की जीत॥
पुनि कायर की जीत, धनी को करै है कंगला।
निर्धन को करै धनी, शहर करि डारे जंगला॥
कहैं गिरिधर कविराय, इष्ट को करे अनिष्ट।
पुनि अनिष्ट को इष्ट, ऐसो कौन अदृष्ट॥

छप्पय।

सुरगुरु सेन पति ईश सुरन की सेना जाके।
शस्त्र हाथ लिये बज्र स्वर्ग सो दृढ़ गढ़ ताके॥
ऐरावत-असवार प्रभू की परम अनुग्रह।
ऐसी सम्पत्ति साज सहित सोहत बासव यह॥

सोयुद्ध माहि दानवनसों लहत पराजय खोय पति।
शोभा समाज सबही वृथा, सब सों अद्भुत दैवगति ॥८९॥

89 The god Indra, who has Vrihaspati for his councillor, a thunderbolt for his weapon, the other gods for his soldiers, the paradise for his fortress, Vishnu for his ally and the Airavata elephant to ride upon is (often) defeated in battle by his powerful enemies (the Asuras) despite all this power and strength. (This proves that) one should take shelter in Fate alone. (Dependance on) one's own energies is worthless

कर्मायत्तं फलं पुंसां, बुद्धि कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया भाव्यं, सुविचार्यैव कुर्वता ॥९०॥

यद्यपि मनुष्यों को कर्मानुसार फल मिलते हैं और बुद्धि भी कर्मानुसार हो जाती है; तथापि बुद्धिमानों को खूब सोच-विचार कर ही काम करने चाहियें।

बुद्धि कर्मानुसार कैसे हो जाती है ?

मनुष्यों को पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही बुरे या भले फल मिलते हैं। जैसे फल मिलने वाले होते हैं, वैसे ही होनहार होती है; जैसी होनी होती है वैसी ही मनुष्य की बुद्धि हो जाती है। अगर भली होनी होती है, तो बुद्धि भली हो जाती है और अगर बुरी होनी होती है, तो बुद्धि बुरी हो

जाती है। होनहार के आगे बड़े से-बड़े बुद्धिमानों की नहीं चलती वृन्द कवि महाशय कहते हैं: –

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्ध।
होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्ध॥

जैसी हो भवितव्यता, तैसी बुद्धि प्रकाश।
सीता हरवे तें भयो, रावण-कुल को नाश॥

सब की मर्म विनाश में, उपजत मति विपरीत।
रघुपति मार्यौ लंकपति, जो हर लेगयो सीत॥

मति फिर जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछे गये, राम गँवाई सीत॥

जब मनुष्य की होनहार बुरी होती है, जब उस पर विपद् आने वाली होती है; तब वह जान बूझकर ऐसे काम करता है, जिससे विपद् न आती हो तो आवे। मनुष्य जानता है, कि अमुक वन मे रात के समय अकेला जाऊँगा, तो डाकुओं-द्वारा मारा जाऊँगा। और लोग भी यही बात समझाते हैं; उसे जाने को मना करते है पर वह होनी के वश, अपने अन्तःकरण की और अपने मित्रों की न मान कर जाता है और मारा जाता है। रावण नीति का अद्वितीय विद्वान् था। क्या वह जानता न था, कि परस्त्री-हरण का परिणाम अच्छा नहीं? जानता तो था, पर होनी उसके सिर पर सवार थी, इससे उसकी बुद्धि में सीता को चुपचाप हर ले जाना ही ठीक जँचता था। राजा नल क्या जूए की बुराइयों को न जानते थे?

रामचन्द्र क्या नहीं जानते थे कि, सोने का हिरन नहीं होता ? पर वे उसके पीछे सीता को छोड़ कर भागे। लक्ष्मण और सीता क्या नहीं जानते थे, कि राम को मारने वाला त्रिलोकी में कोई नहीं है ? फिर भी लक्ष्मण सीता को कुटिया में सूनी छोड़ भागे। इन बातों से साफ मालूम होता है, कि मनुष्य प्रारब्ध के वश हो, जान-बूझ कर भी, बुरे काम करता है। नीति में कहा है—

जानन्नपि नरो दैवात, प्रकरोति विगर्हितम्।
कर्म किं कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कथम् ॥

असम्भवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥

मनुष्य जानकर भी प्रारब्ध के वश हो, निन्दित कर्म करता है, नहीं तो संसार में निन्दित कर्म किसे अच्छा लगता है ?

सोने के हिरन का होना असम्भव है; तो भी रामचन्द्रजी को माया-मृग का लालच आ गया। बहुधा, विपत्ति के समय, बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलीन हो जाती है।

इन दृष्टान्तों से अच्छी तरह समझ में आ जाता है, कि कर्मफलों के अनुसार जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धिमान-से-बुद्धिमान की बुद्धि मारी जाती है। अगर यह बात न होती

तो पण्डित-शिरोमणि रावण और विष्णु के अवतार जगदीश रामचन्द्रजी क्यो विपद् भ गते ? जब स्वयं राम और रावण में ही भूले हुई, तब और मनुष्यो की क्या गिनती है ?

फिर भी विचार कर काम करना चाहिये ।

कर्म-फलों के अनुसार बुद्धि हो जाती है, इसमे जरा भी शक नहीं, फिर भी नीतिज्ञ पण्डित विचार कर काम करने की सलाह देते हैं। विचार पूर्वक काम करने से मनुष्य दोष का भ.गी नही होता और स्वय उसके दिल मे खटक नहीं रहती। किरातार्ज्जुनीय महाकाव्य के दूसरे सर्ग मे कहा है—

सहसा विदधीत न कि.ा—
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुतेहि विमृष्य कारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

हठात् किसी काम को न करना चाहिये। बिना विचारे काम करने से बड़ी भारी विपत्ति की सम्भावना रहती है। विचार-पूर्वक काम करने वाले के पास गुण लोभी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आ जाती हैं।

सारांश—यह सच है, कि बुद्धि होनहार के अनुसार हो जाती है। फिर भी; बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है, कि वे खूब सोच-विचार कर काम करें। कहा है:—
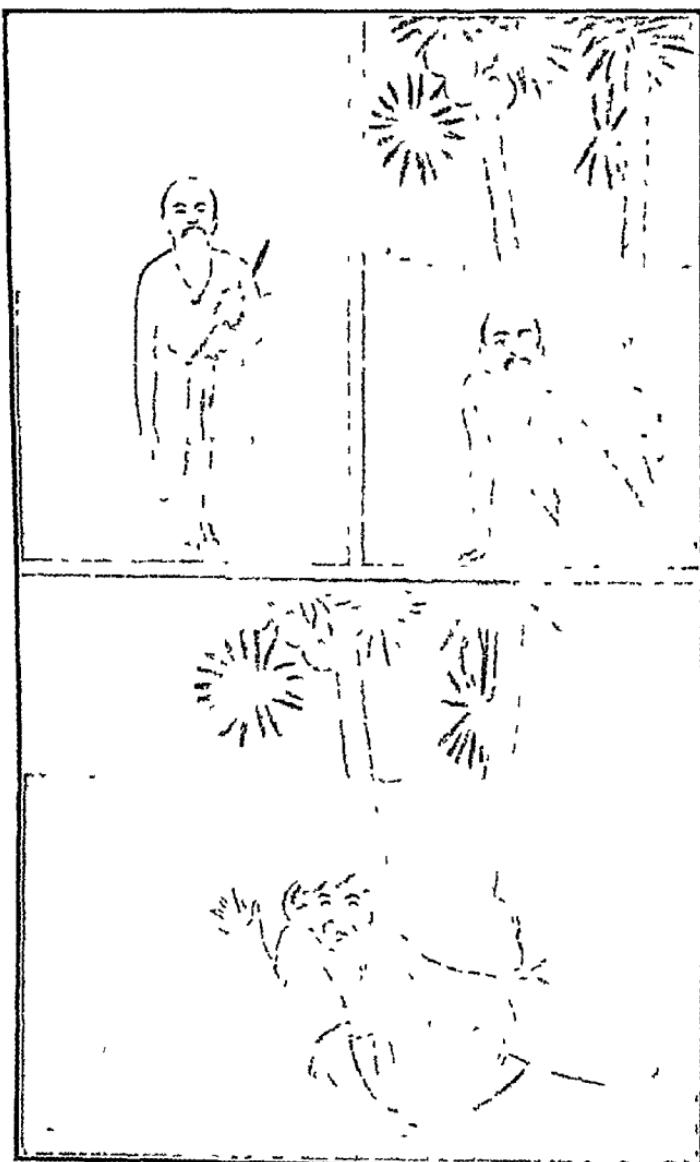
इस चित्र से गंजे की दशा देखने से ज्ञात होता है, कि भाग्यहीनों की विपत्ति भी उनके साथ ही साथ रहती है।

दोहा ।

फलहू पावत कर्म तें, बुद्धिहु कर्म-अधीन ।
तद्यपि बुद्धि विचार के, कारज करो प्रवीन ॥९०॥

90. (Although) fruits are dependent upon actions and one's reason also follows the same, yet a wise man should do everything after conisdering it well.

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैःसंतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥९१॥

किसी गंजे आदमी का सिर धूप से जलने लगा। वह छाया की इच्छा से दैवात् एक ताड के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुँचते ही, एक बडा ताड-फल उसके सिर पर बडे जोर से गिरा। उससे उसकी खोपडी फट गई। इससे सिद्ध होता है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है, उसमें विपत्ति भी प्रायः उसके साथ-ही-साथ जाती है।

किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है:—

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम् ।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्नियोजितम् ॥
यस्मिन् देशे च काले च वयसा यादृशेन च ।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥

बिना उद्योग किये भी, पुरुषों को दूसरे जन्मका शुभाशुभ फल, विधि के नियोग से मिलता ही है। जिस देश, काल और अवस्था मे, जिसने जैसा बुरा या भला कर्म किया है, उसका वैसा ही फल उसे भोगना होता है।

सारांश—अभागे की रक्षा कहीं भी नहीं; अभागे की विपत्ति अभागे के पीछे-पीछे रहती है। वह अपनी विपत्ति से बचने के लिए चाहे जितनी कोशिश क्यों न करे, बच नहीं सकता। कहते हैं, किसी मनुष्य को डाकुओं ने घेर लिया प्राण बचाने के लिये, वह सामने के वन मे भागा। वहाँ सिंह और हाथी उसके पीछे पड़ गये; तब प्राणरक्षा के लिये वह एक कूप मे कूद पड़ा। वहाँ उसे सर्प भक्षण कर गये।

छप्पय।

टांट उघारे मूढ़, बारहू सिर पर नाहीं।
तप्यौ जेठ की घाम, ताल की पकरी छाहीं॥
तहाँ तालफल एक, शीश पर परयो धड़ाके।
फूटि गया करि शोर, पीर बाढी तनु ताके॥
सुख ठौर जानि बिरम्यो सुख, तहाँ इतै दुख को सहत।
निर्भाग्य पुरुष जित जात तित, वैर विपति पीछहिं रहत॥९१॥

91 A bald-headed man, his head being scorched by the rays of the sun desirous of finding a shady place by ill luck went under a Tala (palm) tree. There his head was broken by a big fruit falling on it with a great noise Often wheresoever an unlucky person may go he is pursued by misfortunes.

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतांचविलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः९२

हाथी और सर्प को बन्धन में देख कर, सूर्य्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगते देख कर और बुद्धिमानों को दरिद्री देखकर—मेरी समझ में यही आता है, कि विधाता ही सबसे बलवान् है।

निस्सन्देह विधाता सबसे बलवान है। वह जो कुछ भाग्य में लिख देता है, उसे कोई बड़े-से-बड़ा नहीं मिटा सकता। कपाल के दोष से ही शिवजी नंगे रहते हैं और कपाल के दोष से ही विष्णु सर्प-शय्या पर सोते हैं। कुबेर के मित्र होने पर भी, महादेव जी चर्मवस्त्र पहनते और भिक्षा माँगते फिरते हैं। जो पक्षी सौ योजन की ऊँचाई से भी अधिक दूर से अपने भक्ष्य माँस को देख लेता है, वही जब प्रारब्ध खोटी होती है; जाल के फन्दे को पास से भी नहीं देख सकता; क्योंकि भाग्य का लिखा होकर रहता है। कहा है—

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी ।
दशशत करधारी ज्योतिषां मध्यचारी ॥
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणासौ ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥

वह आकाश में विहार करने वाला, अन्धकार को नाश करने-वाला, सहस्र किरणोंवाला, प्रकाशमान, तारागणों के बीच में

घूमने वाला चन्द्रमा भी भाग्य-वश, राहु से ग्रसा जाता है। इससे सिद्ध है, कि माथे पर लिखे को कोई मेट नहीं सकता।

छप्पय।

रवि शशि निशदिन फिरें, ग्रहण सों पीड़ा पावें।
वृहत्काय गज तुरत, तन्तु लघु सों बंध जावें॥
महा भयंकर सर्प, मंत्र वश रहें मौन गह।
योगी अटल अकाम, होय कामी इक क्षण महँ॥
मतिमान पुरुष दारिद्र वस, या जग बिच घूमत रहैं।
बलवान दैवगति है बड़ी, यह आश्चर्य सुकवि कहैं॥९२॥

92 Seeing the sun and the moon being attacked by an eclipse, the elephant and the serpent being made captive and the wise falling a prey to poverty, I conclude that Fate is a powerful thing

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः॥९३॥

बड़े ही दुःख की बात है, कि विधाता सब गुणों की खान और पृथ्वी के भूषण पुरुषरत्न को सिरज कर भी, उसका देह को क्षण-भगुर कर देता है। इसीसे विधाता की मूर्खता ही प्रकट होती है।

मनुष्य, अशरफुल मखलूकात—ईश्वर की सृष्टि की शोभा और पृथ्वी का भूषण होने पर भी, क्षणभंगुर है—उसकी आयु कुछ नहीं! वह पानी के बुलबुले की तरह क्षण-भर में ही नाश हो जाता है। ब्रह्मा गुणो की खान—पृथ्वी की शोभा

रूप पुरुष को बनाता है, यह तो अच्छी बात है, पर उसे पलक मारते नाश कर देता है, यह दुःख की बात है। यह विधाता की मूर्खता नहीं तो क्या है? यदि वह पुरुष को सदा स्थिर रहने वाला अजर और अमर बनाता, तो अच्छा होता। इसमें उसकी बुद्धिमत्ता दीखती; क्यों कि अपने बाग में आप ही वृक्ष लगा कर, आप ही जल सींच कर और बढ़ा कर, अपने ही हाथों से उसे कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है वह मूर्ख ही समझा जाता है।

सार—मनुष्य क्षणभंगुर है; पलक मारते नाश होता है। और चीजों की उम्र है, पर मनुष्य की कुछ भी उम्र नहीं; इसलिये इस चपला की चमक के समान चञ्चल धन, यौवन और जीवन पर अभिमान न करके, दिन-रात परोपकार करना चाहिये। अपना एक दिन और एक क्षण भी परोपकार और परमात्मा के नाम बिना न गँवाना चाहिये। नीचे के भजन और गजल प्रभृति से ग़फलत की नींद में पड़े हुए पाठकों को होश हो जायगा।

भजन।

राग काफी।

मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धरम ना मन में ॥ टेक ॥
हरी-हरी पाग केसरिया जामा, सोहत गोरे तन में।
वा दिन की तोहि खबर नहीं, जब आग लगेगी तन में। ॥ १ ॥

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, सुरत लगी है धन मे।
जब यमदूत पकड़ ले जावे, रह जाय मन की मन मे ॥ २ ॥
अम्ब की डाली तोता राजी, कोयल राजी बागन मे।
घरबारी तो घर मे ही राजी, साधु हैं राजी बन मे ॥ ३ ॥
ऐठत चलत मरोड़त मूछे, तेल चुवे जुलफन मे।
कहें कबीर भाई ऐसा हिजड़ा, कैसे लड़ेगा रण मे ? ॥ ४ ॥

गजल।

रहेगी मुख पर ये आब कब तक, रहेगा साहब शबाब कब तक।
यह नींद गफलत का ख्वाब कब तक, बचोगे आखिर जनाब कब तक ॥ १॥
यह शानशौकत गजब नजाकत, ये नाजनखरे अजब कयामत।
यह जुल्म जोरो सितम शरारत, बने रहोगे नवाब कब तक ॥२॥
है चन्दरोजा बहार गुलशन, न ये हमेशा रहे जवानी।
फरेब दे-दे पुलाव जर्दा, पकेगा कीमा कबाब कब तक ॥३॥
सताते हो बेगुनाह नाहक, किस घमंड मे फिरो हो भूले।
डरो न यारो गजब खुदा से, करोगे लाखों अजाब कब तक ॥४॥
रोते चले गये यहाँ से कितने, तुम्हीं अनोखे नहीं सितमगर।
खेलोगे छुप छुप के दाव कब तक, चलेगी पट पर ये नाव कब तक ॥५॥
झूठी हजारों बातें बनाते, बदी मे अब तक न बाज आते।
लाखों गले पर छुरी चलाते, रहे यह कातिल खिताब कब तक ॥६॥
गरीबों का जब गला दबाते, तरस न दिल में जरा भी खाते।
हरामजादों को जर लुटाते, रहै यह गुलगूं शराब कब तक ॥७॥

कज़ा का पैगाम है आने वाला, चलोगे आखिर करके मुँह काला।
पूछेगा हाकिम इसका हवाल, न दोगे आखिर जवाब कब तक ॥८॥
दुनिया में है ये दो दिन का मेला, हिलमिल के रहना है सबको लाजिम।
इन चार दिन की ही चाँदनी में, करोगे हमसे हिजाब कब तक ॥९॥
यह उमड़ा मौका मिले न हरदम, ऐ सोने वाले विचार देखो।
अब खोल आँखें दुनिया को देखो, रहेगा मुँह पर नकाब कब तक ॥१०॥
बेदार होकर बलदेव जल्दी, अब याद हक में लगाके दिल को।
पड़ा रहेगा बुतों के दर पर, बतादे खाना खराब कब तक ॥११॥

भजन सोरठा।

जोबन धन पॉवना दिन चारा, याको गर्व करे सो गँवारा ॥टेक॥
हाड माँस का बना पींजरा, भीतर भरा भँडारा।
रंग पतङ्ग लगायो ऊपर, कारीगर कर्तारा ॥१॥
पशू चाम की बनत पन्हैया, नौबत और नकारा।
याँ देही को कुछ न बनैगो, समझत नाहिं गँवारा ॥२॥
एक लख पुत्र सवा लख नाती, पुत्र-पौत्र परिवारा।
ऐसा मर्द गर्द में मिल गया, लंका का रखवारा ॥३॥
यह संसार हाट का मेला, वणिज करो व्यौपारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि भज उतरो पारा ॥४॥

गजल।

उठ जागरे मुसाफिर, किस नींद सो रहा है।
जीवन अमूल्य प्यारे क्यों मुफ्त खो रहा है ॥१॥

रहना न यहाँ पै होगा, दुनिया सराय फार्नी।
फंस कर बदी में प्यारे, क्यो मस्त हो रहा है ॥ २ ॥

ले ले धरम का तोषा, मत भूल ऐ दिवाने।
नेकी की खेती करले, क्यो पाप बो रहा है? ॥ ३ ॥

माता पिता वो भाई, होंगे न कोई साथी।
क्यो मोहरूपी, बोझा, नाहक को ढो रहा है ॥ ४ ॥

किश्ती तेरी पुरानी, हिकमत से पार करले।
ऐ दिल! अथाह जल मे, तू क्यों डबो रहा है ॥ ५ ॥

गजल।

नर तन को पाके मूरख, खोता फिजूल क्यों है ॥ टेक ॥

सुत मित्र बन्धु दारा, समझे तू किसको प्यारा।
मतलब का है ये दुनियाँ, रोता फिजूल क्यों है ॥ १ ॥

किसमे तू यारी करता, कुर्बान हो हो मरता।
अश्कों से अपने मुँह को, धोता फिजूल क्यों है ॥ २ ॥

यहाँ यार हैं बहुरंगे, दो दिनके तेरे संगी।
उलफत का बीज दिल में, बोता फिजूल क्यों है ॥ ३ ॥

क्यों बनता है दीवाना, जग है मुसाफिर खाना।
बेदार हो बेहूदे, सोता फिजूल क्यों है ॥ ४ ॥

बलदेव समझ सौदाई, सुध-बुध कहाँ गँवाई।
हसना बुतों के पीछे, रोता फिजूल क्यों है ॥ ५ ॥

दोहा।

पुरुष रत्न महि भूषणै, सर्व गुणा कर कीन्ह।
पै लागत मोहि मन्द विधि, क्षणभंगुर तन दीन्ह ॥ ६३ ॥

93. Alas ! pitiable is the unwisdom of the god Brahma, who creates man as a depository of all the good qualities and a gem fit for adorning the whole world, yet makes him (a thing) perishable in a moment.

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥६४॥

अगर करील के पेड़ में पत्ते नहीं लगते: तो इसमें वसन्त का क्या दोष है ? अगर उल्लू को दिन मे नहीं 'सूझता, तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? अगर पपहिये के मुख मे जल-धारा नहीं गिरती, तो इसमें मेघ का क्या दोष है ? विधाता ने जो कुछ भाग्य में लिख दिया है, उसे कोई भी मिटा नहीं सकता।

कहा है—

कोऊ दूर ना कर सकै, विधि के उल्टे अङ्क।
उदधि पिता तउ चन्द्र को, धोय न सक्यो कलंक ।

और भी कहा है—

यद्दैवेन ललाटपट्टलिखितं, तत्प्रोज्झितुं कः क्षम. ॥

छप्पय—कहा बसन्तहि दोष, करीरहि पात न आहीं।
उल्लुहि लगे अँध्यार दिवस, रवि दूषण नाहीं॥

ज्यों चातक मुख माहि, पड़े नहिं जल की धारा।
दूषण देवै जोग नहीं, घन देख विचारा ॥
यह सत्य जानुरे जीव जो, लिखे भाल में अंक विधि।
कह हरिजन इहि जग ताहि, कोउ मेटनहार न कोय विधि ॥६४॥

94. If no leaves sprout from a Karira tree, where is the fault of the Spring? If an owl can not see in the day, is the sun to blame? If the drops of rain do not fall into the mouth of a Chataka bird, surely the cloud is not responsible for it. Whatever the god Brahma has destined to be the fate of a man (his written on his forehead) can not be effaced by any one.

कर्म-प्रशंसा।

नमस्यामो देवान्नतु हतविधेस्तेपि वशगा।
विधिर्वन्द्यः सोपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना।
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥६५॥

देवताओं की हम वन्दना करते हैं, पर वे सब विधाता के अधीन दीखते हैं, इसलिये हम विधाता की वन्दना करते हैं, पर विधाता भी हमारे पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही फल देता है। जब फल और विधाता दोनों ही कर्म के वश में हैं, तब देवताओं और विधाता से

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः ।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥९६॥

जिस कर्म के बल से ब्रह्मा इस ब्रह्माण्डभाण्डोदर में सदा कुम्हार का काम कर रहा है, विष्णु भगवान दश अवतार लेने के महासंकट में पड़े हुए हैं, रुद्र हाथ में कपाल लेकर भीख माँगते रहते हैं और सूर्य्य आकाश मे चक्कर लगाता रहता है उस कर्म को हम नमस्कार करते हैं।

किसी कवि ने और भी कहा है—

रामो येन विडम्बितो, मदुमयश्चन्द्रः कलंकीकृतः ।
क्षाराम्बु सरितांपतिश्च नहुषु सर्पं कपाली हर. ॥
माण्डव्यो मुनि शूलपीडिततनुर्भिक्षाभुजः पाण्डवाः ।
नीतोयेन रसातलं बलिरसौ तस्मै नमः कर्मणे ॥

राम को जिसने वन-वन फिराया, सुन्दर चन्द्रमा मे कलंक लगाया, समुद्र को खारी किया, नहुष को सर्प बनाया, महादेव को कापालिक बनाया, माण्डव्य मुनि को सूली पर चढ़ाया, पाण्डवो से भीख मँगाई और राजा बलि को जिसने पाताल पठाया, उस कर्म को नमस्कार है।

सारांश यही है, कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश और भास्कर भगवान—ये सभी कर्म के अधीन हैं। इनके कर्मानुसार, इनकी

देखिये, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य्य सभी कर्म्माधीन है।

[पृष्ठ ४१८

प्रारब्ध में जो लिखा है, वही ये करते हैं। ये भी स्वाधीन नहीं, कर्म के आधीन हैं; इसलिये "कर्म" इनसे बड़ा है।

दोहा।

विधिको कियो कुम्हार जिन, हरि को दश अवतार।
भीख मँगावत ईश कों, ऐसो कर्म उदार ॥६६॥

96 Let us salute the actions that have given Brahma the duty of creating (the different objects in) the world like a potter making (all sorts of) earthen vessels, that have thrown Vishnu into the great inconvenience of undergoing the ten incarnations, that have made Shiva go a-begging with a mendicant's cup in his hand and that cause the sun to be always wandering in the sky

नैवाकृतिः फल नैव कुलं न शीलं।
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥६७॥

मनुष्य की सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और खब अच्छी तरह की हुई सेवा—ये सब कुछ फल नहीं देते; किन्तु पूर्वजन्म के कर्म ही, समय पर, वृक्ष की तरह फल देते हैं।

वृक्ष जिस तरह, समय पर, अनेक फल देता है; उसी तरह पहले जन्म के किये हुए कर्म भी, पहले समय पर अपना बुरा या भला फल देते हैं। सुन्दर सूरत-शक्ल, शील, विद्या और उत्तम सेवा से कुछ भी लाभ नहीं होता। किसी कवि ने खूब कहा है:—

भाग्यं फलति सर्वत्र, न च विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मी हरो विषम् ॥

सब जगह भाग्य फलता है; विद्या और पौरुष नहीं फलते हरि और हर दोनों ने मिल कर समुद्र मथा; पर हरि को लक्ष्मी मिली और महादेव को विष ।

शेख सादी भी कहते हैं:—

हुनरवर चो बखतश न बाशद् बकाम ।
बजाये रवद केश न दानन्द नाम ॥

जब भाग्य अनुकूल नहीं होता, तब हुनरमन्द जहाँ जाता है, वहीं उसको कोई नहीं पूछता—अथवा वह जाता ही ऐसी जगह है, जहाँ उसका कोई नाम तक नहीं लेता ।

गिरधर कविराय कहते हैं:—

कुण्डलिया ।

भाग्य सर्वत्र फलत है, न च विद्या पौरुप सरल ।
हरि हर सागर मथ्यो, हर को मिल्यो गरल ॥
हर को मिल्यो गरल, हरी ने लछमी पाई ।
पट भाग दो सम्पन्न, भाग की कही न जाई ॥
कह गिरधर कविराय, कोऊ मिल खेलें फाग ।
कोउ हमेशा रोवें, आयो अपने भाग ॥

उस्ताद ज़ौक ने भी कहा है:—

किस्मत से ही लाचार हूँ, ऐ जौक वगर्ना ।
सब फन में हूँ मैं ताक, मुझे क्या नहीं आता ॥

भाग्य से ही लाचार हूँ, वर्ना कौनसा फन है, जिसको मैं अच्छी तरह नहीं जानता ? मुझे क्या नहीं आता ?

योगिराज ने बहुत ही ठीक बात कही है। रोज आँखों से देखते है, कि बड़े-बड़े विद्वान् और उद्योगी मारे-मारे फिरते हैं, पूरा सा खाना-कपड़ा भी नसीब नहीं होता। दूसरी ओर ऐसे लोग भी नजर आते है, जो एक अक्षर भी पढ़े-लिखे नहीं; जिन्हे धोती बाँधना और बात करना भी नहीं आता, पर वे सहज मे ही, मामूली से उद्योग से, लाखों-करोड़ो के स्वामी हो जाते हैं, इन बातो से साफ मालूम होता है, कि सभी अपने-अपने कर्मानुसार फल पाते हैं।

जिन्होने पूर्वजन्म मे अच्छे फल नहीं किये है, जिन्होंने कुछ भी नहीं बोया है, वे इस जन्म मे कैसे काट सकते हैं ? जिसने आम बोये हैं, वह आम खाता है, पर जिसने बबूल बोये हैं वह आम कैसे पा सकता है ? पूर्वजन्म के अच्छे या बुरे कर्मों का फल मिलता है, पर समय पर ही मिलता है; क्योंकि वृक्ष अपने मौसम मे ही फल देता है। कहा है—

> काल पाय हू फलत है, शुभ रु अशुभ निज कर्म।
> ग्रीष्म बोये धान ज्यों, फलत शरद यों मर्म ॥

मनुष्य खूब याद रखे कि इल्म, अक़्ल, खूबसूरती और की हुई खिदमत से कोई फायदा नहीं—इनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है पहले जन्म के किये हुए पुण्यो से। यदि पुण्य होते हैं, तो उत्तम फल मिलता है, पर समय पर; इसलिये

उसे अधीर और निराश न होना चाहिये। कर्म को मुख्य समझ-कर सन्तोष करना चाहिये।

सार—सुख एक मात्र पूर्वजन्म के पुण्यों से मिलता है।

भजन।

(राग देश)

जब टेढ़े दिन आवें, ऊधो टेढ़े दिन आवें ॥टेक॥
कञ्चन छूत होत कर माटी, माँगे भीख न पावें ॥१॥
यार-दोस्त मुख से ना बोलें ढिंग बैठन सकुचावें ॥२॥
पढ़ा-लिखा कुछ काम न आवे, मूरख ज्ञान सिखावें ॥३॥
टेढ़ी लौंडी बनी कूबरी, जाको कंठ लगावें ॥४॥
चन्द्रकलासी बनी राधिका, ताकूँ जोग पठावें ॥५॥
अपना-अपना भाग सखी री, काकूँ दोष लगावें ॥६॥
सूरदास विधना के अक्षर तिल भर घटन न पावें ॥७॥

दोहा।

विद्या आकृति शील कुल, सेवा फल नहिं देत।
फलत कर्महु समय में, ज्यों तरु फलत समेत ॥९७॥

97. A fine shape, a high family, good manners, knowledge or willing service are of no avail, Only the good actions done in a previous birth bear fruit at the proper time just as trees do.

वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥९८॥

वन में, रण में, शत्रुओं में, आग में, समुद्र अथवा पर्वत की चोटी पर, सोते हुए गाफिल या आफत मे पडे हुए मनुष्य की रक्षा, पूर्व जन्म के पुण्य ही करते हैं।

मनुष्य चाहे गहन वन में हो, चाहे भीषण रणक्षेत्र मे हो, चाहे शत्रुओ के जाल में हो, चाहे अग्नि के बीच मे हो, चाहे अगाध जल मे हो, चाहे पहाड़ की चोटी पर बेहोश पड़ा हो और चाहे और किसी भयङ्कर आफत मे हो—अगर उसके पूर्व जन्म के शुभ कर्म होते हैं, तो वह सब खतरो से बच जाता है; अगर पूर्व जन्म के शुभ कर्म नही होते, तो वह मर जाता है या कष्ट भोगता है। नीति मे कहा है;—

> अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
> सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
> जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
> कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति॥

जिसकी रक्षा करने वाला कोई न हो; किन्तु दैव (प्रारब्ध) उसकी रक्षा करे, तो वह जीवित रहता है। वन मे त्यागा हुआ अनाथ भी जीता रहता है, पर घर में यत्न से रक्षा करने पर भी, नहीं जीता।

मतलब यह है, कि जिसके पूर्व जन्म के शुभ कर्म होते हैं, वह हर विपद् से बच जाता है। अगर वह सिंह की माँद में भी चला जाय, तो सिंह उसे नहीं खाता। ऐसी खतरनाक जगह म

कौन रक्षा करता है? दैव। दैव किसे कहते हैं? प्रारब्ध या भाग्य को। प्रारब्ध काहे से बनती है? पूर्वजन्म के कर्मों से।

मेनका, हाल की पैदा हुई कन्या को विश्वामित्र की गोद में छोड़, स्वर्ग को उड़ गई। मुनि ने उस नवजात कन्या को एक निर्जन स्थान में राह के किनारे रख दिया। कन्या के पूर्वजन्म के शुभ कर्म थे, इसलिये शकुन नामक एक पक्षी अपने पंखों से छाया करके, उसकी पालना करने लगा। दैवयोग से, कण्व ऋषि तीर्थाटन करके उसी राह से आ रहे थे। उन्होंने नन्हे से बच्चे को हाथ-पैर हिलाते देख उठा लिया और आश्रम में लाकर, उसकी परवरिश के लिये एक स्त्री मुक़र्रर करदी। इसी बच्चे का नाम आगे चल कर शकुन्तला रक्खा गया। अगर शकुन्तला के पूर्वजन्म के शुभ कर्म न होते, तो शकुन पक्षी उसकी रक्षा क्यों करता? वह धूप में ही भूख-प्यास से मर जाती अथवा कोई जंगली जानवर आकर उसकी चटनी कर जाता।

दिल्लीश्वर जहाँगीर की जगत्-प्रसिद्ध बेगम नूरजहाँ सिन्ध के जङ्गलों में पैदा हुई थी। माता-पिता घोर विपदावस्था में अपना देश—ईरान छोड़ भागे थे। राह में ही जेठ की तपती धूप में, कन्या पैदा हो गई। प्रसूता के लिये न कुछ खाने को था, न पीने को। ऊपर आसमान जल रहा था और नीचे रेगिस्तान की बालू जल कर अङ्गारवत् हो रही थी। उस समय कन्या को लेकर राह चलने से माता के भी मर जाने का भय था; इसलिये पति के बारम्बार समझाने से माता अपनी आँखों की
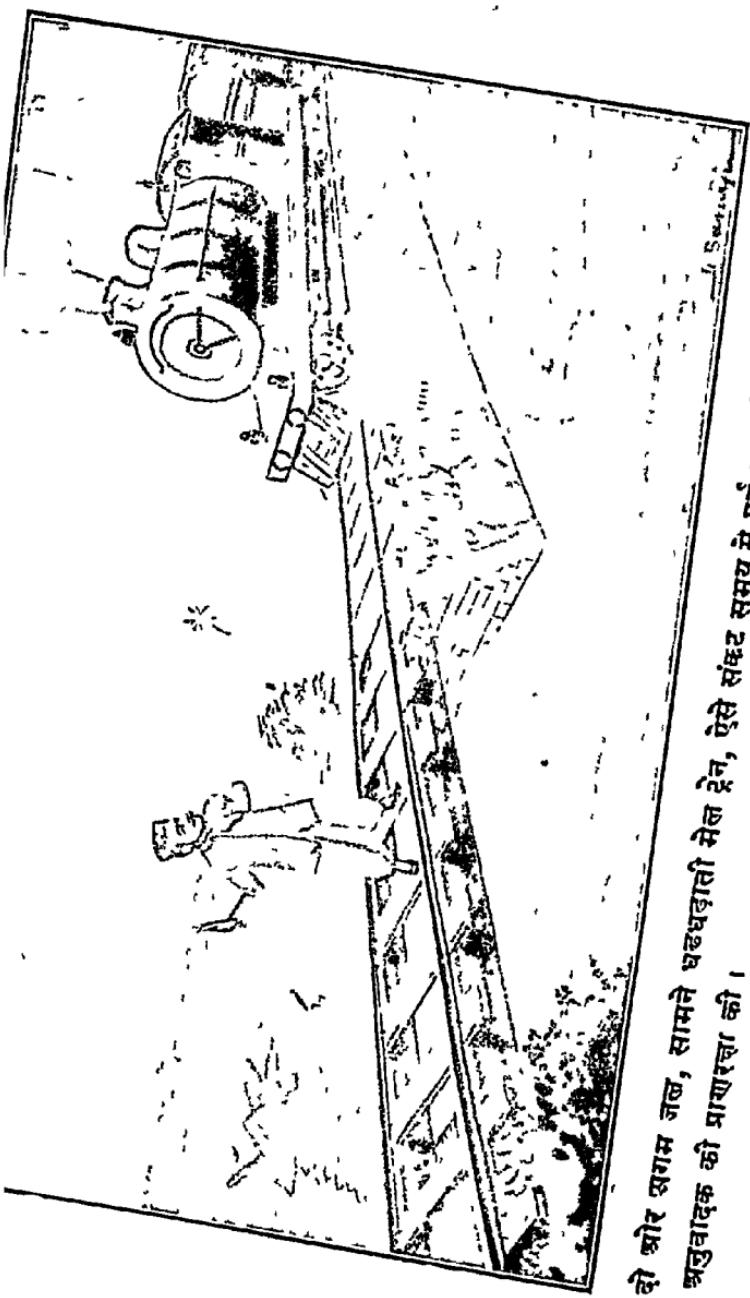
दो ओर अगम जल, सामने धड़धड़ाती मेल ट्रेन, ऐसे संकट समय में पूर्व जन्म के पुण्यों ने ही इस ग्रन्थ के अनुवादक की प्राणरक्षा की।

पुतली को वहाँ ही छोड़ देने पर राजी हो गई। पिता ने कन्या को एक जगह लिटा दिया और दोनों राह चलने लगे। थोड़ी दूर चल कर ही माता ने कहा—"मैं मर भले ही जाऊँ, पर अपनी बच्ची को यहाँ न छोड़ूँगी।" लाचार होकर पति फिर कन्या को लाने गया। पर वहाँ पहुँचते ही देखता क्या है, कि एक बड़ा भारी कालसर्प कन्या के ऊपर अपने फन से छाया किये हुए बैठा है। पिता की हिम्मत कन्या को वहाँ से उठाने की न पड़ी। वह लौटने लगा। इतने में सर्प उसका मतलब समझ कर वहीं लोप हो गया और पिता अपनी पुत्री को छाती से लगा कर ले आया। अगर उस नवजात कन्या के पूर्वजन्म शुभ कर्म न होते; तो वह क्षण-भर में ही उस अङ्गार-समान तपती रेती पर जल कर प्राणत्याग कर देती। पूर्वजन्म के शुभ कर्मों ने ही उसकी सर्प बन कर रक्षा की।

एक बार स्वयं हम पर ही बीत चुकी है। मुसीबत के मारे, एक दिन हम जंगल में रेल की सड़क-सड़क चल रहे थे। सिन्ध नदी के फट जाने या बाढ़ आने से सैकड़ों कोस तक जल-ही-जल हो गया था। कहीं किनारा या वृक्ष इत्यादि दिखाई न देते थे। चलते-चलते हम एक रेलवे पुल पर पहुँचे। पुल के नीचे अथाह जल, दोनों ओर दाहने बायें अनन्त जल। ऊपर आकाश और नीचे जल ही जल था। उस अनन्त जलराशि के बीच में पाँच सात फुट चौड़ी रेल की लाइन मात्र दीखती थी। जल की भयङ्कर गर्जना से हृदय काँपता था। अगर पुल पर मनुष्य हो और रेल-

गाड़ी आ जाय, तो उसकी रक्षा का कोई उपाय न था। हम डरते हुए जा रहे थे, कि कहीं पुल पर हमारे रहते हुए ट्रेन आ गई तो हमारे प्राण न बचेंगे। आखिरकार, जिस बात की आशङ्का थी, वही हुई। हम पुल के बीच में पहुँचे और पुल के उस कोने पर हमें रेलगाड़ी का इञ्जन दीखा। हमारे प्राण काँप उठे, पर हमने उस नाजुक समय मे घबराना उचित न समझा, तत्काल बचने का उपाय सोचा। पीछे की एक कोठी मे, हम एक जरा गहरासा खड्डा देख आये थे। पलक मारते-मारते हम उस गड्ढे में जमीन पकड़ चिपट गये। एक क्षण मे ही यह सब काम हुए। रेल धड़धड़ाती हुई हमारे सिर के ऊपर होकर निकल गई। पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से हमारी जीवन-रक्षा हो गई। किसी ने ठीक ही कहा है—

निमग्नस्य पयोराशौ, पर्वतात् पतितस्य च।
तक्षकेनापि दंष्टस्य त्वायुर्मर्माणि रक्षति॥

अगाध जल मे डूबे हुए की, पर्वत से गिरे हुए की और साँप से काटे हुए की पूर्वजन्म के पुण्यबल या आयुर्बल से ही रक्षा होती है। और भी कहा है—

नाकालेम्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि।
कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥

सौ बाणों से बिंधा हुआ शरीर धारी भी बिना समय नहीं मरता; काल आने पर कुशा की नोक छू जाने पर ही मर जाता है। किसी हिन्दी कवि मे कहा है—

जाको राखे साइयाँ, मारि सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय॥

जाको राखे साँइयाँ, मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय ॥

हमे दो दृष्टान्त और याद आये हैं, उन्हे अपने प्यारे पाठकों की भेंट किये बिना हमारा जी नहीं मानता।

शिकारी और हिरनी।

एक शिकारी ने दो ओर दाहने बायें, जाल लगा दिया। सामने की तरफ जङ्गल मे आग लगा दी और चौथी ओर अपना कुत्ता लेकर आप खड़ा हो गया। उस जाल के बीच मे एक हिरनी मय अपने बच्चे के घिर गई। जब हिरनी घिर गई, तब शिकारी ने अपना कुत्ता छोड़ा और आप तीर कमान लेकर तीर छोड़ने लगा। हिरनी न दाहने जा सकती थी, न बायें और न सामने ही, क्योंकि दो ओर जाल और तीसरी ओर आग जल रही थी। पीछे की ओर शिकारी और उसका कुत्ता था। हिरनी ने अनाथनाथ जगन्नाथ को याद किया। आकाश मे फौरन ही बदली छाई और बिजली चमकने लगी। शिकारी का पैर एक सर्प ने पकड़ लिया और कुत्ते पर बिजली गिरी। इस तरह जगदीश ने हिरनी और उसके बच्चे की प्राणरक्षा की। परमात्मा की विचित्र लीला है। जिसे वह बचाना चाहता है, उसे कौन मार सकता है* ?

(* If God is our defence, who is against us ? Motto)

कबूतर और शिकारी

एक वृक्ष पर एक कबूतर और कबूतरी का जोड़ा बैठा हुआ था। इतने मे एक शिकारी वहाँ पहुँचा। उसने इनके मारने को निशाना लगाया। इतने मे एक बाज भी कहीं से उड़ता हुआ वहीं आ पहुँचा। उसने भी अपनी घात लगाई। नीचे शिकारी और ऊपर बाज—इन दोनों के बीच मे वह कबूतर का जोड़ा पड़ गया। मृत्यु मुख मे जाने मे कोई कसर न रही। यह हालत देखकर, कबूतरी ने अपने पति से घबराकर कहा—"हे नाथ! काल सिरपर आ गया! देखिये, नीचे शिकारी कमान पर तीर चढ़ाये खड़ा है और क्षणमात्र मे तीर छोड़ा ही चाहता है; ऊपर बाज इसी घात मे उड़ रहा है और झपट्टा मारना ही चाहता है। अब प्राणरक्षा कैसे हो?" मारने-वालों से बचाने वाला बड़ा जबर्दस्त है। शिकारी ने ज्योंही कमान से तीर छोड़ना चाहा, कि एक सर्प कहीं से आकर उसके पैरों में चिपट गया और उसे डस लिया इससे शिकारी का निशाना कबूतर के जोड़े की सीध से हटकर बाज की ओर हो गया और तीर छुटते ही बाज के जा लगा। इस तरह बाज और शिकारी दोनो काल के गाल मे समा गये और कबूतर का जोड़ा, जिसके प्राणनाश मे जरा भी देर नहीं थी, अपने पूर्व-जन्म के पुण्यबल अथवा जगदीश की दया से बाल-बाल बच गया। दैव की गति बड़ी विचित्र है!

यद्यपि इस चित्र के कबूतर के जोड़े की मृत्यु होने में तनिक भी कसर नहीं थी तथापि ईश्वर की दया और अपने पूर्व जन्म के कर्मों के फलों से वह बाल-बाल बच गया।

दोहा—वन रण जल अरु अग्नि में, गिरि समुद्र के मध्य।
निद्रा मद अरु कठिन थल, पूरब पुण्यहिं सध्य ॥ ६८ ॥

98. Virtuous deeds done in a previous birth guard a person in the forest, in a battle, from an enemy, in the midst of water or fire, on the ocean and on the top of a mountain. Whether he is asleep unconscious or fallen into an awkward position.

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः
॥ ६६ ॥

हे सज्जनो ! अगर आप मनोवाञ्छित फल चाहते है, तो आप और गुणों में कष्ट और हठ से वृथा परिश्रम न करके, केवल सत्क्रिया रूपी भगवती की आराधना कीजिये। वह दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पण्डित, शत्रुओं को मित्र, गुप्त विषयों को प्रकट और हलाहल विष को तत्काल अमृत कर सकती है।

खुलासा - अगर आप इस जगत् मे अपनी इच्छानुसार सुख भोगने की अभिलाषा रखते है; तो आप और गुणों के संग्रह करने में वृथा परिश्रम न करें। इसके लिये आप केवल "सदाचरण" की सच्ची आराधना कीजिये। सदाचरण

वजह से ही, उनकी ईश्वर के समान पूजा और आराधना होती है। महात्मा बुद्ध, हजरत ईसा और हज़रत मुहम्मद साहब के करोड़ो अनुयायी उनके सदाचार के कारण से ही हुए हैं। सदाचार के कारण ही राम और कृष्ण भगवान माने जाते हैं।

सदाचारियों के सिर पर तलवार रख दी जाय, उन्हें फाँसी का भय दिखाया जाय; उन्हें आग मे जलाया जाय अथवा उन्हे दुनियाँ की बड़ी-से-बड़ी न्यामत का लालच दिखाया जाय, पर वे अपना आचरण कभी खराब नहीं करते। रावण ने सीता माता को बहुत डराया, धमकाया और लालच भी दिखाया; पर वह सती अपने सत पर डटी रही; उसने अपने चरित्र से ज़रा भी धब्बा नहीं लगाया और अपना शील नहीं छोड़ा, इसीलिये आज तक उनका नाम है और यावत् चन्द्र-दिवाकर इसी तरह रहेगा। देखिये, जगज्जननी रावण से क्या कहती हैं:—

भजन।

(राग कव्वाली)

रावण ! तू धमकी दिखाता किसे ?
मुझे मरने का खौफो ख्तर नही।
मुझे मारेगा क्या ? अपनी ख़ैर मना,
तुझे होनी की अपनी खबर ही नहीं॥ १॥
क्या तू सोने की लंका का मान करे ?
मेरे आगे यह मिट्टी का घर भी नहीं।

मेरे मन का सुमेरु हिलेगा नहीं,
मेरे मन में किसी का भी डर ही नहीं ॥ २ ॥

क्यों न जीत स्वयंवर में लाया मुझे,
मेरी चाह जो मन में थी तेरे बसी।

था तू कौन से देश में यह तो बता,
क्या स्वयंवर की पहुँची खबर ही नहीं ॥ ३ ॥

तू ने सहस्र अट्ठारह जो रानी वरीं,
हाय! उन पर भी तुझको सबर ही नहीं।

परत्रिया पै तू ने जो ध्यान दिया,
क्या निगोद नरक का खतरा ही नहीं ॥ ४ ॥

चल हुआ सो हुआ, अब तो मान कहा
मुझे राम पै जल्दी से दे तू पठा।

हैगा ताज्जुब यह, वरना तू देखेगा फिर,
तेरे सर की कसम, तेरा सर ही नहीं ॥ ५ ॥

आवें इन्द्र नरेन्द्र मिलके सभी,
क्या मजाल जो शील को मेरे हरें।

तेरी हस्ती ही क्या सिवा राम पिया,
मेरी नजरों में कोई बशर ही नहीं ॥ ६ ॥

सार—जिन मनुष्यों को संसार में उच्च-से-उच्च पद प्राप्त करना हो, वे सदाचारी बनें। सदाचार से उनके सभी मनोरथ सफल होंगे; ऋद्धि-सिद्धियाँ उनके द्वारों पर

हाथ बाँधे खड़ी रहेगी * और उनके दुश्मन उनके कदमों में गिरेंगे ।

करत दुष्ट को साधु, मूढ पण्डित कहलावत ।
करत शत्रु को मित्र, विषहि अमृत ठहरावत ॥
नृपति सभा को नाँव, शक्ति या देवी कहिये ।
ताकी सेवा किये, सकल सुख सम्पति लहिये ॥
यह जो प्रसन्न ह्वै है नहीं, तौ गुण विद्या सब अफल ।
सुन बात चतुर नर तू यहै, वाहीसां ह्वै है सफल ॥९९॥

99. O good men, if you want to enjoy the fruits desired by you, you, should worship the Goddess of Righteous Deeds who makes evil persons virtuous, changes the ignorant into learned men, transforms enemies into friends makes the hidden apparent and changes poison into nectar in a moment. Do not depend in vain on the acquirement of various qualification (al me) by (making all sorts of) endeavours.

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ॥
अतिरभसकृतानां कर्मणामा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाहो शल्यतुल्यो विपाकः ॥१००॥

कोई काम कैसा ही अच्छा या बुरा क्यों न हो, काम करने वाले बुद्धिमान को पहले उसके परिणाम का विचार करके तब काम में हाथ लगाना चाहिये; क्योंकि बिना विचारे, अति

*If I keep my character, I shall be rich enough—Plant

शीघ्रता से किये हुए काम का फल, मरण काल तक हृदय को जलाता और काँटे की तरह खटकता रहता है।

बुद्धिमान को किसी काम के आरम्भ करने में जल्दी न करनी चाहिये। काम करने से पहले, काम के गुण-दोष और परिणाम का खूब अच्छी तरह विचार करना चाहिये। अगर उस काम का फल या नतीजा अच्छा दीखे, तो उसे करना चाहिए*। अगर उस काम के करने से परिणाम में दुःख की सम्भावना हो तो उसे भूलकर भी न करना चाहिये‡। जल्दबाजी का नतीजा सदा बुरा होता है। जरासी चूक मनुष्य को युगों दुःख देती है और खान-पान छुड़ा नींद को हराम कर देती है। किसी ने ठीक कहा है—"एक कदम चूकने से मनुष्य का बड़ी बुरी तरह पतन होता है§। जरासी गलती से मनुष्य ऐसी ठोकर खाता है, कि सम्हाले नहीं सम्हलता। अपनी जरासी चूक के प्रायश्चित्त स्वरूप उसे बड़े बड़े कष्ट भोगने पड़ते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने, अपनी एक जरासी चूक के कारण दो युगों तक, नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगे। जब तक उस भूल का संशोधन न हुआ, वह हृदय में काँटे की तरह चुभती रही। सच तो यह है, उस

---

* Before you begin consider well, and when you have considered, act.

‡ Even in the moment of action there is room for consideration.—Goethe

§ One wrong step may give you a great fall.

जरासी भूल ने असमय में ही इसकी जवानी को नष्ट कर बुढ़ापा बुला दिया, बाल पका दिये, दाँत गिरा दिये, शरीर निकम्मा कर दिया और दिल को तो चलनी बना दिया। अगर यह जरा भी विचार से काम लेता, तो शायद इसे घोर मर्म भेदी वेदनायें न सहनी पड़तीं। यदि पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों की वजह से वह विपद् टल ही न सकती, तो भी हृदय में यह जलन तो न रहती, कि मैंने यह काम विचार पूर्वक नहीं किया। खैर, बहुत लिखने से क्या? जिसने मनुष्य-योनि में जन्म लिया है, जो मनुष्य कहलाता है,—उसे प्रत्येक काम, चाहे वह छोटा हो-चाहे बड़ा, खूब सोच-विचार कर और अपने अन्तरात्मा कॉनशेन्स की सलाह लेकर करना चाहिये। यदि फिर भी नतीजा बद हो तो हर्ज नहीं; मन में खटक तो न रहेगी। गिरिधर कविराय कहते हैं;—

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावे।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहिं न भावे॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं, कियौ जो बिना विचारे॥

जो मनुष्य बिना विचारे काम करता है, वह पीछे पछताता है; अपना काम बिगाड़ता है और लोक-हँसाई कराता है। उसका चित्त हर समय बेचैन रहता है और उसे खाना-पीना, आदर-सन्मान एवं राग-रङ्ग कुछ भी अच्छे नहीं लगते।

गिरिधर कविराय कहते है, दुःख कुछ टालने से टल नहीं जाता, होनहार होकर रहनी है, पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना ही पडता है। फिर भी; जो काम बिना विचारे किया जाता है, वह दिल मे काँटे की तरह खटका करता है। पाठक! अविचार-वानो की ठीक यही दशा होती है। वृन्द कवि ने भी कहा है—

फिर पीछे पछताय, सो, जो न करे मति सूध।
बदन जीभ हिय जरत है, पीवत तातो दूध॥

मूढ़! ऐसा काम न कर, जिससे पीछे पछताना न पड़े। जो गरम दूध पीता है, उसके मुँह जीभ और हृदय जलते हैं। सहसा कोई काम करने का फल बुरा ही होता है।

"पञ्चतन्त्र" में भी लिखा है:—

सुहृद्भिराप्तैर सकृद्विचारितं,
स्वयञ्च बुद्धया प्रविचारिताश्रयन्।
करोति कार्य्यं खलु यः स बुद्धिमान्
स एव लक्ष्म्या यशसाञ्च भाजनम्॥

जो मित्र और आप्त पुरुषो से सलाह लेकर और अपनी बुद्धि से विचार कर काम करता है, वह लक्ष्मी और यश का पात्र होता है।

सारांश—काम छोटा हो चाहे बड़ा, बुद्धिमान को खूब सोच-समझ कर करना चाहिये। जल्दबाजी का नतीजा सदा बुरा होता है।

दोहा।

कारज अच्छो अरु बुरो, कीजै बहुत विचार।
बिना विचारे करत ही, होत खार अरु हार ॥१००॥

100. A wise man when about to act should carefully meditate beforehand on the results of that action whether it be good or bad. The fruit of actions done without pre-meditation burns the heart till death like a thorn.

स्थाल्यां वैडूर्यमय्यां पचति च लशुनं चांदनैरिन्धनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः।
छित्त्वा कर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समंता-
त्प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मंदभाग्यः॥१०१

जो मन्दभाग्य इस कर्मभूमि—संसार—में आकर तप नहीं करता वह निस्सन्देह उस मूर्ख की तरह है, जो लहसन को मरकतमणि के बासन में चन्दन के ईंधन से पकाता है अथवा खेत में सोने का हल जोतकर आक की जड़ प्राप्त करना चाहता है अथवा कोदों के खेत के चारों तरफ कपूर के वृक्षों को काटकर उनकी बाढ़ लगाता है।

यह संसार कर्मभूमि है। मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से मिलती है। जो मनुष्य दुर्लभ मानव-जन्म को विष रूपी विषयों में वृथा गँवाता है, तपश्चरण नहीं करता, परमात्मा की आराधना-उपासना नहीं करता, वह परीक्षा में फेल होता और भयानक भूल करता है। मरकतमणि के बासन में

चन्दन की लकड़ियाँ जलाकर लहसन पकाना, जिस तरह मूर्खता है; उसी तरह मानव-देह पाकर विषय-वासना में फँसा रहना भी मूर्खता है। जिस तरह कोदो के खेत के चारों ओर कपूर के वृक्षों की बाढ़ लगाना नादानी है; उसी तरह मिथ्या जगत् के झूठे जंजालों मे उम्र गँवाना भी नादानी है।

यदि मनुष्य को सब कामनाओं के पूर्ण करने वाली अटूट लक्ष्मी मिल जाय तो क्या? यदि उदय अस्त तक साम्राज्य हो जाय तो क्या? अगर मनुष्य अपने सभी शत्रुओं को पदानत करले तो क्या? अगर धन से मित्र और नातेदारों की प्रतिपालना और आदर सम्मान करले तो क्या? अगर सैकड़ों चन्द्रानना स्त्रियाँ हो जायँ तो क्या? अगर वह इस देह से कल्प भर भी जी ले तो क्या? अगर भवभयहारिणी ब्रह्म की ज्योति हृदय में न जगी, तो इन सब विभवों से क्या? तात्पर्य्य यह, ब्रह्मज्ञान या ईश्वर की सच्ची भक्ति बिना ये सब व्यर्थ हैं। "भामिनी-विलास" में खूब ही कहा है—

पातालं व्रज या हि सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावार परंपरा तर तथाप्याशा न शान्तास्तव।
आधिव्याधि पराहतो यदि सदाक्षेम त्विदं वाँछसि
श्रीकृष्णेति रसायनं-रसय! शून्यैः किमन्यैः श्रमैः॥

चाहे पाताल में जा, चाहे इन्द्रपुरी में जा; चाहे सुमेरु पर्वत पर चढ़, चाहे सात समुन्दरों के पार जा; तेरी आशा शान्त न होगी, इसलिये आधि-व्याधि से पराहत हुए मन! यदि तू

अपना सदा भला चाहता है, तो श्रीकृष्ण रूपी रसायन का सेवन कर, वृथा और परिश्रम में कोई लाभ नहीं।

महात्माओं ने कहा है:—

भरमत भरमत आइया, पाई मानुष-देह।
ऐसो अवसर फिर कहाँ नामहि जल्दी लेह॥
तुलसी विलम्ब न कीजिये, भजि लंजे रघुवीर।
तन तरकस ते जात है, श्वास मार सो तीर॥
धन यौवन यों जायगा, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटे जग धूर॥
श्वास श्वास पै नाम भज, श्वास न विरथा खोय।
न जाने इस श्वास का, आवन होय न होय॥नानक॥

संसार में आकर मनुष्य को अपना एक क्षण भी विना परोपकार और परमात्मा के भजन के गँवाना गहरी नादानी है। जो अपने वनाने वाले को, जो अपने सव सुख देने वाले को और क्षण-क्षण रक्षा करने वाले स्वामी को ही भूलते हैं, वे वड़े कृतघ्न कल्प-कल्पान्त तक नरक में रहेंगे। कर्त्तव्य न पालन करने वालों के लिए ही नरकों की सृष्टि की गई है। इसलिए जिन्हें नरकों से वचना हो, जिन्हें जन्म-मरण के झगड़े से वच कर सदा सर्वदा सुख भोगना हो, वे सव चिन्ताओं को छोड़ कर परमात्मा की भक्ति और परोपकार करें; क्योंकि इस लोक में मनुष्य के यही कर्त्तव्य हैं। मनुष्य इस कर्मभूमि में

उत्तमोत्तम कर्त्तव्य-कर्म करने को ही भेजा गया है। स्वामी शंकराचार्य्य कहते हैं:—

कोवा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता।
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनाः॥
कार्य्या प्रिय का शिवविष्णुभक्तिः।
किं जीवनं दोषविवर्जितं यत्॥

संसार मे जीवो को ज्वर क्या है? चिन्ता मूर्ख कौन है? विवेक हीन। कर्त्तव्य क्या है? शिव और विष्णु भगवान की भक्ति। उत्तम जीवन कैसा है? जो दूषण-रहित है।

सारांश—जिस आयु का एक क्षण भी मृत्यु के समय से नहीं बढ़ सकता, इस अमूल्य आयु को विषय-भोगो मे नष्ट करना और अपना कर्त्तव्य पालन न करना, अपनी आयु को वृथा गँवाना है। नीचे हम चन्द उत्तमोत्तम उपदेशप्रद भजन और गजल प्रभृति पाठकों के उपकारार्थ लिखते हैं। पाठक उन्हे कण्ठाग्र करले और अवकाश के समय गाया करें।

भजन। (नाटक की लय)

सुधार मन मेरे, बिगड़ी हुई को सुधार ॥टेक॥
खाने मे, सोने मे, खेलो मे, मेलो मे भूला फिरे क्यो गँवार ॥१॥
खेलो तमाशों की यारो की बातो की, थोड़े दिनो की बहार ॥२॥
दमड़ी पै चमड़ी पै मरता है गिरता है, बनता है क्यो तू चमार ॥३॥
तुलसी हटाकर बोवे बबूरी, समझे ना सार और आर ॥४॥
पावे तभी शान्ती राधेश्याम तू, सूझे जब सच्चा विचार ॥५॥

गजल (राग सोरठ) ।

किसे देख दिल, तू हुआ है दिवाना ।
नहीं तेरी, इस जिन्दगी का ठिकाना ॥ १ ॥
हजारों शहनशाह, हुए इस जमीं पर ।
गये कूँच कर, जिन को जाने न जाना ॥ २ ॥
जो पैदा है, ना-पैद होगा वह एक दिन ।
फरा सो झरा, और बरा सो बुताना ॥ ३ ॥
धरम एक हमराह, केवल चलेगा ।
रहेगा पड़ा सब, यहीं पर खजाना ॥ ४ ॥
है धोखे की टट्टी, जहाँ में पुलन्दर ।
समझ के चलो, मुल्क है ये विगाना ॥ ५ ॥
करो याद उसकी, जो मालिक जहाँ का ।
उसी की दया से, मिटै आना जाना ॥ ६ ॥

भजन (लावनी)

पड़ लोभ मोह के जाल में, नर आयु क्यों खोता है ॥ टेक ॥
यह जग जान रैन का सुपना, जिसको कहता अपना-अपना,
भूल गया ईश्वर का जपना, फँसा हुआ धन-माल में,
क्या सुख की नींद सोता है ॥ १ ॥
चलै अकड़ बन छैल छबीला, अन्त समय सब होजाय ढीला,
काम न आये कुटुम्ब कबीला, भूला जिनके ख्याल में,
कोई साथी नहीं होता है ॥ २ ॥

अब क्यों सिर धुनि-धुनि पछतावे रुदन करे और गैल मचावे,
कुछ नहि तेरी पार बसावे. चूका पहिली चाल में,
क्या खड़ा-खड़ा रोता है॥३॥

समझ सोच कर कदम उठाना, मुशकिल है मानुष तन पाना,
कहै मुरारी जो हो दाना, भज हर को हर हाल में,
क्यों पाप-बीज बोता है ॥४॥

गज़ल ।

जो मोहन में मन को लगाये हुए हैं।
वह फल मुक्त जीवन का पाये हुए हैं ॥१॥
जो बन्दे हैं दुनियाँ के, गन्दे सरासर।
वह फन्दे में खुद को, फँसाये हुए हैं ॥२॥
जो सोते हैं ग़फ़लत से, रोते हैं आखिर।
वह खोते रतन, हाथ आये हुए हैं ॥३॥
पकड़ पाया, सतगुरु के दामन को जिसने।
यही है मगन, सब सताये हुए हैं ॥४॥

भजन ।

(राग सोरठा)

जीवन दिन चार का रे! ये मन मूरख फिरे मस्ताना ॥टेक।
मन्दिर महल अटारी बँगले, नकदी माल खजाना।
जिस दिन कूँच करेगा मूरख, सब कुछ हो बेगाना ॥१॥

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, बन बैठा धनवाना।
साथ न जाये फूटी कौड़ी, निकल जाय जब प्राना ॥ २ ॥
अपने आपको बड़ा जान के, क्यों करता अभिमाना।
तेरे जैसे तो लाखो चले गये तू किसका महमाना ॥ ३ ॥
मान ले शिक्षा खन्नादास की, जो चाहे कल्याना।
परमारथ और नित्य कर्म कर, दे दीनो को दाना ॥ ४ ॥

भजन।

(राग झिंझोटी)

तुम देखो रे लोगो, भूल-भूलैयाँ का तमाशा ॥ टेक ॥
ना कोई आता ना कोई जाता, यही जगत का नाता।
कौन किसी की बहन भानजी, कौन किसी का भ्राता ॥ १ ॥
देह तलक तिरिया का नाता, पौली तक की माता।
मरघट तक के लोग बराती हंस अकेला जाता ॥ २ ॥
लट्ठा पहने बुक भी पहने, पहने मलमल खासा।
शाल-दुशाले सब ही ओढ़े, अन्त खाक में बासा ॥ ३ ॥
कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, जोड़े पाँच-पचासा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चले नहिं मासा ॥ ४ ॥

भजन।

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥
माया बनी सार की सूली, नारी नरक का कूआ रे ॥ १ ॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआँ सूआ रे ॥ २

भाई-बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमे पच पच मूआ रे ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ॥ ४ ॥

दोहा—ज्यों हाँड़ी वैडूर्यकी, तामें लहसुन डारि।
पकवत ताको बैठिकै, चन्दन लकड़ी जारि ॥
जोतत महि लै हेम हल, आक वपन के हेत।
काटत वृक्ष कपूर के, रूँधत कोदव खेत ॥
तिमि मानुष तन पाइ कै, त्यागत है तप जौन।
विषय भोग सेवत सदा, महामूढ है तौन ॥ १०१ ॥

101 The wretched fellow who being born in this world which is a field fit for (good) actions only does not perform penances is like a man who cooks garlick in a kettle set with precious Vaidurya gems with fuel made of sandal sticks, or tills the land with a plough fitted with the golden ploughshare for the sake of sowing the roots of Arka plants or cutting a Camphor tree into legs makes a fencing of them round the Kodrava plants (an inferior sort of vegetable).

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे।
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः,कला शिक्षतु ॥
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतहि कर्म वशतोभाव्यस्यनाशःकुतः ॥१०२

चाहे समुद्र में गोते लगाओ, चाहे सुमेरु के सिर पर चढ़ जाओ; चाहे घोर युद्ध मे शत्रुओं को जीतो, चाहे खेती वाणिज्य-व्यापार और प्रभृति सारी विद्या और कलाओं को

सीखो; चाहे बड़े प्रयत्नसे पखेरुओं की तरह आकाश में उड़ते फिरो; परन्तु प्रारब्ध के वश से अनहोनी नहीं होती और होनहार नहीं टलती।

यह बात एक और कवि महाशय ने भी कही है:—

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम्।
जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कृन्नराणां
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः॥

चाहे आकाश में जाओ, चाहे दिशाओं के छोर तक जाओ, चाहे समुद्र में घुसो, अथवा मन में आवे जहाँ जाओ और रहो—जन्मजन्मान्तर के लिये कर्म मनुष्य का पीछा इस तरह नहीं छोड़ते, जिस तरह छाया मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ती।

और किसी ने ख़ूब कहा है—

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्य विनाऽपियत्नेन।
करतल गतमपि नश्यति, यस्य हि भवितव्यता नास्ति॥

जो होनहार नहीं है, वह नहीं होती और जो होनहार है, वह हर तरह से होकर रहती है; जिसकी होनहार नहीं होती, वह हाथ में आया हुआ भी नष्ट हो जाता है :—

महात्मा शेख सादी ने भी गुलिस्ताँ मे कहा है:—

"संसार में दो बातें असम्भव हैं:—

(१) भाग्य मे लिखा है, उससे अधिक सुख भोगना।

(२) नियत समय से पहले मरना।

"ऐ रोजी—जीविका चाहने वाले ! भरोसा रख, तुझे बैठे-बैठे खाने को मिलेगा और तू, जिसको यम मन्दिर से बुलावा आ गया है, भाग मत; तू वहीं क्यों न जाय. भाग कर बच न सकेगा। हाँ, अगर तेरे मरने का दिन अभी नहीं आया है, तो तू शेरों के मुँह में ही क्यों न चला जाय. वे तुझे हरगिज न खायँगे।"

बलिहारी है इस उपदेश की ! क्या ही खूब नसीहत दी है ! मनुष्य समझे तो समझ सकता है कि उसे अपने भले-बुरे कर्मों के फल तो भोगने ही होंगे। उनसे वह किसी तरह पीछा नहीं छुड़ा सकता। अगर भाग्य में राज्य लिखा है, तो राज्य की इच्छा त्याग कर वन में भागने से भी राज्य करना ही होगा। यदि मनुष्य निर्जन वन में भी अकेला बैठा रहे, तो वहाँ भी उसे खाने को पहुँचेगा; बशर्ते कि उसके पूर्व जन्म के पुण्य हों और पुण्यों के कारण से आयु हो। अगर मनुष्य को शत्रु शेर के पिंजरे में भी डाल दे, पर यदि उसके पूर्व जन्म के पुण्य होंगे, तो शेर उसे न खायगा; चाहे शेर के उदर-शूल प्रभृति कोई व्याधि ही खड़ी हो जाय। अगर मनुष्य के पुण्य क्षीण हो गये हैं और उनसे उसकी आयु शेष हो गई है, तो वह चाहे जहाँ छिपता फिरे, चाहे सात तालों के भीतर बन्द होकर, लाखों फौज पलटन पहरे पर रखे [illegible]

पर उनके प्राण नहीं बचेंगे। उसकी मौत उनकी छाया की तरह हर जगह उसके साथ रहेगी*। इस मौक़े का एक क़िस्सा हमे याद आया है, उसे हम पाठकों के ज्ञान-लाभार्थ नीचे लिखते है:—

—::०::—

राजा और मस्त हाथी।

जीवात्मा और कर्म्म।

एक राजा एक हाथी पर सवार होकर कहीं जा रहा था। हाथी बदमाश था। किसी काम से राजा नीचे उतरा, तो हाथी अपनी सूँड़ से राजा पर आक्रमण करने लगा। भय के मारे राजा भागा और भागते-भागते एक अन्धे कूएँ मे जा गिरा। उस कूएँ की एक बग़ल में एक पीपल का वृक्ष खड़ा था। उस वृक्ष की जड़ें कूएँ के भीतर थीं और उसने आधा कूँआ घेर रखा था। घबराहट मे भागते-भागते राजा जो कूएँ मे गिरा, तो उसका सिर नीचे और पैर ऊपर को हो गये। क्योंकि वह उस पीपल के पेड़ की जड़ों मे उलझ गया। राजा न नीचे ही जा सकता था और न ऊपर ही आ सकता था। वह हाथी भी राजा का पीछा करता हुआ उसी कूएँ पर आगया और राजा के बाहर निकलने की राह देखने लगा। राजा की नज़र नीचे गई, तो उसने क्या देखा, कि

* While we flee fr m our fate, we like fool rush on it—Buc'anan

इस चित्र के देखने से मालूम होता है, कि मनुष्य कहीं जावे, शुभाशुभ कर्मों के फल उसके साथ ही रहेंगे।

[पृष्ठ ४४१

भयङ्कर कालसर्प, विसखपरे, बिच्छू, कनखजूरे प्रभृति भयानक-भयानक जानवर ऊपर की तरफ मुँह किये हुए खुश हो रहे हैं, कि हमारा भक्ष्य आया। राजा उन्हे देखते ही काँप उठा। राजा ने ऊपर की ओर देखा, तो क्या देखता है, कि दो चूहे, जिनमे एक काला और एक सफेद था, जिस जड़ में राजा के पैर उलझे हुए थे, उसे काट रहे है। राजा घबरा गया, कि थोड़ी ही देर में इनके जड़ काट देते ही, मैं नीचे गिरूँगा और सर्प तथा अजगर प्रभृति जीवो का भोजन बनूँगा। उसने फिर किसी तरह ऊपर चढ़ कर, निकल भागने का विचार किया। और कूएँ के धुर ऊपर दृष्टि फेंकी, तो क्या देखा कि वही दुष्ट हाथी खड़ा है। उसने सोचा, कि मेरे ऊपर जाते ही हाथी मुझे चीर डालेगा। राजा सब ओर आफत देख कर बहुत ही घबराया। उस पीपल के वृक्ष मे मधु-मक्खियो का एक छत्ता था। उससे मधु की बूँदें टपकती थीं। उनमें से कोई-कोई बूँद राजा के मुँह में भी जा गिरती थी। उसी शहद के चाटने मे राजा सारी आफतों को भूला हुआ था। बाज-बाज वक्त तो वह शहद के मजे मे ऐसा गर्क हो जाता था, कि उसे इस बात का भी ख्याल न रहता था, कि चूहो के जड़ काट देते ही मेरी क्या दुर्दशा होगी। किसी ने खूब कहा है:—

गजल।

तू क्या उम्र की शाख पर सो रहा है।
तुझे कुछ खबर है कि क्या हो रहा है॥ १॥

कतरते हैं जिसको, चूहे रात-दिन दो।
तू इस पर पड़ा, बेखबर सो रहा है ॥२॥
खड़ा नीचे है, मौत का मस्त हाथी।
तेरे गिरने का, मुन्तजिर हो रहा है ॥३॥
ऐ न्यामत! ये टहनी, गिर चाहती है।
विषय-बूँद पर क्यों तू जाँ खो रहा है ॥४॥

इस दृष्टान्त का बड़ा गहरा मतलब है[1]। इसके समझने में आँखे खुल जाती हैं। आयु की अस्थिरता—चंचलता आँखों के

---

[1] इसमें राजा = जीवात्मा, हाथी = कर्म, सफेद चूहा = दिन, काला चूहा = रात, पंपक्ष का वृक्ष = आयु, अन्धा कूआँ - गर्भाशय; बिच्छू प्रभृति = काम, क्रोध, मद, मोह लोभ प्रभृति और मधु = विषय।

जब जीवात्मा-रूपी राजा कर्म रूप हाथी से उतरना चाहता है तब कर्मरूप हाथी उसे खेद कर गर्भाशय रूपी अन्धे कूए मे डाल देता है। आयु-रूपी वृक्ष की जड मे राजा-रूपी आत्मा का पैर उलझा रहता है। गर्भाशय मे बच्चा नीचे सिर और ऊपर पैर करके उसी तरह रहता है; जिस तरह राजा वृक्ष की जड़ में उलझ कर लटक रहा था। राजा-रूपी जीव नीचे की ओर देखता है; तो काम-क्रोधरूपी सर्प, बिच्छू वगैरः खाने की इच्छा से मुँह बाये दीखते हैं, ऊपर देखता है तो आयु रूपी जड़ को दिन रात रूपी चूहे काटते मालूम होते हैं, कुएँ के बाहर सूँड से धकेलने को हाथी रूपी कर्म दीखता है। पर राजा-रूपी जीवात्मा पेड़ मे लगे छत्ते के विषय रूपी शहद की बूँदों की चाट में सब दुःखों को भूल कर लटका रहता है। जब चूहे जड काट देते हैं तब पछताता और गर्भाशय-रूपी कुएँ में जा गिरता है, यानी फिर जन्म लेता है। तात्पर्य्य यह कि किये हुए कर्म का फल भोगे बिना कोई बच नहीं सकता। जो किसी तरह बच जाते है या आत्महत्या कर लेते है, उन्हे कर्म-रूपी हाथी गर्भाशय-रूपी कूएँ में फिर गिरा देते हैं। वे फिर जन्म लेते और कर्मफल भोगते हैं।

सामने आ जाती है, पर हम यहाँ इससे इतना ही समझावेंगे, कि मनुष्य कहीं क्यों न जाये; शुभाशुभ कर्मों के फल उसके साथ ही रहेंगे। राजा ने प्राण रक्षा की भरसक चेष्टा की, पर कर्मवश उसे कूएँ में भी हर तरफ मौत-ही-मौत दीखने लगी। मतलब यह है कि, कर्म अपना फल भुगाये बिना हरगिज पीछा नहीं छोड़ता। इसीलिये किसी ने ठीक ही कहा है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि॥

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना होता है, बिना भोगे कर्म का फल सौ करोड़ कल्प में भी क्षय नहीं होता।

सारांश—जो होनी है, वह होकर रहेगी और अनहोनी होगी नहीं।

दोहा।

जलधि डूब चढ़ मेरु चढ़, विद्या सिनु ब्यौपार।
अनहोनी होवे न कहुँ, होनी अमिट विचार॥१०२॥

102. Let a man dive into the Ocean or let him ascend the top of the (golden) Meru mountain. Let him conquer his enemies in the battlefield or let him learn all sorts of arts and sciences such as commerce and agriculture etc Let him fly up into the sky like a bird after making strenuous efforts. (But in spite of all this) what is not to be never happens in this world, because everything is subject to actions (done previously).Moreover whatever is to be cannot be prevented

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वं सुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०३॥

जिस मनुष्य के पूर्व जन्म के उत्तम कर्म—पुण्य—अधिक होते हैं, उसके लिये भयानक वन नगर हो जाता है, सभी मनुष्य उसके हितचिन्तक मित्र हो जाते हैं और सारी पृथ्वी उसके लिये रत्नपूर्ण हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :-

गरल सुधा रिपु करै मिताई, गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।
गरुअ सुमेरु रेणु-सम ताही, राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥

सच है; जिसके पूर्वजन्म के पुण्य होते हैं, उसके लिये जङ्गल में मङ्गल होता है, उसके कट्टर शत्रु भी उसके पक्के मित्र हो जाते हैं और उसकी रात-दिन हितचिन्तना और खुशामद करते है, वह जहाँ नजर डालता है, वहीं उसे धन-ही-धन दिखाई देता है और वह मिट्टी छूता है तो सोना हो जाता है। जब तक पुण्य का ओर नहीं आता, तब तक सुन्दर भवन, विलासवती युवतियाँ दासदासी और छत्र-चमार आदि विभूति सभी कुछ स्थिर रहते हैं; पर पुण्यों का क्षय होते ही; वे सब वैभव रस-केलि की कलह से टूटी हुई मोतियों की लड़ी की तरह विलायमान होते हैं। तात्पर्य्य यह है, पुण्यवान् का

सर्वत्र मङ्गल है। उसका न कोई शत्रु होता है और न उसे किसी प्रकार का कष्ट या अभाव ही होता है।

दोहा।

वन पुर है, जग मित्र है कष्ट भूमि है रत्न।
पूरब पुण्यहि पुरुष के, हो इते विना यत्न॥

103 A dreary forest becomes a great city and all men become friondly and the whole world is filled with near lying precious gems to him who has a store of previously done good deeds

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः॥
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किंसुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम्॥१०॥

लाभ क्या है? गुणियों की सङ्गत। दुःख क्या है? मूर्खों का संसर्ग। हानि क्या है? समय पर चूकना। निपुणता क्या है? धर्मानुराग। शूर कौन है? इन्द्रियविजयी। स्त्री कैसी अच्छी है? जो अनुकूल और पतिव्रता है। धन क्या है? विद्या। सुख क्या है? प्रवास में न रहना। राज्य क्या है? अपनी आज्ञा का चलना।

प्रश्नोत्तर के रूप में, योगिराज कैसी अमूल्य-अनूल्य शिक्षाएँ दे रहे हैं! हम प्रायः इन्हीं के दो श्लोक स्वामी शंकराचार्य महाराज की "प्रश्नोत्तरमाला" से, पाठकों के लाभार्थ, नीचे देते हैं:—

विद्याहि का, ब्रह्मगतिप्रदाया।
बोधोहि को, यस्तु विमुक्ति हेतु॥

को लाभः, आत्मावगमो हि यो वै ।
जितं जगत्केन, मनो हि येन ॥
किं दुर्लभः सद्गुरुरस्ति लोके ।
सत्संगतिर्ब्रह्मविचारणा च ॥
त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः ।
को दुर्जयस्सर्वजनैर्मनोजः ॥

विद्या क्या है ? ब्रह्मगति देनेवाली । बोध क्या है ? विमुक्ति का कारण । लाभ क्या है ? आत्म प्राप्ति या अपने स्वरूप को पहचानना । जगत् को जीतनेवाला—जगत विजेता कौन है ? जिसने मन को जीता है ।

संसार में दुर्लभ क्या है ? सद्गुण, सत्संग और ब्रह्म विचार । सब कुछ त्याग देनेवाला कौन है ? कल्याणरूप ज्ञान (शिवात्मबोध) । दुर्जय कौन है ? कामदेव ।

पाठक ! समझे ? कैसी अनमोल शिक्षा है ! आप इन को कई-कई बार पढ़ें और इन पर विचार करे । एकान्तमें,तर्क-वितर्क के साथ, इनको समझने की चेष्टा करने से अपूर्व आनन्द आवेगा ।

अगर आप चाहते है कि हम संसार मे रहकर सुख पावे, जन्म-मरणके फन्दे से बचे, परमात्मा की भक्ति करें; तो आप इन पर अमल करें; पढ़कर यदि अमल न किया, तो वृथा समय नष्ट किया । पढ़कर पढ़े हुये पर जो अमल करता है और उसके अनुसार चलता है, वही वास्तविक विद्वान है ।

छप्पय ।

कहा लाभ ? सत्सङ्ग, कहा दुःख ? मूरख-संगत ।
समय नाश बड हानि, सुघड रंग धर्म की रंगत ॥
सुख का ? रहै स्वदेश, शूर को ? इन्द्रीजित नर ।
धन का ? विद्या, प्रियतमा को ? नारि आज्ञातत्पर ॥
शुचि राज वही सुखमूल, जो आज्ञाकारी प्रजाजन ।
अरु जन्म सुफल सोइ जानिये, जो गिरिधर मँह रहहि मन ॥१०४॥

104 What is the gain ? The society of the meritorious. Wherein lies the harm ? In keeping company with the ignorant. What is loss ? Missing an opportunity What is wisdom ? Love for what is right Who is a brave man ? One who controls his senses. What is dearest ? A faithful wife. What is wealth ? Knowledge. What is comfortable ? Living at home. What is a kingdom ? A place where one's orders are obeyed

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मंडिता वसुधा ॥१०५॥

जो अप्रिय वचनों के दरिद्री हैं, प्रिय वचनों के धनी हैं, अपनी ही स्त्री में सन्तुष्ट रहते हैं और पराई निन्दा से बचते हैं—ऐसे पुरुषों से कहीं-कहीं की ही पृथ्वी शोभायमान है ।

खुलासा—जिसके यहाँ कड़वे वचनों का घाटा है, पर प्रिय वचनों का घाटा नहीं है, जो अपनी ही स्त्री से खुश रहते हैं और पराई निन्दा से नफ़रत करते हैं,—ऐसे पुरुष रत्न इस जगत् में कहीं-कहीं ही हैं, अर्थात् विरले हैं ।

मधुर-भाषण ।

सत्पुरुषों के यहाँ चाहे और संसारी चीजों का अभाव हो, पर मीठे वचनो का अभाव नहीं होता। सत्पुरुष धन के दरिद्री हों तो हो, पर मीठे वचनो के दरिद्री नहीं होते। जो उनके पास जाता है, जो उनसे मिलता है, उसे वे अमृत समान प्रिय वचनो से अपने वश में कर लेते हैं। कहा है—

तृणानिभूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

चटाई, जमीन, जल और सत्य-सहित प्रिय वाक्य,—इनसे भले आदमियों का घर कभी खाली नहीं होता; यानी सज्जनो के घर में दरिद्र होने पर भी ये तो अवश्य ही होते हैं।

प्राणिमात्र पर दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इनके समान वशीकरण जगत मे और नहीं है। कहा है—

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, परिहर वचन कठोर ॥
कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम् ॥

समर्थ पुरुषों को बड़ा भार क्या है? व्यवसायियों को दूर कौनसी जगह है? विद्वानों के लिए विदेश कौनसा है? प्रिय बोलने वालो को गैर कौन है?

मधुर-भाषण से पराये भी अपने हो जाते है और वज्रहृदय भी मोम हो जाते हैं। अँगरेजी में एक कहावत है—"Soft words win hard hearts," नर्म लफ्ज़ सख्त दिलो को जीत लेते है। और भी एक कहावत है—"Kind words are as a physician afflicted spirit" दुखिया के लिये दयापूर्ण शब्द चिकित्सक के समान होते है।

कठोर-भाषण।

मधुर भाषण की जगत् के सभी विद्वानो और महापुरुषो ने बड़ी महिमा लिखी है, इसलिए सभी समझदारों को भूल-कर भी किसी से कड़वी बात न कहनी चाहिये। कठोर वचन से घनिष्ट मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। कठोर वचन बोलने वाले की सभी अहित कामना करते है। कटुवादी को कोई साहाय्य नही करता। कटुवादी से सफलता दूर भागती है और लक्ष्मी उनसे घृणा करती है। कठोर वचन का शल्य हृदय में लगा उखड़ता नहीं, वरन् सदा खटका करता है। तीर का जख़्म अच्छा हो जाता है, पर जबान का जख्म जीवन भर अच्छा नहीं होता। कहा है:—

रोहते शायकैर्विद्धं, वन परशुनाहतम्।
वाचादुरुक्तं बीभत्सं, नापि रोहति वाक्क्षतम्॥

बाण का घाव भर जाता है, कुल्हाड़े से काटा वृक्ष फिर हरा हो जाता है, पर कठोर वाणी से हुआ घाव कभी नहीं भरता।

वाक्यबाण नहिं छोड़िये तीक्ष्णतायुत जोय।
कटुवचन कुरुकुल हन्यो, भीम क्रोधवश होय॥
नहिं विवाद मदान्ध हो, करें न पर पै रीस।
दुरुपवचन सों कृष्ण ने, काटो चेदिप सीस॥

महापुरुष, भूल से भी, किसी का दिल दुखाने वाली बात नहीं कहते; क्योंकि ये पराया दिल दुखाने को ही सब से बड़ा पाप समझते हैं। इतना ही नहीं, महापुरुष अपने तई गाली देने वाले को भी गाली नहीं देते, क्योंकि उनके पास कठोर वचन या गाली होती ही नहीं, दें कहाँ से? जिसके पास जिस चीज़ का अभाव होगा, वह उसे कहाँ से देगा?

एक महात्मा को दुष्ट लोग वृथा ही सताया करते थे। उनके ऊपर शल्यसम कठोर वचनो और गालियों की बौछार किया करते थे; पर वे बदले में मीठी-मीठी बातें ही कहा करते थे। एक बार तंग होकर वे कहने लगे—

"ददतु ददतु गालिर्गालिवन्तो भवन्तो।
वयमिह तदभावाद् गालिदानेप्यशक्ताः॥
जगति विदितमेतद् दीयते तत्।
नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददाति॥

दो, दो, आप गालिवन्त हैं; कोई धनवान् होता है, कोई बलवान् होता है, आप गालीवान् हैं। पर मेरे पास तो कठोर वचन और गालियों का दरिद्र है; मैं गाली कहाँ से

लाऊँ ? संसार जानता है, जिसके पास जो चीज होती है, उसे ही वह दूसरे को दे सकता है। खरगोश अपने सींग क्यों नहीं देता ? भैया ! मैं तो पण्डितराज जगन्नाथ के इस क़ौल पर चलता हूँ :—

'अपि बहुलदहनजालं मूर्ध्नि
रिपुर्मे निरन्तरं धमतु ।
पातयतु वासिधारामहमणुमात्रं
न किञ्चिदपभाषे ॥'

"दुश्मन चाहे मेरे सिर पर लगातार आग जलाते रहे, चाहे मुझ पर तलवार की चोटें करे, पर मैं जरा भी अप-भाषण न करूँ; यानी मेरे मुँह से कोई खराब शब्द न निकले।"

सज्जनों का स्वभाव ही होता है, कि वे अपने हानि पहुँचाने वाले का भी भला ही करते हैं, गाली देने वाले का मधुर वचनों से समादर करते हैं और मारनेवालेके सामने अपना सिर कर देते हैं* । आम के वृक्ष पर लोग पत्थर मारते हैं, मगर वह उत्तम फल प्रदान करता है। दूध को लोग चाहे कितना ही तपावें, चाहे कितना ही विकृत करें और कितना ही मथें, पर वह प्रहार—चोट सहता हुआ भी अपने प्रहारकर्त्ताओं के लिये चिकनाई—घी ही देता है। जो लोग सज्जनों का

* "Love is to be won by affectionate words " Pr
"Yield your opponent, by so doing your will come off victor in the end.—Ovid

अनुकरण करते हैं; सज्जन और दुर्जन, मित्र और शत्रु सबसे मीठा बोलते हैं; वे मधुर वाणी वाले मोर की तरह सबके प्यारे होते हैं। जो प्रिय बोलते हैं, प्रिय के सत्कार की इच्छा करते हैं, वे श्रीमान सबके वन्दनीय हैं, वे मनुष्य-शरीर में होते हुए भी देवता है। गोस्वामी जी कहते हैं:—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरमोय।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

स्त्री दुःख और नरक की मूल है।

स्त्री वास्तव में विष है, पर वह अमृत सी दीखती है। अथाह जल में डूबने से आदमी बच सकता है; पर स्त्री में डूबने से नहीं बच सकता। भक्ति, मुक्ति और ज्ञान की स्त्री दुश्मन है और परमात्मा के मिलने की राह में दुर्गम घाटी है। स्त्री अपने तीखे नयन-बाणों से पुरुष को मदिरा की तरह मतवाला कर देती है और उसे अपनी इच्छानुसार चलाती है। स्त्री दीपक है और पुरुष पतंग है। पुरुष अज्ञान से, उसके मिथ्या रूप पर मुग्ध होकर, अपना लोक-परलोक गँवाता है। स्त्री संसार-बन्धन में बाँधने वाली, दुःखों की मूल—ममता की जड़, नरक का द्वार और हर तरह अविश्वास-योग्य है—उसकी प्रीति का कुछ भी भरोसा नहीं; वह करवट बदलते-बदलते पराई हो जाती है। अपने सुख और स्वार्थ के लिये वह

पुरुष को मतवाला करके, उससे कौन-कौन से नीच कर्म नहीं कराती ? उसी के कारण पुरुष जने-जने के कठोर वचन सहता, अपमानित होता, आदमी-आदमी की खुशामद करता और नाना प्रकार के दुःख भोगा करता है। ऐसी दुःखों की खान और नरक की नसैनी—स्त्री के पीछे जो मरे मिटते हैं, वे क्या बुद्धिमान हैं ? जो ऐसी एक स्त्री के घर में होने पर भी सन्तुष्ट नहीं रहते—और भी स्त्रियों को चाहते हैं; यहाँ तक कि पराई स्त्रियों पर भी नीयत डिगाते हैं,—उन अधर्मियों को क्या कहें ? पूर्वजन्म के पापों से उनकी बुद्धि मारी गई है।

———

संसारी को स्त्री बिना सुख नहीं।

बारीक नजर से देखने पर स्त्री महा गन्दी और लोक-परलोक नशाने वाली मालूम होती है; पर उसके बिना संसार चल ही नहीं सकता। स्त्री न हो, तो परमात्मा की सृष्टि ही लोप हो जाय—उस खिलाड़ी का सारा खेल ही बिगड़ जाय, संसार मनुष्यशून्य हो जाय, स्त्री ही पुरुषों की खान है। उसी से ध्रुव, प्रह्लाद, भागीरथ, रामचन्द्र, अर्जुन, भीम, मान्धाता और हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुष पैदा हुए हैं। वह हजारों दोष होने पर भी अच्छी है, पत्थर होने पर भी रत्न है, विष होने पर भी अमृत है। स्त्री ही घर की शोभा और लक्ष्मी है। बिना स्त्री घर, घर नहीं वन है (जिस तरह बिना मित्र के पुरुष

निर्जीव देह है *; इसी तरह विना स्त्री के भी पुरुष जीवन-रहित शरीर है। स्त्री और पुरुष दोनों से एक देह बनती है। अतः बिना स्त्री पुरुष अधूरा है †। स्वास्थ्य और अच्छी स्त्री-ये ही तो संसार के सच्चे सुख है। अपना जिनका घर और अपनी पतिव्रता स्त्री सुवर्ण और मोतियों के समान मूल्यवान है §। बिना स्त्री के हमें हमारे जीवन के आरम्भ में साहाय्य करने वाला नहीं; जीवन के दौरान में सुखी करने वाला नहीं और जीवन के अन्तिम दिनों में तसल्ली और तशफ्की करने वाला नहीं ×। अत्यागियों को संसार में स्त्री बिना जरा भी सुख नहीं। इतना ही नहीं बिना स्त्री धर्मकार्य्य भी उचित रूप से सम्पादित नहीं हो सकते। इसी से अनेक ऋषि-मुनि, वनवास करते हुए भी, स्त्रियों को रखते थे और परमात्मा की सृष्टि को बढ़ाते थे। अतएव कट्टर त्यागियों या रोगी सन्यासियों के सिवा पुरुषमात्र को स्त्री त्याग देना उचित नहीं।

अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहो।

अपनी स्त्री कैसी ही बुरी-बावली हो; पुरुष को उसे ही अप्सरा समझकर, उसीसे अपना चित्त सन्तुष्ट करना चाहिये। अपना

---

* He who is without a friend is like a body without a soul. It Pr.

† Either sex alone is half itself. Tennyson

§ A hearth of one's own and a good wife are worth gold and pearls.—Goethe.

× But for women, our life would be without help at the outset, without pleasure in its course, and without consolation at the end—Jony.

स्त्री के कुरूपा या बदशकल होने पर भी पराई स्त्री पर मन न डिगना चाहिये,—पर-स्त्रियों को अपनी माता के समान समझना चाहिये। जैसी ही अपनी स्त्री, वैसी ही पराई। पराई स्त्री में हीरे नहीं लटकते पर नादानों को अपनी अच्छी चीज भी अच्छी नहीं मालूम होती और पराई बुरी भी अच्छी मालूम होती है। इसका कारण? कारण अपनी स्त्री हर समय नेत्रों के सामने रहती है। (मनुष्य का स्वभाव है कि उसे सुलभ वस्तु बुरी और दुर्लभ अच्छी लगती है) कहा है:—

> "सुलभ वस्तु सब वस्तु जनन सों, है जग आदरहीन।
> परिहरि ज्यों निज नारि जन ह्वै परनारी लीन॥

एक पाश्चात्य विद्वान ने भी प्रायः यही बात कही है—"दूसरों की चीज हमे बहुत प्यारी लगती है और हमारी चीज दूसरों को प्यारी लगती है§।" मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है, कि उसे पराई थाली का भोजन अपनी थाली के भोजन से अच्छा मालूम होता है।

पर-स्त्री सब तरह हानिकर है।

जो लोग कहा करते है, कि अपनी ब्याहता स्त्री मे दोष नहीं: उन्हे समझना चाहिये, कि प्रायः अपनी और पराई सभी स्त्रियों

We disregard the things which lie under our eyes indifferent to what is close at hand, we inquire after, things that are far away—Pliny.

§ That which belongs to otherss pleases us most that which belongs to us pleases others more

नागिन है, सभी पुरुषों का बलवीर्य हरण करती और अन्त में नरक में ले जाती है। अपने कूएँ में गिरने वाला क्या बच जाता है? अपने कूएँ और पराये कूएँ दोनों में ही गिरने वाला मरता है। अपना विष और पराया विष दोनों ही खाने से प्राण नाश करते हैं; अपनी आग और पराई आग दोनों ही से शरीर जलता है। तात्पर्य यह, कि अपनी और पराई सभी स्त्रियाँ हानिकारक हैं। फिर भी; अपनी स्त्री से उतनी हानि नहीं, जितनी पराई से है। अपनी स्त्री पतिव्रता हो, तो चतुर पुरुष, गृहस्थाश्रम में रह कर भी, स्वर्ग और मोक्ष लाभ कर सकता है, पर पराई स्त्री से सिवा हानि के कोई भी लाभ नहीं। पराई स्त्री धन और यौवन को नाश करने वाली और अन्त में नरक में ले जाने वाली है। परनारियों के सम्बन्ध में अनुभवी पुरुष कहते हैं:—

> पर नारी पैनी छुरी, तीन ठौर तें खाय।
> धन छीजे, जोबन हरे, मुए नरक ले जाय॥

जिस तरह कठोर भाषण बुरा है, जिस तरह परस्त्रियों पर मन चलाना बुरा है, उसी तरह परनिन्दा करना भी बुरा है। निन्दक से बढ़कर पापी नहीं; अतः बुद्धिमान को सच्ची और झूठी कैसी भी निन्दा न करनी चाहिये।

शिक्षा—सदा मीठा बोलो, अपनी ही स्त्री से प्रसन्न रहो और परनिन्दा से काल-सर्प की तरह डरो। सत्पुरुष इसी राह पर चलते हैं। इस राह पर चलने वालों का सदा कल्याण

होता है। पाठक! हम आपके गाने के लिये, इन्हीं उपदेशों से भरे हुये, चन्द गाने आपकी नजर करते हैं—

भजन।

वचन तू मीठा बोल रे, वाणी का बाण बुरा है॥ टेर॥
जिसकी वाणी में मीठापन है, उसको सबही जगह अमन है।
दिल चाहे जहाँ डोल॥ १॥ वाणी का बाण बुरा है॥
इसी वाणी से मीत गहरी, हा! हा! ये ही बना दे वैरी; कलेजा डाले छोल। २॥ वाणी का बाण बुरा है॥ इसको मित्र शत्रु सब जाने, कोयल और काक पहचाने, देत सब मुखड़ा खोल॥ ३॥ वाणी का बाण बुरा है॥ वाणी ने हव्वा बताया, बच्चों को लू लू बनाया, बैठ गई सुन कर हौल॥४॥ वाणी का बाण बुरा है॥ सबकी कीमत होती है, हीरा माणिक मोती है; नहिं वाणी का मोल॥५॥ वाणी का बाण बुरा है॥ कहें तेजसिंह सच बोलो, मत असत्य का मुँह खोलो, है जिसकी कच्ची तोल॥ ६॥ वाणी का बाण बुरा है॥

भजन (राग सोरठ)

राजी हो उससे सन्तजन, जो शुद्धचित्त उदार हो॥ टेर॥
मद मोह ममता काम लालच, त्याग बुद्धि विचार हो।
तन मन वचन निष्पाप निशि दिन, शौच और आचार हो॥ १॥
मिथ्या वचन बोलो नहीं, और सत्य सब व्यवहार हो।
तज के कपट छल बल सभी, प्रभु के जनों से प्यार हो॥ २॥

कहनी वो करनी एकसी, नहि जिसके मन में विकार हो।
परदारा परधन से डरें, कोई जीव जग में पार हो ॥३॥
संसार जाने स्वप्न-सम, जागृत में नित होशियार हो।
राखे दया हर जीव की; हिंसा तजै सुख सार हो ॥४॥
बोले रस बानी मधुर, और चित्त में पर उपकार हो।
जग जीत पावे परम पद, उसकी कहीं न हार हो ॥५॥

दोहा।

अप्रिय वचन दरिद्र तजि, प्रीति वचन धनपूर।
निज तियरति निन्दा रहित, वे महिमण्डल शूर ॥१०६॥

106. The earth is very scantily peopled with men who are sparing in speaking harsh words, who are lavish of pleasing speech, who are contented with their own wives and who never speak ill of others.

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०७॥

धैर्यवान् पुरुष घोर दुःख पड़ने पर भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ता; क्योंकि प्रज्वलित अग्नि के उलटा कर देने पर भी उसकी शिखा ऊपर ही को रहती है, नीचे की ओर नहीं जाती।

विपद् में निरादर या अपमान से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है; पर जो स्वभाव से ही धैर्यवान होते हैं, उनकी बुद्धि निरादर से भी नष्ट नहीं होती। बुद्धि के नष्ट न होने से, मनुष्य

अपने बुद्धि-बल से ही घोर विपद् से पार हो जाता है। अतः मनुष्य पर कैसी भी विपत्ति पड़े, उसे धैर्य्य न त्यागना चाहिये; क्योंकि धैर्य्य के बिना बुद्धि रह नहीं सकती और बिना बुद्धि का मनुष्य बिना पतवार नाव के समान है। जिस तरह पतवार हीन नाव समुद्र मे शीघ्र ही डूब जाती है; उसी तरह धैर्य्य-हीन मनुष्य विपद् मे शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

सारांश—धैर्य्यवानों का स्वभाव है, कि घोर विपद् मे भी अपने धैर्य्य को नहीं त्यागते।

दोहा।

धैर्य्यवान नहिं धैर्य तजि, यदपि दु.ख विकराल।
जैसे नीचो अग्निमुख, ऊँची निकसत ज्वाल ॥१०७॥

107 The patience of a persevering person, even if he is afflicted with calamity, can never be broken The flame of a burning fire never goes downwards even if it is held upside down

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य-
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥१०८॥

स्त्रियों कटाक्ष रूपी बाण जिसके हृदय को नहीं बेधते, क्रोध रूपी अग्नि ज्वाला जिसके अन्तःकरण को नहीं जलाती और इन्द्रियों के विषय-भोग जिसके चित्त को लोभ-पाश मे बाँध कर नहीं खींचते, वह धीर पुरुष तीनों लोक को अपने वश मे कर लेता है।

स्त्री, क्रोध और विषय—ये तीनों ही आफत की जड़ और नाश की निशानी हैं। जो इनके क़ाबू में नहीं आता, वह सच-मुच बहादुर है! शंकराचार्य्य कृत "प्रश्नोत्तर माला" में लिखा है—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा?
मनोज बाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽति धीरश्च समोऽस्ति को वा?
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः॥

संसार में सबसे बड़ा बहादुर कौन है? जो काम बाणों से पीड़ित न हो। प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है? जिसे स्त्री के कटाक्ष से मोह न हो।

क्या ख़ूब कहा है! जो स्त्री के कटाक्षों से मोह को प्राप्त हो जाता है, जिसको स्त्री के नयन-बाणों से घायल होने के कारण होश नहीं रहता है, उस बेहोश और विवेकहीन को काम, क्रोध, मद और लोभ प्रभृति सभी शत्रु मार लेते हैं। इसके विपरीत जिस पर स्त्री के कटाक्ष-बाण असर नहीं करते, उसे मोह नहीं होता,—उसके होश-हवाश ठीक रहते हैं, उसका विवेक-ज्ञान बना रहता है; इसीलिये उसके परम शत्रु काम, क्रोध मद और लोभ प्रभृति का उस पर वश नहीं चलता। काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ आदिक के परमात्मा की राह में बाधक न हो सकने की वजह से, वह स्वाधीन महापुरुष, बिना किसी अड़चन के, परमात्मा के

कमल चरणों में पहुँच जाता है और परमात्मा की दया से ध्रुवकी तरह सबके सिर पर आसन जमाता है।

निस्सन्देह, स्त्री के नयनबाणों से घायल न होने वाला ध्रुव की तरह ध्रुव-पद पाता है; पर यह काम सहज नहीं है। यह बड़ी टेढ़ी खीर है। कदाचित् मनुष्य और सबसे पीछा छुड़ा ले, पर कामिनी से पीछा छुटा लेना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े मुनिराजों ने यहाँ गोते खाये हैं। और तो क्या—स्वयं योगेश्वर कामारि कामिनी के पीछे पागल हो गये हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज ने ठीक ही कहा है:—

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता,
विद्याऽपि खेदकलिता विमुखी बभूव।
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे,
नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव॥

सारे विषयों को भी मैं भूल गया और विद्या की मुझे याद न रही; पर वह मृग कैसे बच्चे की आँखों वाली, इष्ट देवता की तरह, मेरे हृदय से दूर नहीं होती। (मर गई है, तो भी याद नहीं भूलती)

अज्ञानी कामी ही स्त्री को नहीं भूल सकते, किन्तु जो ज्ञानी हैं, जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट नहीं हुई है, वे स्त्री के मोह-जाल में नहीं फँसते और फँस भी जाते हैं, तो उसकी असलियत को समझकर उसे त्याग देते हैं। सभी

ज्ञानी पुरुष जानते है, कि स्त्री महा गन्दी, अनेक दुःखों की खान और आत्मा को नरक मे ले जाने वाली है। एक पाश्चात्य विद्वान् भी कहते हैं:—"सुन्दरी कामिनी आत्मा का दोजख, थैली की जहन्नुम और आँखो की जन्नत है * ।" और भी किसी ने खूब कहा है—

भजन ।

(राग सोरठा)

अनाड़ी मन ! नारी नरक का मूल ।।टेक।।

रंग रूप पर भया लुभाना, क्यो भूल गया हरिनाम दिवाना ।
इस धन यौवन का नाहिं ठिकाना, दो दिन मे होजाय धूल ।।१।।
कंचन भरे दो कलस बतावे, ताहि पकड़-पकड़ आनन्द मनावे ।
यह तो चमड़े की थैली है मूरख, जिन पै रह्यो तू फूल ।।२।।
जा मुख को तू चन्दा कर माने, थूक राल वामे लिपटाने ।
धिक-धिक धिक तेरे या मुख पै, भिष्टा मे रह्यौ तू भूल ।।३।।
कैसा भारी धोखा खाया, तन पर कामिन के ललचाया ।
कहैं कबीर आँख से देखा, यह तो माटी का स्थूल ।।४।।

क्रोध–शत्रु ।

स्त्री के कटाक्षवाणों से ही अपनी रक्षा कर लेने से मनुष्य त्रिलोक-विजयी नहीं हो सकता। इस भारी विजय के लिये

* A beautiful woman is the 'hell' of the soul, the "Purgatory" of the purse and the "Paradise" of the eyes.

उसे अपने ही शरीर मे रहने वाले गुप्त शत्रु "क्रोध" को भी अपने अधीन करना परमावश्यक है, क्योंकि क्रोध मनुष्य के बल, बुद्धि और विवेक को सदा क्षीण करता है और उसकी मौत को सदा सिर पर रखता है। कहा है:—

> क्रोधोहि शत्रुः प्रथमो नराणां, देहस्थितो देह विनाशनाय।
> यथा स्थितः काष्ठगतोहि वह्नि॰ स एव वह्निर्दहते च काष्ठम्॥

मनुष्य के शरीर मे छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देह को नाश कर देता है, जिस तरह काठ के भीतर छिपी हुई अग्नि प्रज्वलित होने पर, काठ को नाश कर देत है।

संसार मे ऐसा कोई पुत्र चाण्डाल न होगा, जो अपनी जननी को ही खा जाय; पर यह चण्डाल क्रोध जिम हृदय-भूमि रूपी जननी से पैदा होता है, पहले उसे ही खाता है, दूसरे को पीछे। इसके सिवा, यह जिसमे रहता है, उसी के धर्म-ज्ञान को नाश करता और उसे सदा दुःखी रखता है। तात्पर्य यह, कि क्रोधी पुरुष धर्म-अधर्म को नहीं समझता। कहा है—

> मत्त प्रमत्तश्चोन्मत्त श्रान्त क्रुद्धो बुभुक्षितः।
> लुब्धो भीरुस्त्वरायुक्त॰ कामुकश्च न धर्मवित्॥

मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लोभी, डरपोक, जल्दबाज, कामातुर, रोगार्त्त या शोकार्त्त—इनको धर्मज्ञान नहीं रहता।

ऐसों के दिलों में दया-धर्म नहीं होता; इसलिये ये लोग सब तरह के दुष्कर्म्म कर सकते हैं। सब तरह के दुष्कर्म्म कर सकने की वजह से ये सदा दुःखी रहते हैं। कहा है:—

ईर्ष्याघृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः॥

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, सदा असन्तुष्ट रहने वाला, सदा क्रोध करने वाला, सदा वहम में डूबा रहने वाला और दूसरों के भाग्य-भरोसे जीने वाला—ये छः सदा दुःख भोगते हैं।

बाइबिल में लिखा है—"क्रोध मूर्खों की छाती में रहता है" यह बहुत ठीक बात है। जो अज्ञानी होते हैं, जिन्हें संसार का अनुभव नहीं होता, जिन्हें शास्त्र-ज्ञान नहीं होता, जो महात्माओं की संगति नहीं करते, प्रायः उन्हीं में क्रोध पाया जाता है। ज्ञानी और अनुभवी पुरुष काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य्य—इन छै वर्गों को त्यागे रहते हैं और ऐसे ही नररत्न त्रिलोक-विजयी हो सकते हैं।

—:o:—

विषयों की फाँसी।

अब रही विषयों के लोभ-पाश में न फँसने की बात। सुनिये, विषयों का ध्यान ही आफत की जड़ है। विषयों का ध्यान करने वाले मनुष्य के मन में पहले विषयों से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति से इच्छा पैदा होती है। इच्छा से क्रोध पैदा

होता है। क्रोध से भ्रम होता है। भ्रम से स्मृति नाश होती है। स्मृति के नष्ट हो जाने से बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि के नष्ट होने से मनुष्य बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यही बात भगवान् कृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय मे कही है। जब विषयो के ध्यान मात्र से यह गति होती है; तब विषयो के भोगने से क्या न होता होगा ? ख़याल तो कीजिये।

असल मे विषयो का ध्यान ही पहले किया जाता है। अगर मनुष्य विषयो का ध्यान ही न करे, तो विषयो मे प्रीति क्यो हो—उनके भोगने की इच्छा क्यो हो ? इच्छा न हो, तो मनुष्य बुद्धि खोकर नष्ट-भ्रष्ट क्यो हो ?

अब यह सोचना चाहिये, कि विषयों का ध्यान काहे मे होता है ? ध्यान मन से होता है। मन में ध्यान होने के बाद इन्द्रियाँ अपना काम करती है। अगर मन वश मे हो, तो इंद्रियाँ कुछ न कर सकें। अगर मन वश मे न किया जाय, केवल इन्द्रियाँ वश मे करली जायँ, पर मन वश मे किया जाय, तो इन्द्रियाँ कुछ भी न कर सकेंगी। मन सारथी है और इन्द्रियाँ घोड़े है। घोड़े सारथी के वश में रहते है। वह उन्हे जिधर ले जाता है, वे उधर ही जाते हैं। जो मनुष्य अपने मन को वश मे कर लेता है, उसकी इन्द्रियाँ भी, मन के वश में होने के कारण, वश में हो जाती है। जिसका मन वश मे नहीं, वह मन मे भाँति-भाँति के विषयो का ध्यान करता हुआ नष्ट हो

जाता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये, कि अपने मन को वश मे करे, ताकि विषयो का ध्यान ही न हो। विषयों का ध्यान ही न होगा, तब भय क्या ? जिस मन मे विषय-वासना नहीं, वही मन शुद्ध है, उसी मन की शोभा है। कहा है.—

पंकैर्विना सरो भाति, सभा खलजनैर्विना।
कटुवर्णैर्विना काव्य मनस विषयैर्विना ॥

कीचड़-रहित तालाब की शोभा है, दुर्जन-रहित सभा की शोभा है; कठोर वर्ण-रहित काव्य की शोभा है और विषय-वासना-रहित मन की शोभा है।

सारा दारमदार मन के वश करने मे ही है। जिसने अपना मन वश मे कर लिया, उसने आत्मविजय करली। जिसने अपने तई जीत लिया, उसने जगत् को जीत लिया। टामस कैम्प साहब कहते है—"जिसने अपने-आप पर पूर्ण विजय प्राप्त करली है, उसे अन्यान्य विपत्तियों के पराजय करने मे बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पेश न आयेगी"। जे० जी० हार्डर महोदय कहते हैं—"सिंह को पराजित करने वाला वीर पुरुष है, संसार को परास्त करने वाला भी वीर है; पर जिसने अपने तई पराजित किया है, वह उनसे भी बड़ा वीर है।" निश्चय ही बहादुरी अपने तई जीतने मे ही है; पर अपने तई जीतना, है बड़ा कठिन काम। मन को वश करना लड़को का खेल नहीं। अगर कोई हवा को वश मे कर सकता है, तो मन को भी वश मे कर सकता है। किसी कवि ने कहा है:—

देखिबे को दौरे तो सटकि जाय वाही ओर।
सुनिबे को दौरे तो रसिक सिरताज है॥
सूंघिबे को दौरे तो अघाय ना सुगन्धि करि।
खाइबे को दौरे तो न धापे महाराज है॥
भोगिबे को दौरे तो तृपति हु न काहु होय।
हनुमत्त कहे याको नेकहू न लाज है॥
काहू को न कह्यो करे, अपनी ही टेक धरे।
मन सों न कोऊ हम, देख्यो दग़ाबाज़ है॥

कबीर साहब कहते हैं—

मन के मते न चालिये, मन का मता अनेक।
जो मन पर असवार है, ते साधु कोई एक॥
मन-पंछी जब लग उड़े, विषय-वासना माहिं।
ज्ञान बाज़ की झपट में, तब लग आया नाहिं॥

——::०:——

मन को वश में करने की तरकीब।

मन केवल ज्ञान या वैराग्य से वश मे होता है जब मनुष्य को संसार की असारता मालूम हो जाती है, और वह धन यौवन प्रभृति की अनित्यता को जान जाता है, तब उसको वैराग्य होता है, यानी संसार से विरक्ति हो जाती है। उस समय मन फौरन वश में हो जाता है।

हमें एक दृष्टान्त याद आया है। पाठक उसे पढ़ें और शिक्षा लाभ करें।

विषयों की असलियत।

कोई राजकुमार सैर करता हुआ जा रहा था। उसने एक मकान पर एक सेठ की कन्या को बाल सुखाते हुए देख लिया। कन्या परमसुन्दरी, रतिमानमर्द्दिनी और मुनिमनमोहनी थी। देखते ही राजकुमार मुग्ध हो गया। घर में आकर पलॅग पर पड़ रहा और खाना-पीना सब त्याग दिया। राजा को खबर हुई। शीघ्र ही राजा ने उसके पास जाकर पूछा—"पुत्र! भोजन क्यों नहीं करते? जो तुम्हारी इच्छा हो, वही किया जाय।" राजकुमार ने राजा से सेठ की कन्या के साथ शादी करा देने की प्रार्थना की। राजा ने फौरन सेठजी को बुलाया और उनसे कहा कि आप अपनी कन्या की शादी हमारे राजकुमार से करदें। सेठजी ने कहा—"महाराज! बड़ी खुशी की बात है, मेरा परम सौभाग्य है; पर मैं जरा कन्या से भी पूछ लूँ।"

सेठजी ने अपनी कन्या को यह माजरा कह सुनाया। कन्या ने कहा—"पिताजी आप राजकुमार से कह आइये, कि मेरी लड़की आप से सोमवार को मिलेगी; आप खान-पीना कीजिये।" सेठजी यह बात राजकुमार से कह आये। उधर कन्या ने किसी नौकर से जमालगोटा मँगाकर उसका जुलाब ले लिया। अब क्या था, दस्त-पर-दस्त होने लगे। जो दस्त होता, उसे वह एक सुन्द

पीतल की बाल्टी में रखवा, ऊपर से रेशमी कपड़ा ढकवा देती। इस तरह कोई ४०।५० बाल्टियाँ तैयार हो गईं। सेठ की कन्या के गाल बैठ गये, चेहरा भूतनीका-सा हो गया। देखने से नफरत होती थी। एक काम उसने और भी किया, वह एक टूटी सी चारपाई पर गूदड़े बिछवाकर लेट गई। गूदड़ों पर और अपने पहनने के कपड़ों पर, उसने थोड़ा-सा पाखाना छिड़कवा लिया। जब इस तरह सब काम हो गया, तब उसने सेठजी से कहा—"पिताजी! आज का वादा है। आप राजकुमारको लिवा लाइये।"

सेठजी राजकुमार के पास पहुँचे और उनसे अपने घर चलने की प्रार्थना की। राजकुमार तो तैयार ही बैठे थे, फौरन साथ हो लिये। घर में घुसते ही बदबू के मारे उनका दिमाग़ सड़ने लगा, पर उन्हे तो कन्या से प्रेम था, इसलिए नाक को रूमाल से दबाकर उसके पलँग के पास पहुँचे। कन्या ने पड़े-पड़े ही कहा,—"राजकुमार! अगर आपको मुझसे मुहब्बत है, तो मै आपकी सेवा मे मौजूद हूँ। आपकी इच्छा हो सो कीजिये और अगर आपको मेरी खूबसूरती से मुहब्बत है, तो वह उन बाल्टियों में भरी रक्खी है।" राजकुमार कुछ मूढ़ था। उसने पीतल की चमकदार बाल्टियों पर रेशमी कपड़े ढके देख मन में समझा, कि शायद खूबसूरती ही ढकी हो। उसने अपने ही हाथ से जो रेशमी रूमाल हटाया, तो सड़ा हुआ पाखाना नजर आया। देखते ही राजकुमार नाक दबाकर वहाँ से भाग पड़ा। अब उसे होश हो गया। संसार की

और खासकर विषयों की असलियत उसे मालूम हो गई। उसने कहा— "ओह! संसार में कुछ भी नहीं है; जैसा यह दीखता है वैसा नहीं है।" उसी समय उसे संसार से विरक्ति हो गई। वह राज को परित्याग कर, अङ्ग में भस्म लगा, मृगछाला और तूम्बी ले, वन को चला गया और परमात्मा की भक्ति में लीन हो गया।

स्त्री ऊपर से ही सुन्दरी मालूम होती है,—भीतर से वैसी नहीं है। स्त्री के भीतर क्या है? राध, लोहू, थूक, खखार और मल-मूत्र इत्यादि। जब तक मनुष्य असलियत की तरफ ध्यान नहीं देता, धोखा खाता है। परीक्षा करने से ही मालूम होता है—संसार जैसा चमकदार दीखता है, वैसा नहीं है*। संसार केले के खम्भ या प्याज की तरह है। उन्हें जितना ही छीलते जाइयगा, केवल छिलके ही छिलके निकलते आयेंगे।

सारांश—हरगिज़ न भूलिये, कि स्त्री अमृत-सी दीखने पर भी विष है और बेटे-पोते-दोहिते प्रभृति मित्रवत् दीखने पर भी स्वार्थी शत्रु है। सब जीते जी की मुहब्बत है। मरते ही ये सब आपसे डरने लगेंगे और मरने के बाद आपको याद भी न करेंगे। इसलिये अगर चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, दुःखों से पीछा छुटाना चाहते हो, जन्म-मरण के बन्धन से बचना चाहते हो, अनन्त सुख भोगने की इच्छा रखते हो; तो स्त्री-

---

* All is not gold that glitters.

That is not in the mirror which you see in the mirror.—Gr Pr.

जाति से घृणा करो, क्रोध को जीतो, सब दुःखो के मूल अभिमान* को त्यागो, अपने मन को वैराग्य से वश मे करके विषरूपी विषयों के फन्दे मे फँसने से बचो और आत्म ज्ञान लाभ करो, यानी अपने तईं जानो+। जब आप इन सब कामो को कर सकेंगे, तब आप निश्चय ही त्रिलोक-विजयी हो सकेंगे। और परम पद पा सकेंगे।

हमारे पाठको के चित्त पर योगिराज महाराज भर्तृहरि के अमूल्य उपदेशों का असर पूर्ण रूप से हो जाय, इसलिये हम एक भजन भी नीचे देते है:—

मूरख छाँड़ वृथा अभिमान ॥ टेक ॥
औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिन को महमान।
भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रूप तेज बलखान।
कौन बच्यो या काल बली से, मिट गये, नाम निशान ॥१॥
धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र समान।
अन्त समय सबही को तजके, जाय बसै समसान ॥२॥
तज सतसंग भ्रमत विषयन मे, जा विधि मर्घट स्वान।
क्षण भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासो होत कल्यान ॥३॥

---

* Egoism is the source and summary of all faults and miseries what-so-ever.—Carlyle.

Earthly pride is like a passing flower, that springs to fall and blossoms to die —Kirke White.

+ From heaven came down the precept, "Know thyself."—Jno.

रे मन मूढ़ ! अन्त मत भटके, मेरो कह्यो अब मान ।
"नारायण" ब्रजराज कुँवर से, वेग करो पहचान ॥४॥

दोहा ।

तिय-कटाक्षशर विधत नहिं, दहत न कोप-कृशानु ।
लोभपाश खेंचत न ते, तिहुँपुर वश किये जानु ॥१०८॥

108. The wise man whom the arrows of beautiful women's glances do not affect, whose heart is not disturbed by the heat of anger and who does not fall into the snare of evil passions con uers all the three worlds.

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ॥१०६॥

जिस तरह एक ही तेजस्वी सूर्य सारे जगत् को प्रकाशित करता है; उसी तरह एक ही शूरवीर सारी पृथ्वी पाँव तले दबाकर अपने वश में कर लेता है ।

दोहा—

बड़ो साहसी होत जो, काम करत झुकझूम ।
शूरवीर अरु सूर यह, लाँघ जात रणभूमि ॥१०९॥

109. A single brave man can subdue the whole world as the Sun spreads his shining light everywhere.

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥११०॥

जिस पुरुष में समस्त जगत् को मोहने वाला शील है, उसके लिये अग्नि जल-सी जान पड़ती है; समुद्र छोटी नदी-सा दीखता है, सुमेरु पर्वत छोटी-सी शिला-सा मालूम होता है, सिंह शीघ्र ही उसके आगे हिरन-सा हो जाता है, सर्प उसके लिये फूलों की माला-सा बन जाता है और विष अमृत के गुणों वाला हो जाता है

महात्माओं ने कहा है:—

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनों की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोई एक॥
शीलवन्त निर्मल दशा, पा परिहँ चहुँ खूँट।
कहै कबीर ता दास की, आस करैं बैकुंठ॥

महाकवि दाग़ ने भी कहा है:—

बशरने ख़ाक पाया, लाल पाया या गुहर पाया।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया, तो सब कुछ उसने भर पाया॥

छप्पय ।

अग्नि होत जल रूप, सिन्धु लघु नदी दिखावत ।
होत सुमेरहु सेर, सिंह को हरिण जनावत ॥
पुहुपमाल-सम व्याल, होत विषहू अमृत-सम ।
वन हू नगर समान, होत सब भाँति अनूपम ॥
सब शत्रु आय पॉयन परत, मित्रहू करत प्रसन्न चित ।
जिनके सुपुन्य प्रचार शुभ, तिनके मंगल मोद नित ॥१११॥

111. Fire becomes (as cold) as water the Ocean itself at once becomes like a little stream. the Meru mountain becomes a small rock, a lion immediately becomes (as timid) as a deer, a serpent becomes like a garland of flowers and a poisonous juice becomes like a rain of nectar to him in whose possession the most pleasant thing in the whole world, i. e good manners are found.

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥ ११२ ॥

सत्यव्रत तेजस्वी पुरुष अपनी प्रतिज्ञा भग करने की अपेक्षा अपना प्राण-त्याग करना अच्छा समझते हैं क्योंकि प्रतिज्ञा लज्जा प्रभृति गुणों के समूह की जननी और अपनी जननी की तरह शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहने वाली है ।

प्रतिज्ञा-पालन मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। जो प्रतिज्ञा-पालन नहीं करते, वे मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं; लोग अपने स्वार्थ के लिये प्रतिज्ञा भंग कर बैठते हैं, यह बहुत ही बुरी बात है। मनुष्य को अपने जीवन की अपेक्षा अपने शब्दों का अधिक ध्यान रखना चाहिये। जब कारथेनियन लोगो ने रेग्यूलस नामक मनुष्यो को क़ैद किया, तब उन्होंने उसे इस प्रतिज्ञा पर छोड़ा, कि वह जाकर रोमनो से सुलह करा दे और यदि उसके भाग्य से वे सुलह न करे, तो वह स्वयं क़ैदी बनकर लौट आवे। वह प्रतिज्ञा करके चला गया। रोमन लोगो ने उससे कहा कि, तू अब लौट कर न जा; क्योंकि तू स्वयं प्रतिज्ञा मे नहीं बँधा है। उन्होने जोर-जबरदस्ती से तुझसे वैसी प्रतिज्ञा करा ली है। रेग्यूलस ने कहा,—"तुम सब मुझे क्षुद्र बनाना चाहते हो। मैं जानता हूँ, मेरे लौटकर जाते ही वे मुझे मार डालेंगे। पर प्रतिज्ञा पूरी न करने—झूठा और दग़ाबाज़ बनने की अपेक्षा मरना हज़ार गुना अच्छा है। मैंने वापस लौट जाने की प्रतिज्ञा की है, इसी लिये जाऊँगा और जरूर जाऊँगा। निदान वह कारथेज गया और वहाँ उसे प्राण दण्ड दिया गया। धन्य वीर ! धन्य !!

महाराज हरिश्चन्द्र ने ख़ाली प्रतिज्ञा-रक्षा के लिये ही अपना राज-पाट गँवाया, रानी और पुत्र का वियोग सहा। दोनो स्त्री पुरुषों ने पराई चाकरी की। यहाँ तक कि भंगी का काम किया, पर अपनी प्रतिज्ञा रक्खी। सत्य पालन का ऐसा

आदर्श जगत् मे और कहाँ है? महाराज दशरथ ने, सर्व-नाश का समय उपस्थित होने पर भी, यही गर्वीले वचन कहे—"रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जायँ वरु वचन न जाई"। आपने जो कहा वही किया। प्राण प्यारे राम की जुदाई मे प्राण त्याग दिये, पर सत्य की रक्षा की। रामचन्द्र से भरत ने अयोध्या में चल कर राज करने के लिये बारम्बार कहा, तब राम ने कहा—"सुनो भरत! चन्द्रमा की शीतलता जाती रहे, हिमालय अपना अचल भाव छोड़ दे, सूर्य शीतल हो जाय, सागर अपनी मर्य्यादा तोड़ दे, तो पिता के निकट मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मैं तोड़ नहीं सकता।" धन्य राम! धन्य!!

महत् पुरुष अगर कोई बात हँसी में भी कह देते है, तो वह पत्थर की लकीर हो जाती है, पर नीचों की बात पानी की लकीर की तरह होती है, जो जरा देर मे ही मिट जाती है। महत् पुरुष प्राण-त्याग कर देते हैं; पर वचन भंग नहीं करते। सूरज पच्छिम मे उदय हो तो हो, सुमेरु चलायमान हो तो हो, अग्नि शीतल हो तो हो, कमल पर्वतों पर पैदा हो तो हो, चन्द्रमा सूर्य की तरह अग्नि उगले तो उगले,—किन्तु सत्पुरुषो की प्रतिज्ञा पूरी हुये बिना नहीं रह सकती। कवियो ने कहा है—

रनसन्मुख पग सूर के, वचन कहे ते सन्त।
निकस न पीछे होत हैं, ज्यो गयन्द के दन्त॥

बडे वचन पलटैं नहीं, कहि निरबाहैं धीर ।
कियौ बिभीखन लंकपति, पाय विजय रघुवीर ॥

बातहिं से दशरत्थ मरे, बातहिं राम फिरे बन जाई ।
बातहिं से हरिचन्द सहे दुख, बातहिं राज्य दियौ मुनिराई ॥
रे मन! बात विचारि सदा कहु, बात की गात में राख सचाई ।
बात ठिकान नहीं जिनकी, तिन बाप ठिकान न जानेहु भाई ॥

और भी—

हस्तिदन्त समानं हि, निसृत महता वचः ।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च ॥

बड़ो के वाक्य हाथी के दाँत के समान होते हैं, यानी निकले सो निकले; निकल कर फिर भीतर नहीं जाते, पर नीचो के वाक्य कछुए की गर्दन के समान होते हैं, जो कभी भीतर जाती है और कभी बाहर आती है ।

विदुषा वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥

पण्डित शिरोमणि जगन्नाथ महोदय भी कहते हैं--

विद्वानो के मुँह से सहसा कोई बात नहीं निकलती और यदि निकली, तो हाथी के दाँतों की तरह निकल कर फिर भीतर नहीं जाती ।

मनुष्य मात्र को, यदि वह मनुष्यत्व का दावा करे, प्रतिज्ञा-रक्षा के मुक़ाबले में, प्राणों को भी तुच्छ समझना चाहिये।

कुण्डलिया।

मैया लज्जा गुणन की, निज मैया सम जान।
तेजवन्त तन को तजत, याको तजत न जान॥
याको तजत न जान, सत्यव्रत वारेहु नर।
करत प्राण को त्याग, तजत नहि नेक वचनवर॥
शरत आपनी राखि रह्यो, वह दशरथ रैया।
राखो वत्त हरिचन्द, टेक यह यश की मैया॥१२॥

112 Honourable men, true to their word, would rather give up their lives than break their vows which produce in their hearts a host of good qualities as modesty etc., and which are to them like a mother extremely pure-hearted and faithful

॥ समाप्त ॥